आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसूरिग्रथितः

आख्यानकमणिकोशः

श्रीमदाम्रदेवसूरिसन्दृब्धया वृत्त्या समलङ्कृतः ।

भाग - ४

संशोधकः पुनःसम्पादकश्च :
मुनिपुण्यविजयः

पुनःसंपादन - संस्कृत छाया :
मुनि पार्श्वरत्नसागरः

आचार्य ओमकारसूरि ज्ञानमंदिर ग्रंथावली क्रमांक-८२

आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसरिग्रथितः

आख्यानकमणिकोशः

श्रीमदाम्रदेवसूरिसन्दृब्धया वृत्त्या समलङ्कृतः ।

भाग - ४

संशोधकः पुनःसम्पादकश्च
मुनिपुण्यविजयः

: पुनःसंपादन - संशोधन - संस्कृत छाया :
मुनि पार्श्वरत्नसागरः

: प्रकाशक :
आ. ॐकारसूरी आराधना भवन
आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर, गोपीपुरा, सुरत

वीर संवत् : २५३८ विक्रम संवत् : २०६९ इस्वीसन् : २०१३

ग्रंथ का नाम : आख्यानकमणिकोशः (संस्कृत छाया सह)

भाग : ४

आवृत्ति : प्रथम सं. २०६९

प्रकाशक : आ. ॐकारसूरी आराधना भुवन
गोपीपुरा, सुरत

मूल्य : ३०० रुपये

प्रत : ५००

प्राप्तिस्थान :

- **आचार्य श्रीॐकारसूरिज्ञानमंदिर**
आचार्य श्रीॐकारसूरि आराधनाभवन,
सुभाषचोक, गोपीपुरा, सुरत
फोन : ९८२४१५२७२७
E-mail : omkarsuri@rediffmail.com / mehta_sevantilal@yahoo.co.in

- **आचार्य श्रीॐकारसूरि गुरुमंदिर**
वावपथकनी वाडी, दशापोरवाड सोसायटी,
पालडी चार रस्ता, अमदावाद-३८० ००७
फोन : ०७९-२६५८६२९३

- **विजयभद्र चेरिटेबल ट्रस्ट**
पार्श्वभक्तिनगर, नेशनल हाईवे नं. १४,
भीलडीयाजी, जि. बनासकांठा-३८५५३५
फोन : ०२७४४-२३३१२९, २३४१२९

- **सरस्वती पुस्तक भंडार**
हाथीखाना, रतनपोल, अमदावाद-३८० ००१

मुद्रक : किरीट ग्राफीक्स
४१६, वृन्दावन शोपींग सेन्टर, रतनपोळ, अमदावाद-१, दूरभाष : २५३३००९५

प्रकाशकीय

आख्यानकमणिकोश बृहद्गच्छीय सैद्धांतिक शिरोमणि आ.श्री नेमिचन्द्रसूरिजीओ विक्रमना बारमा सैकामां रचेलो उपदेशकथाओनो अनूठो संग्रह छे.

मात्र बावन गाथामां १४६ कथाओनो उल्लेख कर्यो छे. आ 'आख्यानकमणिकोश' ग्रंथ उपर तेओना ज विद्वान शिष्यरत्न आ.आम्रदेवसूरिजीओ वि.सं. १२०९मां १४००० श्लोक प्रमाण वृत्ति रची छे. आ वृत्तिमां मूळ ग्रंथनी बधी गाथाओनी संस्कृतमां व्याख्या तो छे ज ते उपरांत ग्रंथकारे गाथाओमां उल्लिखित बधी कथाओने अति मनोहर शैलिमां रजू करी छे. मोटा भागनी (१२७ मांथी ११७) कथाओ प्राकृत-पद्यमां छे. बे-त्रण कथाओ क्रमांक २३, ४३ (७३ आंशिक) १४, १७, १२४ आ त्रण कथाओ संस्कृत-गद्यमां छे. ३९, ६४, १०९, १२२ क्रमांकनी कथाओ संस्कृत-पद्यमां छे.

आ ग्रंथनुं संपादन आगमप्रभावक मुनिश्री पुण्यविजयजी म.सा.ओ करेलुं. प्राकृत ग्रंथ परिषद् तरफथी ओनुं प्रकाशन वि.सं. २०१८मां थयेलुं. मुनिश्री पार्श्वरत्नसागरजीओ ग्रंथनी बधी ज प्राकृत कथाओनी संस्कृत छायारचनापूर्वक पुनः संपादन कर्युं छे. आ ग्रंथने ४ विभागमां प्रगट करतां अमे अत्यंत आनंद अनुभवीओ छीओ. विदुषी सा. महायशाश्रीजीओ बधा प्रुफो जोई आप्या छे. संस्कृत छायानुं संशोधन कर्युं छे.

आ ग्रंथ उपर श्रीविमल बाफणा Ph.D. करी रह्या छे ओवा समाचार मुनिश्री वैराग्यरति वि.म. द्वारा मळतां आ.मुनिचन्द्रसूरि म.ओ श्री बाफणाने प्रस्तावना लखवा जणावेल जे अहीं भाग-१मां प्रगट थई रही छे.

आख्यानकमणिकोशना प्रथम अधिकार (कथा १ थी ४) अने तेनो डो. तारा डागाओ करेल हिन्दी अनुवादनुं प्रकाशन ई.स. २०१३मां प्राकृत अध्ययन शोध केन्द्रम् राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम् जयपुर द्वारा प्रगट थयुं छे. आ संस्करणमां डो. तारा डागानो लेख प्राकृत कथासाहित्य परंपरा एवं आख्यानकमणिकोशमांथी केटलीक उपयोगी विगतो पण डो. तारा डागाना नामे ज प्रथम भागमां प्रकट थई रही छे. आ माटे अमे डो. तारा डागा अने संस्थाना आभारी छीए. ग्रंथ प्रकाशन माटे बधा लाभार्थी संघोना अमे आभारी छीओ.

अभ्यासीओ आ ग्रंथनो अभ्यास करी आत्मकल्याणने वरे ओज प्रार्थना.

ली.

प्रकाशक

• • •

आवकार

'अक्खाणयमणिकोस' (आख्यानकमणिकोश) प्राकृत कथासाहित्यनुं अेक अणमोल नझराणुं छे. प्राकृत ग्रंथोनो अभ्यास वधारवा संस्कृतछाया बनाववानो प्रचार हमणांथी वध्यो छे. आ कारणे प्राकृत ग्रंथोनुं वांचन वध्युं होय अेवुं पण जाणवा मळ्युं छे.

मुनिश्री पार्श्वरत्नसागरे आ ग्रंथनी संस्कृत छाया बनावी छे. आ पूर्वे 'पउमचरियं'नी संस्कृत छाया पण तेमणे बनावेली. गया वर्षे आज संस्था द्वारा प्रगट थई छे.

साध्वीश्री सत्यरेखाश्रीना शिष्या विदुषी साध्वीश्री महायशाश्रीजीअे बधा प्रुफो जोया छे. संस्कृत छायानुं संशोधन कर्युं छे.

मुनिश्री वैराग्यरति वि.म.अे जणाव्युं के श्री विमल बाफणा आ ग्रंथ उपर Ph.D. करी रह्या छे. अमारी सूचनाथी तेओअे श्री बाफणा पासे प्रस्तावना लखावीने मोकली आपी छे. जे अहीं (भाग-१)मां प्रसिद्ध थई रही छे.

डो. तारा डागाअे 'आख्यानकमणिकोश'नुं हिन्दी भाषांतर करवानुं शरु कर्युं छे. अेक भाग (प्रथम अधिकार) प्रगट थयो छे ते तेओअे अमने मोकल्यो छे. अेमांथी पण उपयोगी विगत अहीं (प्रथम भागमां) आपवामां आवी छे.

अभ्यासीओने विनंती के - मूळ प्राकृत भाषानी मजा माणवा जेवी छे. ज्यां क्लिष्ट के न समजाय त्यां ज संस्कृत छायानो उपयोग करशो. प्राकृत भाषाना संस्कृत रुपांतरो घणां थई शकता होवाथी छायाकार ग्रंथकारना भावो न समजी शक्या होय अने भिन्न रुपांतर थयुं होय अेवुं पण संभवे छे. उपयोगपूर्वक अध्ययन करी अभ्यासीओ ग्रंथकारना हार्दने पामे, कथा रचना द्वारा विविध गुणो वाचकोने पमाडवानो कर्ताश्रीनो आशय छे तेने सफळ करे अने आत्मकल्याणने पामे अेज अभिलाषा.

- आ.विजय मुनिचन्द्रसूरि

● ● ●

ग्रंथसमर्पण

प.पू. आगमोद्धारक आचार्य भगवंतश्री

आनन्दसागरसूरीश्वरजी म.सा.

के कर कमलों में साहित्य सुमन

अर्पण

: श्रुतलाभ :

प.पू.आ.भगवंत

श्री मुनिचन्द्रसूरिजी म.सानी

प्रेरणाथी

श्री दिपा जैन संघ

अडाजण-सूरते

ज्ञानद्रव्यमांथी

ग्रंथ प्रकाशननो संपूर्ण लाभ लीधो छे.

अनुमोदना... अनुमोदना...

संपादक की कलम से...

वर्तमानकाल में जहां ज्ञानोपार्जन - अध्ययन आदि का भौतिकरूपसे मात्र व्यवहारिक शिक्षा को लक्ष बनाकर पठन-पठनादि अपनी सीमाएँ लांघ रहा है वहां, जैनशासन के नमोमंडलमें पूर्व आचार्यों द्वारा रचे गए कई महामूल्यवान ग्रंथ अभीतक मात्र हस्तलिखित ताडपत्रों में बंध पड़ा हैं। इनमें से कई ग्रंथो का आगम प्रभाकर पूज्य मुनिराज श्री पुण्यविजयजी म.सा. काफी महेनत करके प्रकाशित करनेका अनुमोदनीय एवं अपकारणीय प्रयास किया है। उन ग्रंथतलिकामें एक ग्रंथ यहभी है "आख्यान मणिकोश"।

पूज्यपाद आचार्य नेमिचन्द्रसूरि म.सा.ने इस ग्रंथकी श्लोकबद्ध प्राकृत भाषामें रचना की थी और उनकी ही परंपरा के पू. आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य पू. आचार्य आम्रदेवसूरिने इस ग्रंथ के श्लोकों में बताये गये दृष्टांतो के नाम उल्लेखों को कथानक में ग्रथन करके पद्यशैलीसे करीब १२७ कथानको को विशिष्ट शैलीओमें प्राकृत - संस्कृत - देश्य एवं अप्रभंश भाषाओंमें विभिन्न छेदालङ्कार - विभिन्नरस - विभिन्न इतिहासों आदी से अत्यंत मनमोहक बनाया है, इस पद्यबद्ध वृत्ति की रचना से ही पूज्यवरकी कवित्व शक्ति एवं भाषाके लय की विशिष्ट छबी उपस्थित होती है।

मूल केवल ५३ गाथाओं मे रचे गए १४००० श्लोक प्रमाण विस्तृतवृत्ति की अद्भूत रचनावाले इस महाग्रंथ को ४१ अधिकारों में कुशलतापूर्बक बांटा गया हैं।

वर्तमान में अपभ्रंश भाषा एवं देश्य शब्दो का प्रयोग काफी कम दिखाई देता है, वत्तिकारने सूक्ष्मबुद्धि से विभिन्न स्थलों पर अनेक देश्य शब्दों का इतनी बेखुबी से प्रयोग कीया है की जो तदानी काल की भाषाशैली की सुंदरता बयान करती है।

देश्य शब्दों का भंडार एवं अपभ्रंश शैलीके कथानकों का रसथाल होने के कारण यह ग्रंथ वाचक वर्ग को पढने में काफी मुश्कील है, इतना रोचक और अद्भूतग्रंथ भाषा का पूर्ण ज्ञान न होने की वजह से संपादन होने के बादभी वाचक वर्गमें खास पढ़ा नहीं जाता है।

आगे मैने पूर्वधर श्री विमलसूरि के द्वारा वीर सं. ५३० की साल में रचे गए 'पउमचरिय' ग्रंथकी संस्कृत छाया करने का प्रयत्न प.पू. शास्त्रसंशोधक आ.भ.श्री मुनिचन्द्रसूरि म.सा. के निर्देश के अनुसार कीया था । जो ग्रंथ चार विभागोमें छप चूका है । और उस कार्य को देखकर पू. आचार्य भगवंतश्रीने मुझे इस ग्रंथकी महत्ता बताकर ग्रंथ के अंदर के प्राकृत एव अपभ्रंश दृष्टांतो की संस्कृत छाया करने की बात कही और इस ग्रंथकी भी संस्कृत छाया करनेका मुझे लाभ मिला ।

और इस ग्रंथ को विशेष शुद्धि करके पू. साध्वीवर्या श्री महायशाश्रीजीने भी मुज पर उपकार कीया है । साथमें हर जगह जहां-जहां मुश्कीलें आई वहां पू. आ.भ.ने भी सामग्री हस्तप्रतकी नकल एवं योग्य सलाह लेकर बहोत बड़ा उपकार कीया है ।

इस ग्रंथ प्रकाशनका संपूर्ण लाभ श्री उवसग्गहरं पार्श्वनाथ तीर्थ एवं अ.भा. कल्याणमित्र सभाने लिया है श्रुत भविन इस कार्य के लिए भूरि भूरि अनुमोदना ।

पुस्तक मुद्रण कार्यको सुंदर सहयोग के साथ संपन्न करने के लिए 'किरीट ग्राफिक्स' के सुश्रावक श्री गिरीटभाई एवं सुश्रावक श्री श्रेणिकभाई को भी खुब खुब धन्यवाद ।

ग्रंथ प्रकाशक के रूप में संपूर्ण सहयोग देने के लिए श्री ऊँकार सूरी आराधना भवन की भी अनुमोदना ।

अंतमें इस ग्रंथकी संस्कृत छाया करते समय मतिदोष एवं प्रेसदोष से कुछ क्षति रह गई हो तो विरुद्धर्य पूज्यों से निवेदन है की सुधारकर पढ़े एवं मुझे क्षतियों से वाकेफ कराएँ ।

अपने अध्ययन - अध्यापनमें इसग्रंथ को सामिल करके जिनशासनमें घटित घटनाओं को कथानकों के माध्यमसे जानकर सभी स्व-पर उपकार करके ज्ञानावरणीवादि कर्मो का क्षय करके अक्षय स्थानको प्राप्त करें ऐसी शुभेच्छा ।

श्रावण वदी ०॥
राजनांद गाँव (छ.ग.)

- मुनि पार्श्वरत्न सागर

• • •

विषयानुक्रम

विषय		पृष्ठ संख्या
(३७)	**दैवनिवारणऽशक्यताधिकार:**	**७५७-७९६**
१०८	द्विजसुतकथानकम्	७५७
१०९	कुक्कुटाख्यानकम्	७६६
११०	यादवाख्यानकम्	७७०
(३८)	**नष्टमृतरोदनादिनैरर्थक्याधिकार:**	**७९७-८०९**
१११	भरताख्यानकम्	७९७
११२	सगराख्यानकम्	७९९
११३	पद्माख्यानकम्	८०६
(३९)	**बन्धुकृत्रिमस्नेहत्वाधिकार:**	**८१०-८५५**
११४	रविकान्ताख्यानकम्	८१०
११५	चूलन्याख्यानकम्	८१७
११६	कोणिकाख्यानकम्	८२३
११७	शङ्खाख्यानकम्	८३१
११८	कनककेत्वाख्यानकम्	८५३
(४०)	**धनधान्यादिविषयकशोकापार्थकताधिकार:**	**८५६-८६९**
११९	सावित्र्याख्यानकम्	८५६
१२०	मन्त्र्याख्यानकम्	८५९
१२१	कुलानन्दाख्यानकम्	८६३
१२२	भव्यकुटुम्बाख्यानकम्	८६६
(४१)	**विवेकिजनस्वकृतकर्मोदयोपनतदु:खाधिसहनाधिकार:**	**८७०-९१४**
१२३	पार्श्वाख्यानकम्	८७०
१२४	वीराख्यानकम्	८७४
१२५	गजमुन्याख्यानकम्	८७५
१२६	मेतार्याख्यानकम्	८८०
१२७	सनत्कुमाराख्यानकम्	९००
•	**शास्त्रोपसंहार:**	**९१४**
•	**अथ प्रशस्ति:**	**९१५-९१६**
•	**प्रथम परिशिष्ट**	**९१७**
•	**द्वितीय परिशिष्ट**	**९३१**
•	**तृतीय परिशिष्ट**	**९३९**

• • •

आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसूरिग्रथित

आख्यानकमणिकोशः

श्रीमदाम्रदेवसूरिसन्दृब्धया वृत्त्या समलङ्कृतः।

[३७. दैवनिवारणऽशक्यताधिकारः]

पूर्वं सम्पद्विपद्भवनं दैवविलसितमित्यमिहितम् । एतच्च पुरुषकारपरैरपि निवारयितुं न शक्यते । अतो तदभिधातुकाम आह-

पुरिसक्कारपरेहिं वि विहिपरिणामो खलिज्जए नेय ।
दियसुय- कुक्कुड-जायव-मित्ताणंदा य दिट्ठंता ॥ ४६ ॥

व्याख्या- 'पुरुषकारपरैरपि' उद्यमवद्भिरपि 'विधिपरिणामः' दैवविलसितं 'स्खल्यते' निर्वायते 'नेय' त्ति नैव । दृष्टान्तानाह-द्विजसुतश्च-वराहमिहिरब्राह्मणपुत्रः कुक्कुटश्च- पक्षिविशेषः यादवाश्च-द्वारकावतीलोकाः मित्रानन्दश्च-श्रेष्ठिसुतः ते तथोक्ताः 'दृष्टान्ताः' उदाहरणानीति गाथाक्षरार्थः ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्रापि तावत् क्रमप्राप्तं द्विजसुताख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

अत्थि समत्थसमीहियसंपाडणसंपयं थिमियवासं । निम्मलजसगुणभवणं पाडलिपुत्तं पवरनयरं ॥ १ ॥

तत्थऽत्थि दरियरिउकरडिकेसरी पणयसयलसामंतो। पुव्वपुहईसपालियपयपालणपच्चलो राया॥ २ ॥

नामेणं जियसत्तू जियरंभाविब्भमा महादेवी । नियरायपट्टपयवीपइट्ठिया धारिणी नाम ॥ ३ ॥

नियमइविभवविणिज्जियसुरमंती सुमइनामओ मंती । रन्नो सयले कज्जे रज्जधुराधरणधोरेयो ॥ ४ ॥

द्विजसुताख्यानकम् ॥ १०८ ॥

अस्ति समस्तसमीहितसंपादनसंपत् स्तिमितवासम् । निर्मलयशोगुणभवनं पाटलिपुत्रं प्रवरनगरम् ॥ १ ॥

तत्रास्ति दारितरिपुकरटिकेसरी प्रणतसकलसामन्तः । पूर्वपृथिवीशपालितपदपालनसमर्थो राजा ॥ २ ॥

नाम्ना जितशत्रुर्जितरम्भाविभ्रमा महादेवी । निजराजपट्टपदवीप्रतिष्ठिता धारिणी नाम ॥ ३ ॥

निजमतिविभवविनिर्जितसुरमन्त्री सुमतिनामको मन्त्री । राज्ञः सकले कार्ये राज्यधुराधरणधौरेयः ॥ ४ ॥

अवरो वि अत्थि रन्नो पुरोहिओ रायसम्मओ सययं । छक्कम्मरओ चउदसविज्जाठाणाण पारगओ ॥ ५ ॥

नामेण विन्हुमित्तो सोमा नामेण भारिया तस्स । माहणकुलसंभूया पइव्वया पयइसोमा य ॥ ६ ॥

तत्तो य नियकुलागयसकम्मकरणुज्जयाण नीईए । कालक्कमेण जाया ताणं दो चेव सुयरयणा ॥ ७ ॥

उव्वूढवेयवसुहाभारो अन्नाणतिमिरनिद्दलणो । पढमो पत्तपइट्ठो वराहमिहिरो जहत्थऽक्खो ॥ ८ ॥

बीओ य सयलकल्लाणकारगत्तेण भव्वलोयस्स । पुरपरिघदीहबाहु त्ति भद्दबाहू समक्खाओ ॥ ९ ॥

दोन्नि वि लक्खणकुसला दोन्नि वि साहित्तजलहिपारगया ।

दोन्नि वि पमाणपडुया दोन्नि वि परिमुणियगणियमया ॥ १० ॥

अन्नेसु वि बंभन्नयसत्थेसु विणिच्छियत्थपरमत्था । जाया चउण्ह वेयाण पारया धारया यावि ॥ ११ ॥

अह रमणीमणमोहणभूयं तारुन्नयं च जा पत्ता । लोइय-वेइय-समइय-ववहारवियक्खणा जाया ॥ १२ ॥

तो कालसमयविउणा पिउणा काराविओ करग्गहणं । जेट्ठो विसिट्ठनक्खत्ततिहिमुहुत्ते विभूईए ॥ १३ ॥

नामेणं सावित्ती जाया जाया वराहमिहिरस्स । बंभस्स व वेयविसारयस्स चउराणणस्स सई ॥ १४ ॥

भाया वि तस्स सारीर-माणसाणेयदुक्खसंतत्तं । कलिऊण जीवलोयं परमाणंदं च मुत्तिसुहं ॥ १५ ॥

मुणिय तहाविहथेराणमंतिए जायगरुयसंवेगो । पव्वइओ परिचइऊण गेहवासं विवेयवसा ॥ १६ ॥

अब्भसियदुविहसिक्खो विन्नायजहुत्तसमयपरमत्थो । चउदसपुव्वी जाओ कवितिलओ कित्तिकुलभवणं ॥ १७ ॥

अपरोऽप्यस्ति राज्ञः पुरोहितो राजसम्मतः सततम् । षट्कर्मरतश्चतुर्दशविद्यास्थानानां पारगतः ॥ ५ ॥

नाम्ना विष्णुमित्रः सोमा नाम्ना भार्या तस्य । माहनकुलसम्भूता पतिव्रता प्रकृतिसौम्या च ॥ ६ ॥

ततश्च निजकुलगतस्वकर्मकरणोद्यतयोर्नीत्या । कालक्रमेण जाते तयो द्वे चैव सुतरत्ने ॥ ७ ॥

उद्वोढवेदवसुधाभारोऽज्ञानतिमिरनिर्दलनः । प्रथमः प्राप्तप्रतिष्ठो वराहमिहिरो यथार्थाख्यः ॥ ८ ॥

द्वितीयश्च सकलकल्याणकारकत्वेन भव्यलोकस्य । पुरपरिघदीर्घबाहुरिति भद्रबाहुः समाख्यातः ॥ ९ ॥

द्वावपि लक्षणकुशलौ द्वावपि साहित्यजलधिपारगतौ ।

द्वावपि प्रमाणपटू द्वावपि परिमुणितगणितमयौ ॥ १० ॥

अन्येष्वपि ब्रह्मनयशास्त्रेषु विनिश्चितार्थपरमार्थौ । जातौ चतुसृणां वेदानां पारगौ धारकौ चापि ॥ ११ ॥

अथ रमणीयमनोमोहनभूतं तारूण्यं च यावत्प्राप्तौ । लौकिक-वैदिक-सामयिक-व्यवहारविचक्षणौ जातौ ॥ १२ ॥

ततः कालसमयविदुना पित्रा कारितः करग्रहणम् । ज्येष्ठो विशिष्ठनक्षत्रतिथिमुहूर्ते विभूत्या ॥ १३ ॥

नाम्ना सावित्री जाया जाता वराहमिहिरस्य । बह्मण इव वेदविशारदस्य चतुराननस्य स्वाति ॥ १४ ॥

भ्रातापि तस्य शारीर-मानसानेकदुःखसन्तप्तम् । कलित्वा जीवलोकं परमानन्दं च मुक्तिसुखम् ॥ १५ ॥

मुणित्वा तथाविधस्थविराणामन्तिके जातगुरुकसंवेगः । प्रव्रजितः परित्यज्य गृहवासं विवेकवशात् ॥ १६ ॥

अभ्यसितद्विविधशिक्षो विज्ञातयथोक्तसमयपरमार्थः । चतुर्दशपूर्वी जातः कवितिलकः कीर्तिकुलभवनम् ॥ १७ ॥

पंचमहव्वयधुरधरणपच्चलो सगुरुपत्तसूरिपओ । विहरइ पुहविं छत्तीससूरिगुणसंपयासहिओ ॥ १८ ॥
नवरं वराहमिहिरो तस्सुवरिं गरुयमच्छरं वहइ । मिच्छत्तमोहियमई धम्मम्मि अनायपरमत्थो ॥ १९ ॥
भणइ य पालणयाओ किं न बिरालीए भक्खिओ सक्खं । पाव ! जमेवं ववसंतएण लज्जाविया लोए ॥ २० ॥
नामाइ घडाईणं निरत्थयत्तं पओयणाभावा । मन्नइ भावघडं चिय विसिट्ठकज्जप्पसाहणओ ॥ २१ ॥
सो उण सूरी समसिरिसमस्सिओ थिमियनीरनाहनिभो । अहह ! महंतं पुरिसाणमंतरं दीसइ जयम्मि ॥ २२ ॥
अह उवरयम्मि जणए वराहमिहिरो पुरोहियपयम्मि । महईए विभूईए पइट्ठिओ रायपमुहेहिं ॥ २३ ॥
तप्पभिइ पूयणिज्जो संजाओ पउरमज्झयारम्मि । पायं पाहाणो वि हु पइट्ठिओ लहइ माहप्पं ॥ २४ ॥
विन्नाणे नाणम्मि य कलाकलावे य गणियमग्गम्मि । सव्वत्थ वि पत्तट्ठो विसेसओ जोइसत्थम्मि ॥ २५ ॥
किंतु कुल-जाइमयओ दढमभिमाणी परं पराभवइ । अथिरसहावो अहवा अकलंकगुणा जए विरला ॥ २६ ॥
नियवंसजाओ अवरेण कह वि जिप्पामि जइ सविज्जाए । ता साहेमि पइन्नारूढो दुसहं चियाजलणं ॥ २७ ॥
एवमसन्नयसुयनाणजणियगुरुगव्वपव्वयारूढो । उद्धरखंधो नयरे वराहमिहिरो परिब्भमइ ॥ २८ ॥
अह अन्नया कयाई सावित्तीगब्भसंभवो पुत्तो । सव्वंगलक्खणधरो संजाओ सुहमुहुत्तम्मि ॥ २९ ॥
वद्धाविओ य दासीए रायअत्थाणसंठिओ विप्पो । नवरं हरिसट्ठाणे वि सामवयणो दिओ जाओ ॥ ३० ॥
जम्हा तं चिय लग्गं विणिच्छियं न उण आगमणकालो । परिगणिओ दासीए सुयजम्मुप्पत्तिरसिएणं ॥ ३१ ॥

पञ्चमहाव्रतधुरधरणसमर्थः स्वगुरुप्राप्तसूरिपदः । विहरति पृथिवीं षट्त्रिंशत्सूरिगुणसंपत्सहितः ॥ १८ ॥
नवरं वराहमिहिरस्तस्योपरि गुरुकमत्सरं वहति । मिथ्यात्वमोहितमति धर्मेऽज्ञातपरमार्थः ॥ १९ ॥
भणति च पालनकात् किं न बिडाल्या भक्षितः साक्षात् । पाप ! यदेवं व्यवसयता लज्जयिता लोके ॥ २० ॥
नामादि घटादीनां निरर्थकत्वं प्रयोजनाभावात् । मन्यते भावघटं चैव विशिष्टकार्यप्रसाधनात् ॥ २१ ॥
स पुनः सूरिः शमश्रीसमाश्रितः स्तिमितनीरनाथनिभः । अहह ! महत्पुरुषाणामन्तरं दृश्यते जगति ॥ २२ ॥
अथोपरते जनके वराहमिहिरः पुरोहितपदे । महत्या विभूत्या प्रतिष्ठितो राजप्रमुखैः ॥ २३ ॥
तत्प्रभृति पूजनीयः सञ्जातः पौरमध्ये । प्रायं पाषाणोऽपि हु प्रतिष्ठितो लभते माहात्म्यम् ॥ २४ ॥
विज्ञाने ज्ञाने च कलाकलापे च गणितमार्गे । सर्वत्रापि प्राप्तार्थो विशेषतो ज्योतिःशास्त्रे ॥ २५ ॥
किन्तु कुल-जातिमदाद् दृढमभिमानी परं पराभवति । अस्थिरस्वभावोऽथवाऽकलङ्कगुणा जगति विरलाः ॥ २६ ॥
नृपवंशजातोऽपरेण कथमपि जयामि यदि स्वविद्यया । ततः कथयामि प्रतिज्ञारूढो दुःषहं चिताज्वलनम् ॥ २७ ॥
एवमसंज्ञकश्रुतज्ञानजनितगुरुगर्वपर्वतारूढः । उद्धरस्कन्धो नगरे वराहमिहिरः परिभ्रमति ॥ २८ ॥
अथान्यदा कदाचित्सावित्री गर्भसम्भवः पुत्रः । सर्वाङ्गलक्षणधरः सञ्जातः शुभमुहुर्ते ॥ २९ ॥
वर्धापितश्च दास्या राजास्थानसंस्थितो विप्रः । नवरं हर्षस्थानेऽपि श्यामवदनो द्विजो जातः ॥ ३० ॥
यस्मात्तच्चैव लग्नं विनिश्चित्तं न पुनरागमनकालः । परिगणितो दास्या सुतजन्मोत्पत्तिरसिकेन ॥ ३१ ॥

निवपुच्छिएण भणियं देव ! इमो एरिसम्मि लग्गम्मि । संजाओ मज्झ सुओ जह वड्ढंतो अलक्खणओ ॥ ३२ ॥
देवस्स य रज्जस्स य रट्ठस्स य जाव नियकुलस्सावि । जायइ विणासहेऊ कूरग्गहदिट्ठिवायाओ ॥ ३३ ॥
रन्ना भणियं अह हो ! असंगयं कहसु अत्थि जइ को वि । दोण्ह वि य खेमकरणत्तेणाण परिरक्खणोवाओ ॥३४॥
सो आह बिन्नि रज्जंतराइं जइ जाइ लंधिऊण महिं ! ता दुरियभरो एयस्स चेव निवडइ न संदेहो ॥ ३५ ॥
रायाऽऽह निग्घिणमिमं भणइ दिओ नीइमणुसरंतेहिं । कायव्वमवस्समिमं ति जंपिउं निग्गओ विप्पो ॥ ३६ ॥
पच्चइयपुरिस-सुहधाइमाइयं पउणिऊण सामग्गिं । तद्दिणजाओ पुत्तो पिउणा निस्सारिओ सिग्घं ॥ ३७ ॥
भणिओ सो परिवारो सोलसवासाणमेस पज्जंते । मरिही ता तुब्भेहिं वलियव्वं किं वियप्पेणं ? ॥ ३८ ॥
अवगणिय सुयसिणेहं अवगणिय जणं पि निग्घणं कम्मं । पुत्तस्स पिया ववसइ अहो ! सकज्जस्स गरुयत्तं ॥३९॥
कइय वि दिणाणि परिदेविऊण ववहरइ निव्वुओ जणओ । राया जणो वि अहवा दंसणसाराइं पेम्माइं ॥ ४० ॥
सो वि हु परिवारजुओ दक्खिणदेसं गओ गरुयपुन्नो । दीसंतो सुहजणओ पच्चक्खो पुन्नरासि व्व ॥ ४१ ॥
जाओ य अट्ठवरिसो लेहायरियस्स पायमूलम्मि । विणयजुओ पयईए पयत्तओ पढिउमाढत्तो ॥ ४२ ॥
चउदसविज्जाठाणा चउरो वेया सहंग-निग्घंटा । अइरेण तेण नाया विसेसओ जोइस-निमित्तं ॥ ४३ ॥
लायन्न-रूव-जोव्वण-विज्जा-विन्नाणपत्तमाहप्पो । पत्तपहाकरनामो गओ समिद्धिं पसिद्धिं च ॥ ४४ ॥
परदेस-नियदेसाण वन्नणं वढ ! कुणंति काउरिसा । परदेसो वि सदेसो सत्ताहिय-पुन्नवंताणं ॥ ४५ ॥

नृपपृष्टेन भणितं देव ! अयमीदृशे लग्ने । सञ्जातो मम सुतो यथा वर्धमानोऽलक्षणकः ॥ ३२ ॥
देवस्य च राज्यस्य च राष्ट्रस्य च यावन्निजकुलस्यापि । जायते विनाशहेतुः क्रुरग्रहदृष्टिवादात् ॥ ३३ ॥
राज्ञा भणितं अह हो ! असंगतं कथयास्ति यदि कोऽपि । द्वयोरपि च क्षेमकरणत्वेन परिरक्षणोपायः ॥ ३४ ॥
स आह द्वे राज्यान्तरे यदि याति लङ्घयित्वा महीम् । ततो दुरितभार एतस्य चैव निपतति न सन्देहः ॥ ३५ ॥
राजाऽऽह निर्घृणमिमं भणति द्विजो नीतिमनुसरद्भिः। कर्तव्यमवश्यमिदमिति जल्पित्वा निर्गतो विप्रः ॥ ३६ ॥
प्रत्यायितपुरुष-सुखधात्र्यादिकं प्रगुण्य सामग्रीम् । तद्दिनजातः पुत्रः पित्रा निःसारितः शीघ्रम् ॥ ३७ ॥
भणितः स परिवारः षोडशवर्षाणामेष पर्यन्ते । मरिष्यति ततो युष्मद्भिर्वलितव्यं किं विकल्पेन ? ॥ ३८ ॥
अवगण्य सुतस्नेहमवगण्य जनमपि निर्घृणं कर्म । पुत्रस्य पिता व्यवसयत्यहो ! स्वकार्यस्य गुरकत्वम् ॥ ३९ ॥
कत्यपि दिनानि परिदेव्य व्यवहरति निर्वृत्तो जनकः । राजा जनोऽप्यथवा दर्शनसाराणि प्रेमाणि ॥ ४० ॥
सोऽपि हु परिवारयुतो दक्षिणदेशं गतो गुरुकपुण्यः । दर्शयन् सुखजनकः प्रत्यक्षः पुण्यराशिरिव ॥ ४१ ॥
जातश्चाष्टवर्षो लेखाचार्यस्य पादमूले । विनययुतः प्रकृत्या प्रयत्नतः पठितुमारब्धः ॥ ४२ ॥
चतुर्दशविद्यास्थानानि चत्वारो वेदाः साङ्ग-निर्घण्टाः । अचिरेण तेन ज्ञाता विशेषतो ज्योतिर्निमित्तम् ॥ ४३ ॥
लावण्य-रूप-यौवन-विद्या-विज्ञानप्राप्तमाहात्म्यः । प्राप्तप्रभाकरनामा गतः समृद्धिं प्रसिद्धिं च ॥ ४४ ॥
परदेश-निजकदेशयो वर्णनं मुर्ख ! कुर्वन्ति कापुरुषाः । परदेशोऽपि स्वदेशः सत्त्वाधिक-पुण्यवताम् ॥ ४५ ॥

अह कइया वि हु जोइसबलेण नियजायगम्मि विन्नाए । विम्हइओ नियमणेअहो ! हु तायस्स अथिरत्तं ॥ ४६ ॥
जं सुहलग्गं पि असोहणं ति कलिऊण चावलबलेणं । अन्नाणवसेण कहं विदेसभागी अहं विहिओ ? ॥ ४७ ॥
अहवा महोवयारी मह ताओ देसदंसणे जम्हा । गुणपयरिसो महंतो संजाओ जेण भणियं च ॥ ४८ ॥
क्व विलासाः ? क्व पाण्डित्यं ? क्व बुद्धिः ? क्व विदग्धता ? । क्व देशभाषाविज्ञानं ? क्व देशाचारचारुता ॥४९॥
यावद् धूर्तसमाकीर्णा नानावृत्तान्तसङ्कुला । नानेकशः परिभ्रान्ता पुरुषेण वसुन्धरा ॥ ५० ॥
एवं कए वि गुरुणो कुलप्पसूयाण गोरवट्ठाणं । ता कइया वि हु तेसिं संतोसमहं करिस्सामि ॥ ५१ ॥
एत्थंतरम्मि पच्छिमवयम्मि विप्पस्स वट्टमाणस्स । पाडलिपुत्ते पुत्तो पुणरवि अवरो समुप्पण्णो ॥ ५२ ॥
रायाएसेण तओ मणयं पिउणा पहिट्ठचित्तेण । महईए विभूईए वद्धावणयं समाढत्तं ॥ ५३ ॥
रायाई पउरजणो पायं पत्तो पुरोहियगिहम्मि । अक्खयपत्तविहत्थो सुयजम्ममहूसवे सव्वो ॥ ५४ ॥
तत्थेव विहरमाणा समागया भद्दबाहुणो गुरुणो[१] । नवरं निस्संगत्ता विप्पस्स गिहं न ते पत्ता ॥ ५५ ॥
मच्छरवसेण पुणरवि तमेव खूणं मणम्मि धरिऊणं । लोग-ववहारबज्झ त्ति निंदई लोयमज्झम्मि ॥ ५६ ॥
सूरी सुओवओगं काउं तहियं तहाकए कमवि । पासिय गुणं महंतं जाणावइ सत्तमदिणम्मि ॥ ५७ ॥
एक्काए वाराए पडिबोहत्थं समागमिस्सामो । सोम ! जमम्हे सज्झायवावडा निच्चमक्खणिया ॥ ५८ ॥

अथ कदापि हु ज्योतिर्बलेन निजजातके विज्ञाते । विस्मितो निजमनस्यहो ! हु तातस्यास्थिरत्वम् ॥ ४६ ॥
यच्छुभलग्नमप्यशोभनमिति कलित्वा चापलबलेन । अज्ञानवशेन कथं विदेशभाग्यहं विहितः ? ॥ ४७ ॥
अथवा महोपकारी मम तातो देशदर्शने यस्मात् । गुणप्रकर्षो महान्सञ्जातो येन भणितं च ॥ ४८ ॥
....। ....॥ ४९ ॥
....। ....॥ ५० ॥
एवं कृतेऽपि गुरवः कुलप्रसूतानां गौरवस्थानम् । ततः कदापि हु तेषां सन्तोषमहं करिष्यामि ॥ ५१ ॥
अत्रान्तरे पश्चिमवयसि विप्रस्य वर्तमानस्य । पाटलिपुत्रे पुत्रः पुनरप्यपरः समुत्पन्नः ॥ ५२ ॥
राजादेशेन ततो मनाक् पित्रा प्रहृष्टचित्तेन । महत्या विभूत्या वर्द्धापनकं समारब्धम् ॥ ५३ ॥
राजादिः पौरजनः प्रायः प्राप्तः पुरोहितगृहे । अक्षयपात्रविहस्तः सुतजन्ममहोत्सवे सर्वः ॥ ५४ ॥
तत्रैव विहरन्तः समागता भद्रबाहवः गुरवः । नवरं निस्संगत्वाद्विप्रस्य गृहं न ते प्राप्ताः ॥ ५५ ॥
मत्सरवशेन पुनरपि तमेवापराधं मनसि धृत्वा । लोक-व्यवहारबाह्य इति निन्दति लोकमध्ये ॥ ५६ ॥
सूरिः श्रुतोपयोगं कृत्वा तथ्यं तथाकृते कमपि । दृष्ट्वा गुणं महान्तं ज्ञापयति सप्तमदिने ॥ ५७ ॥
एकया वारया प्रतिबोधार्थं समागमिष्यामः । सौम्य ! यद्वयं स्वाध्यायव्यापृता नित्यमक्षणिकाः ॥ ५८ ॥

---

१. पहुओ रं० ।

तम्मि दिणे उण सुयमरणसंभवे तुज्झ सोयत्तस्स । धम्मोवएस नीरेण निव्वुइं भद्द ! काहामो ॥ ५९ ॥

तं वयणं सोऊणं घयसित्तो पावओ व्व पज्जलिओ । पडिहयममंगलमिमं तुह चेव य मत्थए पडउ ॥ ६० ॥

जइ पुण जाणसि सेवडय ! किं पि ता मरणकारणं कहसु । मज्जारीए पासाओ भद्द ! मरणं तुह सुयस्स ॥ ६१ ॥

एसो मिच्छावाइ त्ति होउ निच्छिड्ड-निबिडकट्ठेहिं । घडिए कट्ठहरम्मि खित्तो पुत्तो सजणणीओ ॥ ६२ ॥

दारम्मि निबिडलउडयहत्था दो दो पयंडपाहरिया । धाराविया बिरालीरक्खणनिउणेण विप्पेण ॥ ६३ ॥

तो जाव सत्तमदिणे परिचारीए पमायवसगाए । मुक्का भुयग्गला अवणिऊण सेज्जासमीवम्मि ॥ ६४ ॥

जणणीउच्छंगगयस्स तत्थ थिमियं थणं पियंतस्स । पडिया मम्मपएसे सुयस्स भवियव्वयावसओ ॥ ६५ ॥

मम्मप्पहारविवसो पत्तो सो तक्खणेण पंचत्तं । नाऊण निरुच्छासं घस त्ति धरणिं गया जणणी ॥ ६६ ॥

मुट्ठा मुट्ठ त्ति हया हय त्ति धाहावियं सदुक्खाए । किं किं एयं ? ति पयंपिरेण रुन्नं दिएण चिरं ॥ ६७ ॥

हा हा हयविहि ! पच्छिमवयम्मि दाऊण पुत्तरयणनिहिं । पुन्नरहियस्स निद्दय ! नित्तुद्धारो कओ मज्झ ॥ ६८ ॥

रायाई पउरजणो जाओ सुयसंभवम्मि जह सुहिओ । तह तम्मरणम्मि दुही धिरत्थु संसारियसुहस्स ॥ ६९ ॥

किं बहुणा मोहनराहिवस्स आणाए सोयचरडेण । जह कहिउं पि न तीरइ तह तत्थ वियंभियं बहुहा ॥ ७० ॥

गुरुणो वि तत्थसिरिभद्दबाहुणो मुणियसमयसारत्था । संपत्ता रायाईहिं पूइया सुहनिसन्ना य ॥ ७१ ॥

संभासिओ य भो भद्द ! भवसरूवं वियाणमाणो वि । खणभंगुरम्मि लोए कीस मुहा सोयसि सुयं तं ? ॥ ७२ ॥

तस्मिन् दिने पुनः सुतमरणसम्भवे तव शोकार्त्तस्य । धर्मोपदेशनीरेण निर्वृत्तिं भद्र ! करिष्यामः ॥ ५९ ॥

तद्वचनं श्रुत्वा घृतसिक्तः पावक इव प्रज्वलितः । प्रतिहतममङ्गलमिदं तव चैव च मस्तके पततु ॥ ६० ॥

यदि पुनर्जानाति श्वेतपटक ! किमपि तावन्मरणकारणं कथय । मार्जायाः पार्श्वाद्भद्र ! मरणं तव सुतस्य ॥ ६१ ॥

एष मिथ्यावादीति भवतु निच्छिद्र निबिडकाष्टैः । घटिते काष्टगृहे क्षिप्तः पुत्रः सजननीकः ॥ ६२ ॥

द्वारे निबिडलकुटकहस्तौ द्वौ द्वौ प्रचण्डप्राहरिकौ । धारितो बिडालीरक्षण निपूणेन विप्रेण ॥ ६३ ॥

ततो यावत्सप्तमदिने परिचार्या प्रमादवशगया । मुक्ता भुजार्गलाऽपनीय शय्यासमीपे ॥ ६४ ॥

जनन्युत्सङ्गगतस्य तत्र स्तिमितं स्तन्यं पिबतः । पतिता मर्मप्रदेशे सुतस्य भवितव्यतावशात् ॥ ६५ ॥

मर्मप्रहारविवशः प्राप्तः स तत्क्षणेन पञ्चत्वम् । ज्ञात्वा निरुच्छ्वासं धसेति धरणिं गता जननी ॥ ६६ ॥

मृष्टा मृष्टेति हता हतेति पूत्कृतं सदुःखया । किं किमेतदिति प्रजल्पता रुदितं द्विजेन चिरम् ॥ ६७ ॥

हा हा हतविधे ! पश्चिमवयसि दत्वा पुत्ररत्ननिधिम् । पुण्यरहितस्य निर्दय ! नित्योद्धारः कृतो मम ॥ ६८ ॥

राजादिः पौरजनो जातः सुतसम्भवे यथा सुखितः । तथा तन्मरणे दुःखी धिगस्तु सांसारिकसुखस्य ॥ ६९ ॥

किं बहुना मोहनराधिपस्याज्ञया शोकचरटेन । यथा कथयितुमपि न शक्यते तथा तत्र विजृम्भितं बहुधा ॥ ७० ॥

गुरवोऽपि तत्र श्रीभद्रबाहवो मुणितसमयसारार्थाः । सम्प्राप्ता राजादिभिः पूजिताः सुखनिषण्णाश्च ॥ ७१ ॥

सम्भाषितश्चभो भद्र ! भवस्वरूपं विजानन्नपि । क्षणभङ्गुरे लोके कथं मुधा शोचसि सुतं त्वम् ? ॥ ७२ ॥

जओ–

होहिंति केइ विहडंति केइ कालेण केइ वोलीणा । हे हियय ! केत्तियाणं सयणाण कए विसूरिहसि ? ॥ ७३ ॥

अवरं च–

पिइ-माइ-पमुहसयणत्तेणण जीवा अणंतवाराओ । सव्वे वि य संजाया जीवस्स उ एगमेगस्स ॥ ७४ ॥

इय भयवइवयणेहिं सवणामयरसपवाहमहुरेहिं । भवियायणदइएहिं सोयसमुच्छेयछेएहिं ॥ ७५ ॥

आसंघयवसएणं सहोयरेणं दढं समणुसट्ठे । सो तारिसो वि दुट्ठो धम्माभिमुहो दिओ जाओ ॥ ७६ ॥

भणियं च–

आगमलंभे वयपरिणईए भंगे य धण-विलासाणं । ईसिअसमंजसाण वि हिययाइं वहंति परिणामं ॥ ७७ ॥

भणियं च तेण भयवं ! तुह वयणं मरणनिच्छयकरं जं । तं परिभाविज्जंतं सच्चमसच्चं च पडिहाइ ॥ ७८ ॥

गुरुणा भणियं कहमिव ? तेणुत्तं सत्तमम्मि दिवसम्मि । जायं सुयस्स मरणं न उण बिरालीसयासाओ ॥ ७९ ॥

जइ एवं तो कत्तो ? सो आह भुयग्गलापहाराओ । सा केरिस ? त्ति गहिऊण जोइयं जाव तीए मुहं ॥ ८० ॥

तावववणा पडिबिंबं दिट्ठं निक्कुट्टियं बिरालीए । दंसिज्जइ जस्स तओ जंपइ एसा बिरालि त्ति ॥ ८१ ॥

मिच्छत्तावगमाओ तप्पभिई जिणमयप्पसिद्धाणं । नामाईवत्थूणं विप्पमणे पच्चओ जाओ ॥ ८२ ॥

तयणु मणागमसोओ जाओ एसो गुरूवएसाओ । दुण्ह वि सुयाण मरणं हिययम्मि खुडुक्कए नवरं ॥ ८३ ॥

यतः -

भविष्यन्ति केऽपि विघटन्ति केऽपि कालेन केऽपि गताः । हे हृदय ! कियतां स्वजनानां कृते खिद्यसे ? ॥ ७३ ॥

अपरंच -

पितृ-मातृ-प्रमुख स्वजनत्वेन जीवा अनन्तवाराः । सर्वेऽपि च सञ्जाता जीवस्य त्वेकमेकस्य ॥ ७४ ॥

इति भगवतिवचनैः श्रवणामृतरसप्रवाहमधुरैः । भविकाजनदयितैः शोकसमुच्छेदछेकैः ॥ ७५ ॥

श्रद्धावशगेन सहोदरेण दृढं समनुशास्ते । स तादृशोपि दुष्टो धर्माभिमुखो द्विजो जातः ॥ ७६ ॥

भणितं च -

आगमलभ्ये व्रतपरिणत्या भङ्गे च धन-विलासानाम् । ईषदसमञ्जासानामपि हृदयाणि वहन्ति परिणामम् ॥ ७७ ॥

भणितं च तेन भगवन् ! तव वचनं मरणनिश्चयकरं यत् । तत् परिभाव्यमानं सत्यमसत्यं च प्रतिभाति ॥ ७८ ॥

गुरुणा भणितं कथमिव ? तेनोक्तं सप्तमे दिवसे । जातं सुतस्य मरणं न पुन बिडालीसकाशात् ॥ ७९ ॥

यद्येवं तदा कस्मात् ? स आह भुजार्गलाप्रहारात् । सा कीदृशीति ? गृहीत्वा दृष्टं यावत्तस्या मुखम् ॥ ८० ॥

तावत्प्रतिबिम्बं दृष्टं निष्कुट्टितं बिडाल्या । दृश्यते यस्य ततो जल्पत्येषा बिडालीति ॥ ८१ ॥

मिथ्यात्वापगमात्तत्प्रभूति जिनमतप्रसिद्धानाम् । नामादिवस्तूनां विप्रमनसि प्रत्ययो जातः ॥ ८२ ॥

तदनु मनागशोको जात एष गुरूपदेशात् । द्वयोरपि सुतयो र्मरणं हृदये शल्यति नवरम् ॥ ८३ ॥

एत्थंतरम्मि देसंतराओ सो पुव्ववन्निओ पुत्तो । महईए विभूईए समागओ बाहिरुज्जाणे ॥ ८४ ॥

जाणावियं च नयरे जहित्थ जोइस-निमित्तसत्थविऊ । अवितहवयणो चिट्ठइ राया तहयं पयंसेह ॥ ८५ ॥

पयईए सोममुत्ती उज्जलनेवच्छभूसियसरीरो । पडिपुन्नसयलविन्नाणभावओ थिमियजलहि व्व ॥ ८६ ॥

पत्तो रायदुवारे पडिहारनिवेइओ अणुन्नाओ । रन्नो सहं पविट्ठो कयपडिवत्ती समुवविट्ठो ॥ ८७ ॥

रन्ना पुट्ठं किं भद्द ! अज्ज नियमेण दिवसमज्झम्मि । होही ? तेण वि भणियं मज्झन्हे बाहिरुज्जाणे ॥ ८८ ॥

पडिही मच्छो पणयालपलपमाणो विणिच्छिओ एस । अवलोइयं च तत्तो रन्ना वि वराहमिहिरमुहं ॥ ८९ ॥

जंपियमिमिणा पडिही नवरं पन्नासपलपमाणो सो । जइ एयमन्नहा तो नियपइन्ना मह पमाणं ॥ ९० ॥

कोउयवसेण नयराओ निग्गओ नरवई सपरिवारो । नंदणवणाभिहाणे संपत्तो बाहिरुज्जाणे ॥ ९१ ॥

मंडलमालिहिय तओ विप्पो सिंहासणे समासीणो । इयरेणं भणियमिमो मंडलयाओ बहिं पडिही ॥ ९२ ॥

उत्ताणतरलनयणो जाव निरायंनियइ नयरलोओ । ताव सुयभणियठाणे झडत्ति पडिओ नहाओ झसो ॥ ९३ ॥

तत्तो वारंतस्स वि नरनाहसमन्नियस्स पउरस्स । अट्टवसट्टो भट्टो झति पयट्टो चियाभिमुहं ॥ ९४ ॥

किंकायव्वविमूढं चियापवेसुज्जमं निसेहंतं । मरणम्मि निच्छियमई पत्थिवमिमो भणइ भट्टो ॥ ९५ ॥

सुयसोयग्गिपलित्तं विहलपइन्नं परेण परिभूयं । निव्ववउ देव ! दहणो जरज्जरियं मह सरीरं ॥ ९६ ॥

एत्थंतरम्मि हा ताय ! ताय ! मा साहसं ति भणमाणो । मन्नुभरागयनयणंसुवारिसंसित्तधरणियलो ॥ ९७ ॥

अत्रान्तरे देशान्तरात् स पूर्ववर्णितः पुत्रः । महत्या विभूत्या समागतो बाह्योद्याने ॥ ८४ ॥

ज्ञापितं च नगरे यथात्र ज्योतिर्निमित्तशास्त्रविदुः । अवितथवचनस्तिष्ठति राजा तथ्यं प्रदर्शयत ॥ ८५ ॥

प्रकृत्या सौम्यमूर्तिरुज्ज्वलनेपथ्यभूषितशरीरः । प्रतिपूर्णसकलविज्ञानभावात् स्तिमितजलधिरिव ॥ ८६ ॥

प्राप्तो राजद्वारे प्रतिहारनिवेदितोऽनुज्ञातः । राज्ञः सह प्रविष्टः कृतप्रतिपत्तिः समुपविष्टः ॥ ८७ ॥

राज्ञा पृष्टं किं भद्र ! अद्य नियमेन दिवसमध्ये । भविष्यति ? तेनापि भणितं मध्याह्ने बहिरुद्याने ॥ ८८ ॥

पतिष्यति मत्स्यः पञ्चचत्वारिंशत्पलप्रमाणो विनिश्चित एषः । अवलोकितं च ततो राज्ञापि वराहमिहिरमुखम् ॥ ८९ ॥

जल्पितमनेन पतिष्यति नवरं पञ्चाशत्पलप्रमाणः सः । यद्येतदन्यथा ततो निजकप्रतिज्ञा मम प्रमाणम् ॥ ९० ॥

कौतूकवचेन नगरान्निर्गतो नरपतिः सपरिवारः । नन्दनवनाभिधाने सम्प्राप्तो बहिरुद्याने ॥ ९१ ॥

मण्डलमालिख्य ततो विप्रः सिंहासने समासीनः । इतरेण भणितमयं मण्डलाद्बहिः पतिष्यति ॥ ९२ ॥

उत्तानतरलनयनो यावन्निरागं पश्यति नगरलोकः । तावत्सुतभणितस्थाने झटिति पतितो नभसो झषः ॥ ९३ ॥

ततो वार्यमाणस्यापि नरनाथसमन्वितस्य पौरस्य । आर्तवशार्तो भट्टः शीघ्रं प्रवृत्तश्चिताभिमुखम् ॥ ७४ ॥

किं कर्तव्यविमूढं चिताप्रवेशोद्यमं निषेधयन्तम् । मरणे निश्चयमतिः पार्थिवमयं भणति भट्टः ॥ ९५ ॥

सुतशोकाग्निप्रदीप्तं विफलप्रतिज्ञं परेण परिभूतम् । निर्वापयतु देव ! दहनो जराजर्जरितं मम शरीरम् ॥ ९६ ॥

अत्रान्तरे हा तात ! तात ! मा साहसमिति भणन् । मन्युभरागतनयनाश्रुवारिसंसिक्तधरणितलः ॥ ९७ ॥

एसोहं तुह सन्तावकारओ ताय ! सरसु पढमसुओ । नियतायपायपंकेरुहेसु पडिउं तह परुन्नो ॥ ९८ ॥

किं किं किमेयमेयं ? ति जंपिरो मन्नुपसरखलियसरो । जह नयरजणो हाहारवेण रोयाविओ सव्वो ॥ ९९ ॥

ताय ! नहमच्छपडणं सामन्नेणं वियाणियं तुमए । नवरं न वाउधुणणं तस्सोसणयं चऽणाभोगा ॥ १०० ॥

अन्नं च मए तुह निज्जियस्स किल केवल च्चिय सलाहा । भुवणंतरम्मि वुच्चइ पयडमिमं सत्थयारेहिं ॥ १०१ ॥

चाएण दरिद्दत्तं घाएहि य काण-कुंट-मंटत्तं । पुत्तेहि परिभवं जे गुणेहिं पावंति ते धन्ना ॥ १०२ ॥

पच्चुज्जीवियगुणवंतपुत्तलाभम्मि जं सुहं जायं । हारवियरयणलाभि व्व तीरए तं न कहिउं जे ॥ १०३ ॥

उक्तं च–

चिरविरहियपियजणसंगमम्मि जायइ जणस्स जं सोक्खं । तं कहिउं पि न तीरइ संकासं निरुवमसुहस्स ॥ १०४ ॥

पडुपडह-संख-काहलरवेण रन्ना गइंदमारूढो । तग्गुणवंदणसुहयं पवेसिओ जणयभवणम्मि ॥ १०५ ॥

एत्थ य लहुपुत्तो च्चिय दिट्ठंतो पत्थुयत्थविसयम्मि । जेट्ठसुयचरियकहणं पसंगओ चेव नायव्वं ॥ १०६ ॥

पवणखुहियनीरं नीरनाहं धरंति, झरियमयपवाहं वारणं वारयंति ।
खरनखरकरालं केसरिं दारयंति, न उण बलजुया वी दिव्वमेतं जयंति ॥ १०७ ॥

॥ द्विजसुतकथानकं समाप्तम् ॥ १०८ ॥

एषोऽहं तव सन्तापकारकस्तात ! स्मर प्रथमसुतः । निजतातपादपङ्केरुहेषु पतित्वा तथा प्ररुदितः ॥ ९८ ॥

किं किं किमेतदेतदिति जल्पन्मन्युप्रसरस्खलितस्वरः । यथा नगरजनो हाहारवेण रोदितः सर्वः ॥ ९९ ॥

तात ! नभोमत्स्यपतनं सामान्येन विजानीतं त्वया । नवरं न वायुधुननं तस्यावसर्पणं चानाभोगात् ॥ १०० ॥

अन्यच्च मया तव निर्जितस्य किल केवलं चैव श्लाधा । भुवनान्तरे उच्यते प्रकटमिदं शास्त्रकारैः ॥ १०१ ॥

त्यागेन दारिद्रत्वं घातैश्च काण-कुण्ठ-मुण्डत्वम् । पुत्रैः परिभवं ये गुणैः प्राप्नुवन्ति ते धन्याः ॥ १०२ ॥

प्रत्युज्जीवितगुणवत्पुत्रलाभे यत्सुखं जातम् । हारितरत्नलाभ इव तीर्यते तन्न कथयितुं ये ॥ १०३ ॥

उक्तं च -

चिरविरहितप्रियजनसंगमे जायते जनस्य यत्सौख्यम् । तत्कथयितुमपि न शक्नोति संकाशं निरुपमसुखस्य ॥ १०४ ॥

पटुपटह-शङ्ख-काहलरवेण राज्ञा गजेन्द्रमारूढः । तद्गुणवन्दनसुभगं प्रवेशितो जनकभवने ॥ १०५ ॥

अत्र च लघुपुत्रश्चैव दृष्टान्तः प्रस्तुतविषये । ज्येष्ठसुतचरित्रकथनं प्रसंगतश्चैव ज्ञातव्यम् ॥ १०६ ॥

पवनक्षोभितनीरं नीरनाथं धरन्ति, गलन्मदप्रवाहं वारणं वारयन्ति ।
खरनखरकरालं केसरिं दारयन्ति न पुनर्बलयुता अपि दिव्यमेतज्जयन्ति ॥ १०७ ॥

॥ द्विजसुतकथानकं समाप्तम् ॥ १०८ ॥

इदानीं कुक्कुटाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्—

अस्ति शालीनसल्लोकलोचनानन्ददायकः । गोधूम-यव-शाल्यादिसस्यशालीनसज्जनः ॥ १ ॥

पुष्टगोवृन्दसम्मर्दशब्दितश्रुतिसौख्यकृत् । गोप-गोपीसमारब्धरासकश्रुतिसुन्दरः ॥ २ ॥

दुर्भिक्ष-मारि-दौर्गत्य-परोपद्रववर्जितः । शालिग्रामाभिधः श्रीमान्सन्निवेशो जनाकुलः ॥ ३ ॥

तत्रानेकगुणाधारैरुत्तमा-ऽधम-मध्यमैः । मानवैर्निर्मितावासैः सर्वदा सुस्थिते सति ॥ ४ ॥

विजातीयविशेषस्य सम्बन्धी कस्यचिद् वरः । विद्यते व्यक्तावयवो विहङ्गः कुक्कुटाह्वयः ॥ ५ ॥

बह्वपत्य-सपत्नीक-स्वबन्धुस्नेहसङ्गतः । भक्ष्यार्थं विकिरन्नुच्चैश्चञ्चू-चरणकोटिभिः ॥ ६ ॥

गोमयावकरं हर्षादशुच्यादिसमन्वितम् । विरूपं यदि वा किं नो कुर्यात् प्राणी बुभुक्षितः ? ॥ ७ ॥

तस्मिन् यल्लभते किञ्चित् कण-कीटादिकं तकत् । यच्छत्यतुच्छधीः प्रायः स्वबन्धुभ्यो महाशयः ॥ ८ ॥

उक्तं च—

शीर्षे शेखरकः कुक्कुटस्य युक्तःकृतः प्रजापतिना । निजबन्धुवण्टनोद्धरितमश्नतः सत्यसन्धस्य ॥ ९ ॥

एवं निर्वृतचित्तस्य कुटुम्बकृतसन्निधेः । पुण्यक्षयेण यत् तस्य सञ्जातं तन्निशम्यताम् ॥ १० ॥

महीयान् महिषारूढो दण्डपाणिः परन्तपः । कालकायः क्रियाक्रूरो रक्तनेत्रोऽतिभीषणः ॥ ११ ॥

स्वच्छन्दः सर्ववैरी च जगदुद्वेजको यमः । भ्राम्यन् कुतोऽपि पापीयांस्तं प्रदेशमुपाययौ ॥ १२ ॥

यत्राऽऽस्ते स सुखी पक्षी बन्धुवर्गसमन्वितः । दुष्टेन पाप्मना तेन क्रूरदृष्ट्याऽवलोकितः ॥ १३ ॥

ततो हा ! मन्दभाग्योऽहं मृतोऽहमधुनाऽमुना । निर्ध्यातः क्रूरचितेन कथं जीवाम्यपुण्यकः ? ॥ १४ ॥

क्व प्रयामि ? क्व तिष्ठामि ? क्व शयामि ? स्मरामि कम् ? । अरत्या स्वीकृतः स्वास्थ्यं नाऽऽससाद कथञ्चन ॥१५॥

एवं सम्भ्रान्तचित्तस्य सम्यक् चिन्तयतश्चिरं । भयोद्विग्नमनोवृत्तेः कथञ्चिच्चेतसि स्थितम् ॥ १६ ॥

विधुरैः स्मर्यते बन्धुरस्माकं विहगोत्तमः । वैनतेयो वरो बन्धुरतो यामि तदन्तिकम् ॥ १७ ॥

अफलस्यापि वृक्षस्य छाया भवति शीतला । निर्गुणोऽपि वरं बन्धुर्यः परः पर एव सः ॥ १८ ॥

सञ्चिन्त्यैवं स्मरन् भर्तुस्त्राणार्थं मृत्युसम्भ्रमात् । जगाम जगतो वर्यं वेगाद् बैडोजसंसदः ॥ १९ ॥

तच्च कीदृशम् ?—

क्वचिन्नीलमहानीलभास्वरे कुट्टिमे सुरः । व्रजंस्तिष्ठन् जलाशङ्की सहासं विप्रतार्यते ॥ २० ॥

दृष्ट्वा स्फाटिकनिष्पङ्कभित्तिसङ्क्रान्तमेकतः । स्वमन्यस्त्रीकृताशङ्का भर्त्रा कान्तोपहस्यते ॥ २१ ॥

अतीतप्राप्तनिर्वाणजिनदंष्ट्रासमन्वितम् । देवैर्माणवकस्तम्भं पूज्यमानं व्यलोकयत् ॥ २२ ॥

क्वचिच्चाभिनवोत्पन्नं सुरं स्वीयैः सुरादिभिः । जीव नन्द जयेत्येवं श्लाघ्यमानं निरीक्षते ॥ २३ ॥

अनादिनिधनं सिद्धप्रतिमाष्टोत्तरं शतम् । सिद्धायतनमध्यस्थं स्तूयमानं समीक्षते ॥ २४ ॥

क्वचित् पुष्प-फलोपेतैर्मन्दारादिमहीरुहैः । मनोहरं वनं हृष्टो [1]निशामयति नन्दनम् ॥ २५ ॥

क्वचित् सद्रत्नसोपानां स्वच्छपानीयपूरिताम् । मज्जनार्थं महावापीं विह्वलोऽपि विलोकते ॥ २६ ॥

अहो ! आपदियं सम्पद् व्यसनं च महोत्सवः । यन्मयैतच्छुभं दृष्टं सौरं[2] धामेत्यचिन्तयत् ॥ २७ ॥

किञ्च—

रत्नरोचिष्णुसन्मौलिभ्राजिष्णुं सिंहविष्टरम् । अलङ्करिष्णुं सौराज्याज्जिष्णुं सर्वं जगत्त्रयम् ॥ २८ ॥

प्रशस्तकामिनीहस्तधूयमानप्र[3]कीर्णकम् । अनिन्द्यबन्दिसद्वृन्दगीयमानगुणोत्करम् ॥ २९ ॥

अखर्वगर्वगीर्वाणभटकोटिसमन्वितम् । पारद्धर्यं भाग्यसौभाग्यमहर्द्धिद्युतिविक्रमम् ॥ ३० ॥

[4]विरत्नैरपि विख्यातैर्नवभेदैः समाश्रितैः । शक्रं सत्यापयामास त्रिदशैरुपसेवितम् ॥ ३१ ॥

तथा हि—

माता-पितृवत् सम्मान्या गौरव्या गुरुवद् गुणैः । इन्द्रसामानिका देवाः स्वःपतिं पर्युपासते ॥ ३२ ॥

त्रायस्त्रिंशास्त्रयस्त्रिंशत्प्रमाणा मन्त्रवन्मताः । शान्तिकर्मणि साधिष्ठा महिष्ठाश्च महन्ति तम् ॥ ३३ ॥

नर्मकर्मणि विद्वांसः प्रवीणाः प्रेमभाजनम्। मित्रकल्पाः कलाभिज्ञाः पारिषद्याः स्तुवन्ति तम् ॥ ३४ ॥

सन्नद्धबद्धवर्माणः समुद्गीर्णस्वहेतवः । आत्मरक्षाः क्षमासारा नमन्ति द्युसदां पतिम् ॥ ३५ ॥

आरक्षिकभटप्रायाः सन्धि-विग्रहकारिणः । नमन्ति नम्रमूर्धानो लोकपाला बलद्विषम् ॥ ३६ ॥

सप्तप्रकारसैन्यस्य नायका नयशालिनः । विक्षेपप्रभवोऽनीका नमस्कुर्वन्ति वासवम् ॥ ३७ ॥

प्रकीर्णकवणिक्प्रख्या अनायत्ता प्रभोरपि । सेवायै स्वर्गनाथस्य प्रयतन्ते प्रकीर्णकाः ॥ ३८ ॥

लोककर्मकरप्रायाः सदाऽऽदेशविधायिनः । आभियोग्याः प्रभोर्भोग्या भजन्ते तमृभुप्रभुम् ॥ ३९ ॥

कुकर्मकरणव्यग्राः कुकर्मफलभोजिनः । नमस्कुर्वन्ति दूरस्थाः शक्रं किल्बिषिकाः सुराः ॥ ४० ॥

तस्यैवं कौतुकाक्षिप्तचेतसः स्मृतिमागतम् । यमावलोकितं तादृक् ततोऽसौ भयविह्वलः ॥ ४१ ॥

गौरव्यं देवराजस्य स्फूर्जत्प्राज्यपराक्रमम् । पक्षिराजं जितारातिं स्वत्राणार्थमशिश्रियत् ॥ ४२ ॥

प्रणम्य वैनतेयाय ब्रूते प्रीतिपुरस्सरम् । ताताहं भवतोऽपत्यं मृत्योस्त्रस्तः समाश्रितः ॥ ४३ ॥

अद्याहं सुस्थितो यावत् तिष्ठामि सकुटुम्बकः । तावद् विलोकितोऽनेन कुतश्चित् क्रूरकर्मणा ॥ ४४ ॥

आपन्नैः स्मर्यते त्राता त्वं मे त्राता पिता प्रभुः । पाहि माममुतः पापाद् बिभ्यन्तं भीमकर्मणः ॥ ४५ ॥

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् समचिन्ति गरुत्मता । यमेन विहितोऽस्माकं पश्य कीदृक् पराभवः ? ॥ ४६ ॥

मा भैषीः पुत्रकेत्येवं तमाश्वास्य विहङ्गमम्। तेनैव सह सम्भ्रान्तः शक्रान्तिकमगादसौ ॥ ४७ ॥

दर्शयित्वा तकं तस्मै सानुक्रोशतया पुरः । वज्रिणे विहगाधीशो मनाग् रुष्टो व्यजिज्ञपत् ॥ ४८ ॥

---

१. निरीक्षते । २. सुराणां सम्बन्धि धाम-निवासः, स्वर्ग इत्यर्थः । ३. चामरम् । ४. विरत्नानि-दिव्यरत्नानि । तानि चेमानि-"रत्नं गारुत्मतं पुष्परागो माणिक्यमेव च । इन्द्रनीलश्च गोमेदः तथा वैडूर्यमेव च ॥ १ ॥ मौक्तिकं विद्रुमश्चेति रत्नान्युक्तानि वै नव ।"

स्वामिन् ! निरागसं सौम्यं मत्सेवकमपापकम् । पराभवति ते पत्तिरस्माकं प्रियपुत्रकम् ॥ ४९ ॥
किमस्य युज्यते कर्तुं दुर्बले बलशालिनः । उपेक्षणं यदेतस्य भवतो वा विवेकिनः ? ॥ ५० ॥
स्वच्छन्दं सञ्चरत्येष कुरङ्गेष्विव केशरी । भ्राम्यत्यनर्गलो भञ्जन् द्रुमेष्विव परभञ्जनः ॥ ५१ ॥
तदयं निर्दयो भ्राम्यन्ननार्यो वार्यतां यमः । नो चेच्चञ्च्वाऽहमेतस्य त्रोटयिष्यामि मस्तकम् ॥ ५२ ॥
स्थिरत्वादम्यधादिन्द्रो भद्रैवं मा वृथा रुषः । दुर्जयोऽयं जगन्मल्लो यमश्चारभटो भटः ॥ ५३ ॥
न चैनमीदृशैर्वाक्यैः कश्चिच्छिक्षयितुं क्षमः । शिक्षयिष्येऽहमेवातः सम-दण्डप्रयोगतः ॥ ५४ ॥
आकार्य भणितः साम्ना मुञ्चाऽमुं तुच्छपक्षिणम् । न कषत्यंसभित्तिं स्वामल्पस्कन्धे द्रुमे गजः ॥ ५५ ॥
सामतो भणितोऽप्येवं तुच्छः सावज्ञमीक्षते । सर्पिः प्रदीयते तप्तं सिक्तं शीताम्भसाऽथवा ॥ ५६ ॥
आः पापीयंस्तवानेनापराद्धं किं तपस्विना ? । निस्त्रिंश ! यन्नयस्येनं पक्षिणं क्षीणविग्रहम् ॥ ५७ ॥
साकं स्वामिनिवेशेन मुच्यतां मा वधीरमुम् । हठेनापि भवत्पार्श्वाद् रक्षणीयो मया यतः ॥ ५८ ॥
भद्रैवं क्रियतां मत्तो भद्रं नापरथा तव । तावच्चक्रीवतः[1] कर्णौ यावद् भोः ! स्वामिनो मतौ ॥ ५९ ॥
अभिप्रायममुं ज्ञात्वा नायकस्य दिवौकसाम् । याथातथ्याद् यमो वाक्यं व्याजहार जगज्जयम् ॥ ६० ॥
आराध्यस्त्वं मम स्वामी तवाहं पत्तिरन्वहम् । त्वया सार्धं मम स्पर्धा कीदृशीति विभाव्यताम् ॥ ६१ ॥
परमादित्सितं वस्तु यन्मया भवनत्रये । तं न त्रातुमलं कोऽपि किं नाश्रावि सुभाषितम् ? ॥ ६२ ॥
न ब्रह्मा नेन्दुमौलिः शशधर-तपनौ नापि नारायणोऽसौ, नाप्यष्टौ लोकपालाः सह सुरपतिना नापि बुद्धो न चार्हन् ।
आकृष्टं कालपाशैर्जनमनुदिवसं नीयमानं वराकं, व्याघ्राघ्रातं वनान्तात् पशुमिव विवशं त्रातुमेते न शक्ताः ॥ ६३ ॥
क्रोडीकृतो मयाऽप्येष आयुषः सङ्क्षये सति । निःसन्देहं ततो मत्तो मर्तव्यममुनाऽधुना ॥ ६४ ॥
एतच्छ्रुत्वा विशेषेण कम्पमानं पुरःस्थितम् । दृष्ट्वा त्रातुमशक्तस्तं शक्रोऽभूद् विह्वलः क्षणम् ॥ ६५ ॥
तथा हि-
विज्ञापनाप्रवृत्तं तं गरुडं स्निग्धया दृशा । पश्यन्तं जातसंशीत्या विवक्षन्तं च वासवम् ॥ ६६ ॥
सुरान् सामानिकादींश्च त्राणार्थं दीनया मुहुः । तर्जयन्तं मुहुस्त्रस्ततारया यममेकया ॥ ६७ ॥
क्रियाहीनं कृपापात्रं कृतान्तवशवर्तिनम् । सतां शोच्यं सुदीनास्यं दुस्थितं गद्गदस्वरम् ॥ ६८ ॥
तदवस्थं समालोक्य दयैकरसिकः सुरः । शक्रसंसदि नास्त्येव सो नाभूत् साश्रुलोचनः ॥ ६९ ॥
दुःखितेषु सुरेष्वेवं परमेको यमः सुखी । दुःखापन्नेऽथवा साधावसाधुः सुखमश्नुते ॥ ७० ॥
हा हा ! धिग् ! धिग् ! वराकोऽयमस्माकं शरणागतः । न त्रातुं शक्तिऽस्माभिर्महानेष पराभवः ॥ ७१ ॥
विषण्णमानसा एवं गीर्वाणा यावदासते । विवेकात् सत्त्वमालम्ब्य तावदुक्तं बिडौजसा ॥ ७२ ॥
अहो देवाः ! पराभूय वक्रवाक्यममुं यमम् । जीवितव्यं प्रयच्छामः कथञ्चित् कृकवाकवे[2] ॥ ७३ ॥

---

१. गर्दभस्य । २. कुक्कुटाय ।

अयं हि स्वीकृतोऽनेन दौर्बल्ये पुण्यकर्मणः । तच्च साध्यमसाध्यं वा द्वेधा कर्म विनिश्चितम् ॥ ७४ ॥
साध्यं सोपक्रमं प्रोक्तमसाध्यं निरुपक्रमम् । यत्नसाध्ये तदेतस्मिन् पौरुषं युज्यते सताम् ॥ ७५ ॥
एतच्छ्रुत्वा सुराः प्राहुर्युक्तियुक्तं वचः प्रभोः ! । विधास्यामस्तदेतस्मिन् वयमद्यापि पौरुषम् ॥ ७६ ॥
एतावतां किमस्माकं करिष्यत्येष दुष्टधीः ? । साध्ये सिद्धिर्न चेदित्थं कोऽपराधो विवेकिनाम् ? ॥ ७७ ॥
सम्यक् सङ्गोपयिष्यामः कथञ्चित् तत्र कुत्रचित् । गुप्तस्थाने यथाऽमुष्य न जानाति पिताऽप्यमुम् ॥ ७८ ॥
उक्त्वैवं तं करे कृत्वा चेलुः स्वर्गाचलं प्रति । विलम्बेन विना प्रापुर्मेरोः शृङ्गं मनोहरम् ॥ ७९ ॥
गुहामध्येऽथ चूडायाः सम्यक् संस्थाप्य कुक्कुटम् । [1]निविरीसं शिला दत्ता द्वारे तस्य महीयसी ॥ ८० ॥
इत्थं यत्नवतां प्रायः संसिद्धं नः समीहितम् । सन्तुष्टमानसा एवं सुराः स्वर्गालयं ययुः ॥ ८१ ॥
सोऽपि तस्मिन् गुहामध्ये प्रक्षिप्तो भक्षितः क्षणात् । आरण्यकबिडालेन बुभुक्षाक्षामकुक्षिणा ॥ ८२ ॥
सुप्रसन्नमुखा लेखाः साधितस्वप्रयोजनाः । यथावृत्तं स्ववृत्तान्तं स्वर्नाथाय न्यवेदयन् ॥ ८३ ॥
सावज्ञं साज्यसूयं च सुरांस्तान् वीक्षते यमः । किमेते बत खिद्यन्ते निष्फलारम्भचेष्टिताः ? ॥ ८४ ॥
किमेतत् ? केनचित् पृष्टे तस्मै सर्वं न्यवेदयत् । तदैवासौ गुहामध्ये भुक्तः प्राप्तः परासुताम् ॥ ८५ ॥
परस्परं सुरैर्ज्ञातं यावच्छक्रेणतच्छ्रुतम् । ततो भूयोऽपि ते देवा निश्चयार्थं नियोजिताः ॥ ८६ ॥
यावन्निभालयन्त्येते न पश्यन्ति तकं क्वचित । पश्यन्तः पिच्छकान्येव परस्परमिदं जगुः ॥ ८७ ॥
अन्यथा चिन्तितेऽप्यर्थे सम्पन्नं फलमन्यथा । रक्षणे चिन्तितेऽप्यस्य भक्षणे विधिरुद्यमी ॥ ८८ ॥
यथाऽमुष्य तथाऽन्यस्य यदेवं कर्मणां गतिः । विषादो नोचितः कर्तुमुक्तमत्रापि केनचित् ॥ ८९ ॥
चिन्तयति कार्यजातं मतिमान् मतमन्यथाविधानेन । निर्दुःखसुखस्तु विधिस्तच्चिन्तितमन्यथा कुरुते ॥ ९० ॥
अहो ! पौरुषमप्यस्मत्प्रयुक्तं तद् वृथाऽभवत् । वृथैवैतद् विधौ वक्रे यतोऽवाचि विपश्चिता ॥ ९१ ॥
छित्त्वा पाशमपास्य कूटरचनां भित्त्वा बलाद् वागुरां । पर्यन्तोग्रशिखाकलापजटिलान्निर्गत्य दावानलात् ।
व्याधानां शरगोचरादपसृतो वेगेन धावन् मृगः । कूपान्तः पतितः करोतु विमुखे किं वा विधौ पौरुषम् ?॥ ९२ ॥
यथावृत्तं समागत्य वृत्तान्तं [2]नमुचिद्विषे । अधःपातितरूक्षाक्षा विलक्षा आचचक्षिरे ॥ ९३ ॥
तच्छ्रुत्वा जातसंवेगः [3]स्वाराट् सञ्जातविस्मयम् । संसारासारतां जानन् निजगाद सुधाभुजः ॥ ९४ ॥
अहो सुराः ? कृतो यत्नो मद्वचनमनुष्ठितम् । दैवायत्तेषु कार्येषु वाच्यता काऽनुजीविनाम् ? ॥ ९५ ॥
एवं संस्थाप्य तान् सर्वान् सन्मार्गप्रतिपत्ये । सद्धर्मसङ्गतं वाक्यं प्रस्तावोचितमब्रवीत् ॥ ९६ ॥
भो भो देवाः ! यथाऽमुष्य प्राणितं पक्षिणोऽस्थिरम् । सर्वप्राणभृतामेवं जानन्तः सुस्थिताः कथम् ? ॥ ९७ ॥
तथाहि-
स्वबन्धून् पालयिष्यामि जीविष्यामि चिरं स्वयम् । मरिष्यामीति नो चिन्ता ताम्रचूडस्य चेतसि ॥ ९८ ॥

---

१. दृढं यथा स्यात् तथा इत्यर्थः । २. इन्द्राय । ३. इन्द्रः ।

मुग्धबुद्धिस्तथाऽन्योऽपि जीवो विषयलम्पटः । न ब्रह्मणो विजानाति विजृम्भितमवाचि च ॥ ९९ ॥

कृतमिदमिदं करिष्ये केवलमतिसरल ! किमिति चिन्तयसि ?

तुटिदलितसकलवाञ्छं विलसितमपि चिन्तय विधातुः ॥ १०० ॥

दुःखरूपं यतः सर्वं हेतुश्च भवसंसृतेः । अतः सर्वविदाऽऽख्यातं कुरुध्वं धर्ममञ्जसा ॥ १०१ ॥

त्रायध्वं प्राणिसङ्घातं सेवध्वं साधुसंहतिम् । दद्ध्वं सन्मतौ चित्तं यतध्वं शासनोन्नतौ ॥ १०२ ॥

सम्यग्दर्शननैर्मल्ये भावनायां भवच्छिदि । गुणवद्वरिवस्यायां सम्पद्यध्वं सदोद्यताः ॥ १०३ ॥

एतच्छ्रुत्वा सुरेन्द्रोक्तं वैराग्यगतमानसा । सभा सर्वाऽपि देवानां जाता भवपराङ्मुखी ॥ १०४ ॥

प्रशमकुलिनिकेतः कौतुकाधायि केषाञ्चिदभिनवविभङ्ग्या भव्यवैराग्यबीजम् ।

जिनवचनरतानामङ्ग ! संवेगहेतुः, कथितमिदमपूर्वं लौकिकाख्यानकं वः ॥ १०५ ॥

॥ कुक्कुटाख्यानकं समाप्तम् ॥ १०९ ॥

इदानीं यादवाख्यानकं व्याख्यायते । तच्चेदम्-

सुकविविणिग्गयवाणि व्व घडणसंगयसुवन्नपायारा । केलासमहीहरचूलिय व्व विलसंतधवलहरा ॥ १ ॥

मेरुमहि व्व सुकणया सुखसुरयणा धणा सुरपुरि व्व । जुवइ व्व दीहरच्छा नयरी नामेण बारवई ॥ २ ॥

पज्जुन्नपयडजणओ दुहा वि बलभद्दबंधवाणुगओ । सच्चाहिट्ठियदेहो दुहा वि ससुदंसणो सुहओ ॥ ३ ॥

चक्कि व्व सुसंखनिही सुधम्मचक्को जिणाण नाहो व्व । विंझो व्व गयाहारो तं पालइ वासुदेवनिवो ॥ ४ ॥

तस्स सुइसच्चभामापमोक्खमंतउरं मणिभिरामं । सारयसरं व सोहइ सहंसलक्खणवयावरियं ॥ ५ ॥

तथा हि-

लायन्नसलिललहरीमणुन्नमारत्तचलणनलिणिल्लं । सुकुमार-सिलावित्थयनियंबसुहपुलिणरेहिल्लं ॥ ६ ॥

यादवाख्यानकम् ॥ ११० ॥

सुकविविनिर्गतवाणीव घटनसङ्गतसुवर्णप्राकारा । कैलाशमहीधरचूलिकैव विलसद्धवलगृहा ॥ १ ॥

मेरुमहीव सुकनका सुखसुरत्ना धना सुरपुरीव । युवतिरिव दीर्घरथ्या नगरी नाम्ना द्वारावती ॥ २ ॥

प्रद्युम्नप्रकटजनको द्विधापि बलभद्रबन्धवानुगतः । सत्याधिष्ठितदेहो द्विधापि ससुदर्शनः सुभगः ॥ ३ ॥

चक्रीव सुशङ्खनिधिः सुधर्मचक्रो जिनानां नाथ इव । [1]विन्ध्य इव गदाधारस्तां पालयति वासुदेवनृपः ॥ ४ ॥

तस्य शुचिसत्यभामाप्रमुखान्तःपुरं मनोभिरामम् । शारदसर इव शोभते सहंसलक्षणपटावृतम् ॥ ५ ॥

तथाहि -

लावण्यसलिललहरीमनोज्ञमारक्तचलननलिनिवत् । सुकुमार-शिलाविस्तृतनितम्बसुखपुलिनराजमानम् ॥ ६ ॥

---

१. विन्ध्य पक्षे गजाधारः

नाहिगहीरावत्तं चंचलतिवलीतरंगभंगिल्लं । धण-संगय-जुयलट्ठियथणकलसरहंगरमणीयं ॥ ७ ॥
कोमलकरजुयभुयलयमुणाल-रत्तुप्पलाभिरामतरं । रेहिररेहातिगकलियकंठवरकंबुकमणीयं ॥ ८ ॥
वियसियवयणसरोरुहनिलीणनयणाभिरामभमरभरं । भालयलसिप्पिसंपुडमलिसामलवालसेवालं ॥ ९ ॥
सेणं समुद्दविजयप्पामोक्खाणं दसद्दसाराणं । बलभद्दप्पमुहाणं पंचन्ह महंतवीराणं ॥ १० ॥
पज्जुन्नप्पमुहाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं । संबप्पामोक्खाणं सट्ठीदुद्दंतसहसाणं ॥ ११ ॥
तह उग्गसेणपमुहाण सोलसन्हं तु रायसहसाणं । महसेणपमोक्खाणं इगवीसं वीरसहसाणं ॥ १२ ॥
रुप्पिणिपामोक्खाणं बत्तीसं महिलियासहस्साणं । गणियाणऽणंगसेणापमुहाणऽट्ठारसहसाणं ॥ १३ ॥
अन्नेसिं राईसर-तलवर-माडंबियप्पमोक्खाणं । बारवईनयरीए भरहद्धस्स य समग्गस्स ॥ १४ ॥
आणाईसरियत्तं सेणावच्चं पुरोगमत्तं च । कारेमाणे पालेमाणे एवं च णं विहरे ॥ १५ ॥
अह अन्नया नरिंदो सुंदेरं नियपुरीए पेच्छंतो । परिभमइ पहिट्ठमणो समंतओ गयवरारूढो ॥ १६ ॥
पेच्छइ य रायमग्गं ताव विदेहाओ हट्टपंतीओ । नाणापयारविक्कियमाणप्पडिपुन्नपन्नाओ ॥ १७ ॥
कत्थ वि य धन्नपुन्नाओ नियइ धम्मियजणावलीओ व्व । ससिणेहाओ अन्नत्थ नियइ सुयणावलीओ व्व ॥ १८ ॥
बहुवसणं निप्फन्नं व दोसियावणसमूहमन्नत्थ । विलसिरनेत्तं रामायणं व्व पेच्छइ पुहइपालो ॥ १९ ॥
परमपयं पउरजणं च धम्मसत्थं व सोहणाहरणं । उब्भडवेसं गणियागिहं व्व अन्नत्थ नियइ निवो ॥ २० ॥

नाभिगभीरावर्तं च चञ्चलत्रिवलितरङ्गभङ्गवत् । घन-संगत-युगलस्थितस्तनकलशरथाङ्गरमणीयम् ॥ ७ ॥
कोमलकरयुगलभुजलतामृणाल-रक्तोत्पलाभिरामतरम् । राजमानरेखात्रिककलितकण्ठवरकम्बुकमनीयम् ॥ ८ ॥
विकसितवदनसरोरुहनिलीननयनाभिरामभ्रमरभरम् । भालतलशिल्पसंपूटमलिश्यामलवालसेवालम् ॥ ९ ॥
सेनां समुद्रविजयप्रमुखाणां दशदशार्हाणाम् । बलभद्रप्रमुखाणां पञ्चानां महावीराणाम् ॥ १० ॥
प्रद्युम्नप्रमुखाणामर्धतृतीयानां कुमारकोटीनाम् । शाम्बप्रमुखाणां षष्ठीदुर्दान्तसहस्राणाम् ॥ ११ ॥
तथोग्रसेनप्रमुखाणां षोडशानां तु राजसहस्राणाम् । महसेनप्रमुखाणामेकविंशति वीरसहस्राणाम् ॥ १२ ॥
रुक्मिणिप्रमुखाणां द्वात्रिंशन्महिलासहस्राणाम् । गणिकानामनङ्गसेनाप्रमुखाणामष्टादशसहस्राणाम् ॥ १३ ॥
अन्येषां राजेश्वर-तलवर-माडम्बिकप्रमुखाणाम् । द्वारावतीनगर्या भरतार्द्धस्य च समग्रस्य ॥ १४ ॥
आज्ञेश्वरत्वं सेनापत्यं पुरोगमत्वं च । कुर्वाणे पालमान एवं च णं विहरति ॥ १५ ॥
अथान्यदा नरेन्द्रः सौन्दर्यं निजपूर्याः प्रेक्षमाणः । परिभ्रमति प्रहृष्टमनाः समन्ततो गजवरारुढः ॥ १६ ॥
प्रेक्षते च राजमार्गं तावद्विदेहाद्धट्टपङ्क्तयः । नानाप्रकारविक्रियमाणप्रतिपूर्णप्रज्ञाः ॥ १७ ॥
कुत्रापि च धनपूर्णाः पश्यति धार्मिकजनावल्य इव । सस्नेहाऽन्यत्र पश्यति सुजनावल्य इव ॥ १८ ॥
बहुवसनं निष्पन्नमिव दूष्यापणसमूहमन्यत्र । विलसन्नेत्रं रामायणमिव पश्यति पृथिवीपालः ॥ १९ ॥
परमपदं पौरजनं च धर्मशास्त्रमिव शोभनाभरणम् । उद्भटवेशं गणिकागृहमिवान्यत्र पश्यति नृपः ॥ २० ॥

विज्जुपहाओ सुपओहराओ लायन्नरससणाहाओ । पेच्छइ पाउसलच्छीए सच्छहाओ मयच्छीओ ॥ २१ ॥

जायवजणं च पमुइयपकीलियं पुज्जमाणमणवंछं । अमुणियपरचक्कभयं सुहियं सग्गे सुरयणं व्व ॥ २२ ॥

अन्नं पि भवण-देउल-परिहा-पायार-पव-सभाईयं । सुरसन्नेज्झं सुरनिम्मियं च अच्चब्भुयब्भूयं ॥ २३ ॥

अप्पाणयं च पसरियपयंडबलसाहणं सम्मगबलं । अखलियपयावपसरं वसीकयासेसरिवुवगं ॥ २४ ॥

नियनयरसिरिं सिंचिंतिऊण हिययम्मि किमवि परितुट्ठो । अजरामरो व्व कण्हो गयं पि कालं न याणाइ ॥ २५ ॥

जओ-

विसयामिसगिद्धिमणा सयणविभूढा परिग्गहासत्ता । न मुणंति जिया एन्तं पि विसमविहिविलसियमकंडे ॥ २६ ॥

आह च-

एषा स्थली नवतृणाङ्कुरजालमेतदेषा मृगीति हृदि जातमदः कुरङ्गः ।

एतन्न वेत्ति स यथाऽन्तरितो लताभिरायाति सज्जितकठोरशरः किरातः ॥ २७ ॥

एत्थंतरम्मि गामाणुगामदूइज्जामाणमुणिवग्गो । आयासगएण सयप्पभावओ धम्मचक्केणं ॥ २८ ॥

आयासगएण य पव्वदिवसपडिपुन्नचंदधवलेणं । छत्तेण छन्नरवियरनियरेण महापभावेण ॥ २९ ॥

आयासगयाहिं तुसार-हार-हरहास-कासधवलाहिं । सेयवरचामराहिं भणि-रयणविचित्तदंडाहि ॥ ३० ॥

आयासगएण महग्घहेम-माणिक्क-रयणघडिएणं । सिंहासणेण महया सपायपीढेण पवरेणं ॥ ३१ ॥

सुयणेण व किमवि समुन्नएण पुरओ पणिज्जमाणेण । धम्मज्झएण एसो धम्मनिही इय भणंतेणं ॥ ३२ ॥

विद्युत्प्रभाः सुपयोधराः लावण्यरससनाथाः । प्रेक्षते प्रावृल्लक्ष्म्या सदृशा मृगाक्ष्यः ॥ २१ ॥

यादवजनं च प्रमुदितप्रक्रीडितं पूर्यमाणमनोवाञ्छाम् । अमुणितपरचक्रभयं सुखितं स्वर्गे सुरजनमिव ॥ २२ ॥

अन्यदपि भवन-देवकुल-परिखा-प्राकार-पर्व-सभादिकम् । सुरसान्निध्यं सुरनिर्मितं चाश्चर्यभूताद्भूतम् ॥ २३ ॥

आपानकं च प्रसरितप्रचण्डबलसाधनं समग्रबलम् । अस्खलितप्रतापप्रसरं वशीकृताशेषरिपुवर्गम् ॥ २४ ॥

निजनगरश्रियं सञ्चिन्त्य हृदये किमपि परितुष्टः । अजरामर इव कृष्णो गतमपि कालं न जानाति ॥ २५ ॥

यतः -

विषयामिषगृद्धमनसः स्वजनविमूढाः परिग्रहासक्ताः । न मुणन्ति जीवा आयन्तमपि विषमविधिविलसितमकाण्डे ॥ २६॥

अत्रान्तरे गामानुग्रामदूयमानमुनिवर्गः[१] । आकाशगतेन स्वयंप्रभावाद्धर्मचक्रेण ॥ २८ ॥

आकाशगतेन च पर्वदिवसप्रतिपूर्णचन्द्रधवलेन । छत्रेण छन्नरविकरनिकरेण महाप्रभावेण ॥ २९ ॥

आकाशगताभ्यां तुषार-हार-हरहास-काशधवलाभ्याम् । श्वेतवरचामराभ्यां मणि-रत्नविचित्रदण्डाभ्याम् ॥ ३० ॥

आकाशगतेन महादर्यहेम-माणिक्य-रत्नघटितेन । सिंहासनेन महता सपादपीठेन प्रवरेण ॥ ३१ ॥

सुजनेनेव किमपि समुन्नतेन पुरतः प्रणम्यमानेन । धर्मध्वजेनैष धर्मनिधिरिति भणता ॥ ३२ ॥

---

१. विहरमाण इत्यर्थ ।

विप्फुरियपहावलओ, विलसन्तपओ घणंजणच्छाओ। अहिणवघणसरिसो वि हु भयवं भासंतनवकमलो ॥ ३३ ॥
मणि-रयण-हेमनिम्मियरमणीयाभरणभासुरतणूहिं। नियदेहपहापसरियकिरिणावलिरंजियदिसाहिं ॥ ३४ ॥
पणवन्नरुइरमणिमयविमाणमालानिरुद्धगयणाहिं। परिवारिओ समंता णेगाहिं देवकोडीहिं ॥ ३५ ॥
वरदत्तपमोक्खाणं अट्ठारसहिं समं सहस्सेहिं। समणाणं अट्ठारससीलंगसहस्सकलियाणं ॥ ३६ ॥
जक्खिणिपामोक्खाणं चत्तारि अज्जियासहस्साणं। समियाणं गुत्ताणं सद्धिं संपरिवुडो निच्चं ॥ ३७ ॥
जेणेव य बारवई नयरी जेणेव रेवयगिरिंदो। जेणेव य रेवयगं उज्जाणं तेण संपत्तो ॥ ३८ ॥
सिद्धंतभणियविहिणा सक्काइसुरा-ऽसुराण निवहेहिं। रइयम्मि समोसरणे असमोसरणे नमंताणं ॥ ३९ ॥
कयकिच्चो वि जिणिंदो कयतिन्निपयाहिणो पणयतित्थो। धम्मंगं विणयं चिय कयन्नुभावं च भणमाणो ॥ ४० ॥
मणि-रयणविणिम्मविए महरिहसिंहासणे समुवविट्ठो। सुरसेलसिहरसंसियनवघणलीलं बिडंबंतो ॥ ४१ ॥
तं पासिऊणमुज्जाणपालओ बहलपुलइसरीरो। उत्तालगमणरसिओ वद्धावइ वासुदेवनिवं ॥ ४२ ॥
देवाणुपिया ईहंति दंसणं जस्स अज्ज सो भयवं। सुर-असुर-रायमहिओ समोसढो रेवगुज्जाणे ॥ ४३ ॥
सोऊण वयणमेसो वियरावइ पारिओसियमिमस्स। अद्धत्तेरसकोडीओ पयडवन्नस्स रुप्पस्स ॥ ४४ ॥
कोमोइयभेरीदाणपुव्वमाइसइ सव्वनयरीए। जह नेमिवंदणत्थं निज्जाइ जणद्दणो राया ॥ ४५ ॥
तो सव्वो पउरजणो सव्वालंकारभूसियसरीरो। तित्थयरवंदणत्थं निज्जाउ महाविभूईए ॥ ४६ ॥

विस्फुरितप्रभावलयो विलसत्पदो घनाञ्जनच्छाय:। अभिनवघनसदृशोऽपि खलु भगवान् भासामानेनवकमल: ॥ ३३ ॥
मणि-रत्न-हेमनिर्मितरमणीयाभरणभासुरतनुभि:। नृपदेहप्रभाप्रसरितकिरणावलिरञ्जितदिग्भि: ॥ ३४ ॥
पञ्चवर्णरुचिरमणिमयविमानमालानिरुद्धगगनाभि:। परिवारित: समन्तादनेकाभि र्देवकोटिभि: ॥ ३५ ॥
वरदत्तप्रमुखाणामष्टादशभि: समं सहस्रै:। श्रमणानामष्टादशशीलाङ्गसहस्रकलितानाम् ॥ ३६ ॥
यक्षिणीप्रमुखाणां चत्वारिंशदार्यासहस्राणाम्। समितानां गुप्तानां सार्धं संपरिवृतो नित्यम् ॥ ३७ ॥
येनैव च द्वारावती नगरी येनैव रैवतगिरीन्द्र:। येनैव च रैवतकमुद्यानं तेन सम्प्राप्त: ॥ ३८ ॥
सिद्धान्तभणितविधिना शक्रादिसुराऽसुराणां निवहै:। रचिते समवसरणेऽसमपसरणे नमताम् ॥ ३९ ॥
कृतकृत्योऽपि जिनेन्द्र: कृतत्रिप्रदक्षिण: प्रणततीर्थ:। धर्माङ्गं विनयं चैव कृतज्ञभावं च भणन् ॥ ४० ॥
मणि-रत्नविनिर्मिते महार्हसिंहासने समुपविष्ट:। सुरशैलशिखरशंसितनवघनलीलां विडम्बयन् ॥ ४१ ॥
तं दृष्ट्वोद्यानपालको बहलपुलकितशरीर:। त्वरितगमनरसिको वर्धापयति वासुदेवनृपम् ॥ ४२ ॥
देवानुप्रिया ईहन्ते दर्शनं यस्याद्य स भगवान्। सुराऽसुर-राजमहित: समवसृतो रैवतोद्याने ॥ ४३ ॥
श्रुत्वा वचनमेष वितारयति पारितोषिकमेतस्मै। अर्धत्रयोदशकोट्य: प्रकटवर्णस्य रुप्यस्य ॥ ४४ ॥
कौमुदिकाभेरीदानपूर्वमादिशति सर्वनगर्याम्। यथा नेमिवन्दनार्थं निर्याति जनार्दनो राजा ॥ ४५ ॥
तत: सर्व: पौरजन: सर्वालङ्कारभूषितशरीर:। तीर्थकरवन्दनार्थं निर्यातु महाविभूत्या ॥ ४६ ॥

ण्हाओ कयबलिकम्मो सयमवि सच्चवियफारसिंगारो । हार-ऽड्डहार-मउडाइसुंदराभरणरुइरतणू ॥ ४७ ॥
गलियमयगंडपरिभमिरझंकारजणियसवणसुहो । आरूढो गयपरिवारकलियकरिरायखंधम्मि ॥ ४८ ॥
पासगयसमुद्दसमुद्दविजयपामोक्खपणइनिवहेहिं । गुडगडियमत्तमयगलखंधारूढेहिं परियरिओ ॥ ४९ ॥
पवररयतुरयखरखुरखोणीयरयनियरपिहियदिसियक्को । रयचलियतुरयरहवरगभीररवबहिरियदियंतो ॥ ५० ॥
उद्दंडपहरणुब्भडपयंडभुयदंडपक्कपाइक्को । पुरओपयट्टनंगलिय-वयणमंगलियमुहलनरो ॥ ५१ ॥
बहुमाणपहरिसुब्भिज्जमाणरोमंचकंचुइयगत्तो । तित्थयरवंदणत्थं विणिग्गओ वासुदेवनिवो ॥ ५२ ॥
मन्नंतो अप्पाणं सकयत्थं सुद्धपरिणइवसेण । सच्चवियजिणेसरपाडिहेरपसरंतपरिओसो ॥ ५३ ॥
ओयरिय करिवराओ परिहरियसिद्धपंचनिवंकककुहो[१] । अच्चंतमेगसाडयपसंगकयउत्तरासंगो ॥ ५४ ॥
पंचविहाभिगमपुरस्सरं च काउं पयाहिणाण तिगं । कयपंचंगपणामो एवं थोउं समाढत्तो ॥ ५५ ॥
जय जय नेमिजिणेसर ! नमिरामरनिवहनमियपयकमल ! तुह चेव य चंदुज्जलचरियमहं वन्नइस्सामि ॥ ५६ ॥
तुह पहु ! गुणमणिरोहण ! को सक्कइ वन्नउं सुहं चरियं ? ।
तह वि य किं पि हु भयवं ! भणामि भत्तीए भवभीओ ॥ ५७ ॥
अवराइयाओ चविओ कत्तियकण्हाए बारसीए तुमं । सिवएवीकुच्छीए समुद्दविजयस्स भवणम्मि ॥ ५८ ॥
सोरियपुरम्मि जाओ सावणसियपंचमीए चित्ताहिं । निव्वत्तियजम्ममहो सुमेरुसिहरम्मि सुरवइणा ॥ ५९ ॥

स्नातः कृतबलिकर्मा स्वयमपि सत्यापितस्फारशृङ्गारः । हारा-ऽर्धहार-मुकुटादिसुन्दराभरणरुचिरतनुः ॥ ४७ ॥
गलितमदगण्डपरिभ्रमद्झङ्कारजनितश्रवणसुखः । आरूढो गजपरिवारकलितकरिराजस्कन्धम् ॥ ४८ ॥
पार्श्वगतसमुद्रसमुद्रविजयप्रमुखप्रणतिनिवहैः । गुडगडितमत्तमदगलस्कन्धारूढैः परिवारितः ॥ ४९ ॥
प्रवररथस्तुरगखरक्षुरक्षोणीरजोनिकरपिहितदिक्चक्रः । रयचलिततुरगरथवरगभीररवबधिरितदिगन्तः ॥ ५० ॥
उद्दण्डप्रहरणोद्भटप्रचण्डभुजदण्डपक्वपादातिः । पुरतः प्रवृत्तनङ्गलित-वदनमाङ्गलिकमुखरनरः ॥ ५१ ॥
बहुमानप्रहर्षोद्भिद्यमानरोमाञ्चकञ्चुकितगात्रः । तीर्थकरवन्दनार्थं विनिर्गतो वासुदेवनृपः ॥ ५२ ॥
मन्यमान आत्मानं सकृतार्थं शुद्धपरिणतिवशेन । सत्यापितजिनेश्वरप्रातिहारप्रसरत्परितोषः ॥ ५३ ॥
अवतीर्य करिवरात्परिहृतप्रसिद्धपञ्चनृपककुभः । अत्यन्तमेकसाटकप्रसंगकृतोत्तरासङ्गः ॥ ५४ ॥
पञ्चविधाभिगमपुरस्सरं च कृत्वा प्रदक्षिणानां त्रिकम् । कृतपञ्चाङ्गप्रणाम एवं स्तोतुं समारब्धः ॥ ५५ ॥
जय जय नेमिजिनेश्वर ! नमदमरनिवहनतपदकमल ! । तव चैव च चन्द्रोज्वलचरित्रमहं वर्णयिष्यामि ॥ ५६ ॥
तव प्रभो ! गुणमणिरोहण ! कः शक्यते वर्णयितुं शुभं चरित्रम् ? ।
तथापि च किमपि हु भगवन् ! भणामि भक्त्या भवभीतः ॥ ५७ ॥
अपराजिताच्च्युतः कार्तिककृष्णायां द्वादश्यां त्वम् । शिवादेवीकुक्षौ समुद्रविजयस्य भवने ॥ ५८ ॥
शौरिपुरे जातः श्रावणसितपञ्चम्यां चित्राभिः । निवर्तितजन्ममहः सुमेरुशिखरे सुरपतिना ॥ ५९ ॥

---

१. राजचिह्न इत्यर्थः ।

गंतुं तुमए मज्झं आउहसालाए सुबलकलिएणं । आऊरिओ जिणेसर ! संखो संखुहियभुवणयलो ॥ ६० ॥
कुवियप्पविउडणत्थं जिण ! मह नियबलपयासणत्थं च । अंदोलिओ तए पहु ! भुयालयाए हरि व्व अहं ॥ ६१ ॥
सिरिखंडबहलकुंकुमरसरंजियनीरपुन्नवावीए । कणयविणिम्मियसिंगी मुहमुक्कजलच्छडापयडं ॥ ६२ ॥
मज्झ वहूहिं समेओ कुणमाणो मज्जणं जहिच्छाए । सोहग्ग-रूव-गुणनिहि ! ते धन्ना जेहि दिट्ठो सि ॥ ६३ ॥
जं सामि ! सच्चभामाइ वयणओ मन्नियं करग्गहणं । तुमए तं पत्थणभंगभीरुणो नूण सप्पुरिसा ॥ ६४ ॥
लायन्न-रूव-सोहग्गगुणनिहिं नाह ! परिचयंतस्स । रायमइं तुइ नायं न दुक्करं किं पि गरुयाणं ॥ ६५ ॥
पसुणो अवसे पासिय वालावेतेंण रहवरं तुमए । सच्चिवियं सप्पुरिसा दुहिएसु दयावरा होंति ॥ ६६ ॥
रइरसियं रायमइं गुणरयणखणिं खणेण परिहरिउं । संजमसिरिं पवज्जिय जं पसमसुहं समल्लीणो ॥ ६७ ॥
तं सामि ! विवेयवसुल्लसंतनाणेण निच्छियं तुमए । संसारियसोखाओ निव्वुइवहुसुहमणन्नसमं ॥ ६८ ॥ (युग्गम् ॥)
दामोयर-वत्थावय-कडितोडय-संबकंटए कमिउं । उज्जितसेलसिहरे कायरजणजणियमणभंगे ॥ ६९ ॥
आरूढो हरिसवसुल्लसंतसुविसुद्धमणपरीणामो । सावणसियछट्ठीए संजमभारे य भवमहणे ॥ ७० ॥
चउपन्नवासराइं छउमत्थो विहरिओ निरभिसंगो । सुक्कज्झाणानलदड्ढघाइकम्मिंधणो धणियं ॥ ७१ ॥
आसोयमावसाए विसयपिवासाए सव्वहा चत्तो । लोयाऽलोयपयासं तं पत्तो केवलन्नाणं ॥ ७२ ॥
ता पहु ! पहूयकालं केवलसिरिसंगओ सुहाहरो । अमयमयकरपबोहियतममोहियभवियकुमुयवणो ॥ ७३ ॥

गत्वा त्वया ममायुधशालायां सुबलकलितेन । आपूरितो जिनेश्वर ! शङ्खः संक्षुभितभुवनतलः ॥ ६० ॥
कुविकल्पविघटनार्थं जिन ! मम निजबलप्रकाशनार्थं च । आन्दोलितस्त्वया प्रभो ! भुजालतायां हरिरिवाहम् ॥ ६१ ॥
श्रीखण्डबहलकुङ्कुमरसरञ्जितनीरपूर्णवाप्याम् । कनकविनिर्मितशृङ्गीमुखमुक्तजलच्छटाप्रकटम् ॥ ६२ ॥
मम वधूभिः समेतः कुर्वाणो मज्जनं यथेच्छया । सौभाग्य-रूप-गुणनिधे ! ते धन्या यै र्दृष्टोऽसि ॥ ६३ ॥
या स्वामिन् ! सत्यभामादि वचनान् मतं करग्रहणम् । त्वया तत्प्रार्थनाभङ्गभीरवो नूनं सत्पुरुषाः ॥ ६४ ॥
लावण्य-रूप-सौभाग्य-गुणनिधिं नाथ ! परित्यजतः । राजीमतिं तव ज्ञातं न दुष्करं किमपि गुरुकाणाम् ॥ ६५ ॥
पशूनवशान्दृष्ट्वा वालयता रथवरं त्वया । सत्यापितं सत्पुरुषा दुःखितेषु दयापरा भवन्ति ॥ ६६ ॥
रतिरसिकां राजिमतिं गुणरत्नखानिं क्षणेन परिहृत्य । संयमश्रियं प्रव्रज्य यत्प्रशमसुखं समालीनः ॥ ६७ ॥
तत्स्वामिन् ! विवेकवशोल्लसज्ज्ञानेन निश्चितं त्वया । सांसारिकसौख्यान् निर्वृत्तिवधुसुखमनन्यसमम् ॥ ६८ ॥ (युग्मम्)
दामोदरावस्थापयत्कटित्रोटकशम्बकण्टके क्रान्त्वा । उज्जयन्तशैलशिखरे कातरजनजनितमनोभङ्गे ॥ ६९ ॥
आरुढो हर्षवशोल्लसत्सुविशुद्धमनःपरिणामः । श्रावणसितषष्ठयां संयमभारे च भवमथने ॥ ७० ॥
चतुष्पञ्चाशद्वासराणिच्छद्मस्थो विहृतो निरभिष्वङ्गः । शुक्लध्यानानलदग्धघातिकर्मेन्धनोऽत्यन्तम् ॥ ७१ ॥
अश्विनामावस्यायां विषयपिपासायाः सर्वथा त्यक्तः । लोकाऽलोकप्रकाशं त्वं प्राप्तः केवलज्ञानम् ॥ ७२ ॥
ततः प्रभो ! प्रभूतकालं केवलश्रीसंगतः शुभाधारः । अमृतमयकरप्रबोधिततमोमोहितभविककुमुदवनः ॥ ७३ ॥

रेवयगिरिसिहरग्गे आसाढसियऽट्ठमीए सुहलेसो । सिरिनेमिचंद ! जिणवर ! पाविहिसि सिवं पहयकम्मो ॥ ७४ ॥

इय नेमिनाह ! नयसुर-नरभमरकयंब ! देवसूरिहिं । वन्नियससिकिरणुज्जलचरिय ! चरित्ते रइं कुणसु ॥ ७५ ॥

इय थुणिऊणं कण्हो जिणवयणायन्नणे सइ सयन्हो । संवेगभावियमणो सट्ठाणम्मि समुवविट्ठो ॥ ७६ ॥

एत्थंतरम्मि भयवं जोयणनीहारिणीए वाणीए । अच्चंतमहुरमणहरजलहरगज्जियगभीराए ॥ ७७ ॥

सन्नाण-दंसणधरो दुहा वि चउराणणो चरित्तनिही । सुर-असुर-नरसभाए धम्मं कहिउं समाढत्तो ॥ ७८ ॥

धम्मो अत्थो कामो मोक्खो चत्तारि पुरिसत्था । धम्माओ जेण सेसा ता धम्मो तेसि परमतरो ॥ ७९ ॥

जओ-

धम्मो संसारमहासमुद्दनिवडंतजाणवत्तं व । धम्मो भीममहाडविनित्थारणसत्थसत्थाहो ॥ ८० ॥

धम्मो भवंधकवयपडंतहत्थावलंबणसमाणो । धम्मो दुरंतदालिद्ददलणसुंदरनिहाणनिभो ॥ ८१ ॥

धम्मो सिणेहसंगयसुयवच्छलभावसंगया जणणी । धम्मो सुहयरसिक्खासंपाडणपच्चलो जणओ ॥ ८२ ॥

धम्मो समत्थविस्सासठाणसब्भावसंगयं मित्तं । धम्मो विणीय-आणावडिच्छ-निब्भिच्चभिच्चसमो ॥ ८३ ॥

धम्मो समग्गगुणजुत्तसग्गसुहगमणसुंदरविमाणं । धम्मो सासयसिवपुरसंपावणपवररहरयणं ॥ ८४ ॥

किं बहुणा ? भो भव्वा ! भुवणे वि न अत्थि किं पि कल्लाणं । जं न कुणइ एस जियाण सम्ममाराहिओ धम्मो ॥८५॥

पडिवज्जह सव्वन्नुं देवं सगुणं गुरुं च धम्मं च । जं रयणत्तयमेयं परिक्खियव्वं सुहत्थीहिं ॥ ८६ ॥

रैवतगिरिशिखराग्रे आषाढसिताष्टम्यां शुभलेश्यः । श्रीनेमिचन्द्र ! जिनवर ! प्राप्स्यसि शिवं प्रहतकर्मा ! ॥ ७४ ॥

इति नेमिनाथ ! नतसुर-नरभ्रमरकदम्ब ! देवसूरिभिः । वर्णितशशिकिरणोज्ज्वलचरित्र ! चरित्रे रतिं कुरुष्व ॥ ७५ ॥

इति स्तुत्वा कृष्णो जिनवचनाकर्णने सदा सकर्णः । संवेगभावितमनाः स्वस्थाने समुपविष्टः ॥ ७६ ॥

अत्रान्तरे भगवान् योजननिःसृतया वाण्या । अत्यन्तमधुरमनोहरजलधरगर्जितगभीरया ॥ ७७ ॥

सज्ज्ञानः दर्शनधरो द्विधापि चतुराननश्चरित्रनिधिः । सुराऽसुर-नरसभायां धर्मं कथयितुं समारब्धः ॥ ७८ ॥

धर्मोऽर्थःकामो मोक्षश्चत्वारो भवन्ति पुरुषार्थाः । धर्माद्येन शेषास्ततो धर्मस्तेषां परमतरः ॥ ७९ ॥

यतः -

धर्मः संसारमहासमुद्रनिपतद्यानपात्रमिव । धर्मो भीममहाटविनिस्तारणसार्थसार्थवाहः ॥ ८० ॥

धर्मो भवान्धकूपकपतद्धस्तावलम्बनसमानः । धर्मो दुरन्तदारिद्रदलनसुन्दरनिधाननिभः ॥ ८१ ॥

धर्मः स्नेहसंगतसुतवत्सलभावसंगता जननी । धर्मः सुखकरशिक्षासम्पादनसमर्थो जनकः ॥ ८२ ॥

धर्मः समस्तविश्वासस्थानसद्भावसंगतं मित्रम् । धर्मो विनीताज्ञाप्रतीच्छनिर्भृत्यभृत्यसमः ॥ ८३ ॥

धर्मः समग्रगुणयुक्तस्वर्गसुखगमनसुन्दरविमानम् । धर्मः शाश्वतशिवपुरसंप्रापणप्रवररथरत्नम् ॥ ८४ ॥

किं बहुना ? भो भव्याः ! भुवनेऽपि नास्ति किमपि कल्याणम् । यन्न करोत्येष जीवानां सम्यगाराधितो धर्मः ॥ ८५ ॥

प्रतिपद्यध्वं सर्वज्ञं देवं सुगुणं गुरुं च धर्मं च । यद्रत्नत्रयमेतत्परीक्षितव्यं सुखार्थिभिः ॥ ८६ ॥

चउतीसअइसयजुआ अट्ठमहापाडिहेरकयसोहो । जियराग-दोसो-मोहो एसो देवो सुगइहेऊ ॥ ८७ ॥

परिहरियघरावासो जुगप्पहाणागमो चरित्तनिही । सम्मद्दंसणसुहओ उवएसपरो गुरू भणिओ ॥ ८८ ॥

कस-छेय-तावसुद्धो पुव्वा-ऽवरबाहवज्जिओ धणियं । सचरा-ऽचरजीवहिओ धम्मो वि हु विसयनिग्गहणो ॥८९॥

इय सोऊणं धम्मं सम्मं जिणभासिय भवविरत्ता । धम्माभिमुही जाया सव्वा वि तया भवियपरिसा ॥ ९० ॥

अह पाविय पत्थावं पुच्छइ पंजलिउडो पुहइपालो । सुरकयसन्नेज्झाए बारवईए पुरवरीए ॥ ९१ ॥

जक्खसहस्साहिट्ठियतणुणो भरहद्धचक्किणो मम वि । नासो नेमिजिणेसर ! किमियरभावाण व भविस्सो ? ॥९२॥

अह भणइ नेमिनाहो सनीरनीरयनिभाए वाणीए । नरनाह ! वत्थुजायं जं किंचि वि दीसइ जयम्मि ॥ ९३ ॥

कयगसरूवं सव्वं विणस्सरं तमिह किं वियप्पेणं ? । जइ एवं ता कइया ? कुओ य ? कह व ? त्ति सुण रायं ! ॥९४॥

पारासरनामो आसमम्मि कम्मि वि अहेसि को वि रिसी । निंदियकुलसंभूया संपत्ता कन्नया तेण ॥ ९५ ॥

सो कइया वि हु तीए समं भमंतो गओ जउणदीवं । दीवम्मि समुब्भूओ त्ति तेण दीवायणो नामं ॥ ९६ ॥

तीए पुत्तो तत्थ वि तुज्झ कुमारेहिं मज्जमत्तेहिं । खलियारियाओ तत्तो बारवईए धुवं नासो ॥ ९७ ॥

तुज्झ पुण कन्ह ! होही जराकुमाराओ जाण एयाओ । भवियव्वयानिओया न अन्नहा तीरए काउं ॥ ९८ ॥

कन्हविणासयमेयं वयणं जिणमुहविणिग्गयं सोउं । निब्भरमन्नुवसागयनयणंसुजलाओ दिट्ठीओ ॥ ९९ ॥

जलहिम्मि नईओ इव वाहीओ इव अपत्थभोइम्मि । पावम्मि कुगइओ इव विवयाउ व दुन्नयपरम्मि ॥ १०० ॥

चतुस्त्रिंशदतिशययुतोऽष्टमाहाप्रातिहार्यकृतशोभः । जितराग-द्वेष-मोह एष देवः सुगतिहेतुः ॥ ८७ ॥

परिहृतगृहवासो युगप्रधानागमश्चारित्रनिधिः । सम्यग्दर्शनसुभग उपदेशपरो गुरुर्भणितः ॥ ८८ ॥

कष-छेद-तापशुद्धो पूर्वाऽपरबाधवर्जितोऽत्यन्तम् । सचराऽचरजीवहितो धर्मोऽपि हु विषयनिग्रहणः ॥ ८९ ॥

इति श्रुत्वा धर्मं सम्यग्जिनभाषितं भवविरक्ता । धर्माभिमुखी जाता सर्वापि तदा भव्यपर्षत् ॥ ९० ॥

अथ प्राप्य प्रस्तावं पृच्छति प्राञ्जलिपूटः पृथिवीपालः । सुरकृतसान्नेध्यया द्वारावत्या पूर्वर्याः ॥ ९१ ॥

यक्षसहस्राधिष्ठिततनो र्भरताद्धचक्रिणो ममापि । नाशो नेमिजिनेश्वर ! किमितरभावानामिव भविष्यती ? ॥ ९२ ॥

अथ भणति नेमिनाथः सनीरनीरदनिभया वाण्या । नरनाथ ! वस्तुजातं यत्किञ्चिदपि दृश्यते जगति ॥ ९३ ॥

कृतकस्वरूपं सर्वं विनश्वरं तदिह किं विकल्पेन ? यद्येवं तदा कदा ? कुतश्च ? कथं वेति ? श्रृणु राजन् ॥ ९४ ॥

पाराशरनामाश्रमे कस्मिन्नप्यासीत्कोऽप्यर्षिः । निन्दितकुलसम्भूता सम्प्राप्ता कन्यका तेन ॥ ९५ ॥

स कदापि खलु तया समं भ्रमन्गतो यमुनद्वीपम् । द्वीपे समुद्भूत इति तेन द्वीपायनो नाम ॥ ९६ ॥

तस्याः पुत्रस्तत्रापि तव कुमारै मद्यमत्तैः । स्खलिताचार्यात्ततो द्वारावत्या ध्रुवं नाशः ॥ ९७ ॥

तव पुनः कृष्ण ! भविष्यति जराकुमाराज्जानीह्येतस्मात् । भवितव्यतानियोगान्नान्यथा शक्यते कर्तुम् ॥ ९८ ॥

कृष्णविनाशनमेतद्वचनं जिनमुखविनिर्गतं श्रुत्वा । निर्भरमन्युवशागतनयनाश्रुजालाः दृष्टयः ॥ ९९ ॥

जलधौ नद्य इव व्याधय इवापथ्यभोजिनि । पापे कुगतय इव विपद इव दुर्नयपरे ॥ १०० ॥

सदयाओ सकोवाओ सविम्हयाओ सयाणुतावाओ । सव्वेसिं जायवाणं जराकुमारम्मि पडियाओ ॥ १०१ ॥

सो वि हु जराकुमारो हिययम्मि धसक्किओ[१] विलक्खमणो । लज्जाए जायवाणं मुहं पि दंसेउमसमत्थो ॥ १०२ ॥

खणमवि ठाउमसत्तो सयणकडक्खेहिं सल्लियसरीरो । लच्छीहरबाणेहिं व विद्धो मम्मम्मि दहवयणो ॥ १०३ ॥

भणइ महिं मह भयवइ ! वियरसु विवरं विसिट्ठजणवज्जे । जेणाहं हयबुद्धी पावो पविसामि पायाले ॥ १०४ ॥

धिद्धी ! कहमेवंविहमहमहमो पावमायरिस्सामि ? । दूरम्मि मंदभग्गो जामि जहिं फुट्टपाहाणा ॥ १०५ ॥

पयडेमि पोरिसमओ निरत्थयं किं वियप्पजालेण ? । मह जीविएण जीवउ चिरकालं बंधवो कण्हो ॥ १०६ ॥

करकलियबाण-धणुहरदुद्धरिसो साहिऊण कण्हस्स । पायडियवाहवेसो कोसंबवणम्मि संपत्तो ॥ १०७ ॥

तारारुइरा वि तया जराकुमारम्मि निग्गए नयरी । न विरायइ रयणीयरविरहे रयणि व्व तमगसिया ॥ १०८ ॥

कन्हो पुण सुन्नमणो पियबंधवविरहिओ मुणइ रन्नं । जणसंकुलं पि नियरिं जराकुमारे पवसियम्मि ॥ १०९ ॥

जओ-

एगेण विणा पियमाणुसेण सब्भावनेहरसिएण । जणसंकुला वि पुहवी अव्वो ! रन्नं व पडिहाइ ॥ ११० ॥

किं च-

मणवल्लहलोयविओयणम्मि जायइ जणस्स जं दुक्खं । तं कहिउं पि न तीरइ सारिच्छं नारयदुहस्स ॥ १११ ॥

बलभाया सुसिणिद्धो सिद्धत्थो सारही सुणिय वसणं । मोयवइ बलभद्दं तेण वि भणियं कुणाभिमयं ॥ ११२ ॥

सदयाः सकोपाः सविस्मयाः सानुतापाः । सर्वेषां यादवानां जराकुमारे पतिताः ॥ १०१ ॥

सोऽपि खलु जराकुमारो हृदये क्षुब्धो विलक्षमनाः । लज्जया यादवानां मुखमपि दर्शयितुमसमर्थः ॥ १०२ ॥

क्षणमपि स्थातुमशक्तः स्वजनकटाक्षैः शल्यितशरीरः । लक्ष्मीधरबाणैरिव विद्धो मर्मणि दशवदनः ॥ १०३ ॥

भणति महिं मम भगवति ! वितर विशिष्टजनवर्ज्ये । येनाहं हतबुद्धिः पापः प्रविशामि पाताले ॥ १०४ ॥

धिग्धिक् ! कथमेवंविधमहमधमः पापमाचरिष्यामि ? । दूरे मन्दभाग्यो यामि यत्र स्फुटपाषाणाः ॥ १०५ ॥

प्रकटयामि पौरुषमतो निरर्थकं किं विकल्पजालेन ? । मम जीवितेन जीवतु चिरकालं बन्धुः कृष्णः ॥ १०६ ॥

करकलितबाण-धनुर्धरदुर्घर्षः कथयित्वा कृष्णस्य । प्राकटितव्याधवेशः कौशाम्बीवने सम्प्राप्तः ॥ १०७ ॥

तारारुचिरापि तदा जराकुमारे निर्गते नगरी । न विराजते रजनीकरविरहे रजनीव तमोग्रस्ता ॥ १०८ ॥

कृष्णः पुनः शून्यमनाः प्रियबन्धवविरहितो मुणत्यरण्यम् । जनसङ्कुलामपि नगरीं जराकुमारे प्रवसिते ॥ १०९ ॥

यतः-

एकेन विना प्रियमनुष्येण सद्भावस्नेहरसिकेन । जनसङ्कुलापि पृथिव्यव्वो ! अरण्यमिव प्रतिभाति ॥ ११० ॥

किञ्चः-

मनोवल्लभलोकवियोजने जायते जनस्य यद् दुःखम् । तत्कथयितुमपि न शक्यते सादृशं नारकदुःखस्य ॥ १११ ॥

बलभ्राता सुस्निग्धः सिद्धार्थः सारथी श्रुत्वा व्यसनम् । मोचयति बलभद्रं तेनापि भणितं कुर्वभिमतम् ॥ ११२ ॥

---

१. (दे.) क्षुब्ध इत्यर्थः ।

गुरुदुक्खं गिहवासं मुयसु महाभाग ! संपलित्तमिमं । आवइगयं कया वि हु पडिबोहसु मं पवज्जवयं ॥ ११३ ॥

इय सामपुव्वमेसो सम्मं मोयाविऊणमप्पाणं । सिरिनेमिनाहपासे एयावसरम्मि पव्वइओ ॥ ११४ ॥

आयन्नियजिणवयणा कण्हाई जायवा निराणंदा । वेरग्गभावियमणा बारवइं पडिगया सव्वे ॥ ११५ ॥

भयवं पुण नीहरिओ बारवईओ बहिंविहाराए । चउविहसुरपरियरिओ बोहिंतो भवियजणनिवहं ॥ ११६ ॥

विप्फुरियधम्मचक्को निद्दारियमोहरायरिउचक्को । आएज्ज-महुरवक्को पाडियपरतित्थियधसक्को[१] ॥ ११७ ॥

पन्नवियतत्तवाओ [२]भावलयविलुत्ततिमिरसंधाओ । अलिउलसामलकाओ सुरकयकमलुवरिकयपाओ ॥ ११८ ॥

भयवं अरिट्ठनेमी गामा-ऽऽगर-नगरमंडियं वसुहं । विहरइ फुरियपयावो पयासियासेसभुवणयलो ॥ ११९ ॥

भव्वकुसेसयभाणू नियकिरणेहिं व सुहोवएसेहिं । नासियतमंधयारो बोहिन्तो भवियकमलवणं ॥ १२० ॥

घोसावियं पुरीए जणद्दणेण वि जिणेण वागरियं । जं किर तं तुब्भेहिं वि सक्खं निसुयं निरवसेसं ॥ १२१ ॥

मज्जप्पमायवसओ नासो नयरीए जं समाइट्ठो । परिवज्जह पावमिमं तम्हा मज्जं परमसत्तुं । १२२ ॥

कन्हाएसेण तओ मज्जं मणवल्लहं पि पउरेहिं । कायंबरीगुहाए मज्झम्मि समुज्झियं झत्ति ॥ १२३ ॥

अन्नमिमं आइट्ठं सव्वो वि जणो जिणिंदभवणेसु । न्हवण-विलेवण-पूयणवावाररओ हवउ निच्चं ॥ १२४ ॥

पोसहसालाए पुणो चउव्विहाहारवज्जणुज्जुत्तो । सज्झाय-ज्झाणरओ जहासमाहीए पोसहिओ ॥ १२५ ॥

गुरुदुःखं गृहवासं मुञ्च महाभाग ! सम्प्रदीप्तमिदम् । आपद्गतं कदापि खलु प्रतिबोधये मां प्रव्रज्याव्रतम् ॥ ११३ ॥

इति शामपूर्वमेष सम्यङ्मोचयित्वात्मानम् । श्री नेमिनाथपार्श्वे एतदवसरे प्रव्रजितः ॥ ११४ ॥

आकर्णितजिनवचनाः कृष्णादयो यादवा निराणन्दाः । वैराग्यभावितमनसो द्वारवतीं प्रतिगताः सर्वे ॥ ११५ ॥

भगवान् पुनर्निःसृतो द्वारावत्या बहि विहाराय । चतुर्विधसुरपरिवृतो बोधयन् भविकजननिवहम् ॥ ११६ ॥

विस्फुरितधर्मचक्रो निर्दारितमोहराररिपुचक्रः । आदेय-मधुरवाक्यः प्राकटितपरतीर्थिक[३]धसक्कः ॥ ११७ ॥

प्रज्ञापिततत्त्ववादो भामण्डलविलुप्ततिमिरसङ्घातः । अलिकुलश्यामलकायः सुरकृतकमलोपरिकृतपादः ॥ ११८ ॥

भगवानरिष्टनेमी ग्रामा-ऽऽकर-नगरमण्डितां वसुधाम् । विहरति स्फुरितप्रतापः प्रकाशिताशेषभुवनतलः ॥ ११९ ॥

भव्यकुशेशयभानु निजकिरणैरिव सुखोपदेशैः । नाशिततमोऽन्धकारो बोधयन् भविककमलवनम् ॥ १२० ॥

घोषयितं पुर्यां जनार्दनेनापि जिनेन व्याकृतम् । यत्किल तद्युष्मद्भिरपि साक्षान्निश्रुतं निरवशेषम् ॥ १२१ ॥

मद्यप्रमादवशान्नाशो नगर्या यत्समादिष्टः । परिवर्जयत पापमिदं तस्मान्मद्यं परमशत्रुम् ॥ १२२ ॥

कृष्णादेशेन ततो मद्यं मनवल्लभमपि पौरैः । कादम्बरीगुहाया मध्ये समुज्झितं झटिति ॥ १२३ ॥

अन्यदिमादिष्टं सर्वोऽपि जनो जिनेन्द्रभवनेषु । स्नपन-विलेपन-पूजन व्यापाररतो भवतु नित्यम् ॥ १२४ ॥

पौषधशालायां पुनश्चतुर्विधाहारवर्जनोद्युक्तः । स्वाध्याय-ध्यानरतो यथासमाधिनापौषधिकः ॥ १२५ ॥

---

१. (दे.) क्षोभः इत्यर्थः । २. भामण्डलः । ३. धसक्क(दे)'ध्रासको'इति गुजराती भाषायाम् ।

पारद्धिपावविरओ असच्चभासण-परस्सहरणेसु । परदारपसंगेसु य जहसत्तीए भवउ विरओ ॥ १२६ ॥

एवं धम्मरयाणं विसिट्ठसंवेगभावियमणापं । लोयाणमकल्लाणं न किं पि पायं समावडइ ॥ १२७ ॥

अह अन्नया तहाविहदुद्धरभवियव्वयानिओएणं । संबाइया कुमारा विणिग्गया कह वि कीलाए ॥ १२८ ॥

कायंबकाणणम्मि संबकुमारस्स संतिओ पुरिसो । को वि पिवासाभिहओ गओ भमंतो वणनिगुंजे ॥ १२९ ॥

जत्थऽच्छइ किर मज्जं समुज्झयं गिरिगुहाए कुंडेसु । छम्मासावत्थाणा सुपक्कमइसाउरसकलियं ॥ १३० ॥

तेण य पिवासिएणं आकंठपमाणओ तयं पीयं । कहियं संबाईणं गएहिं तत्थट्ठियं दिट्ठं ॥ १३१ ॥

तेहिं वि तयमइरसियं पीयं चिट्ठंति जाव खणमेगं । ताव य मयाभिभूया संजाया परवसा सव्वे ॥ १३२ ॥

कहिं वि भमंतेहिं वणे दिट्ठो दीवायणो रिसी तत्थ । संभरियपुव्ववइयरा आयंबिरलोयणा जाया ॥ १३३ ॥

एसो सो फिर पावो दहिही अम्हाणसंतियं नयरिं । ता संपइ जाइ कहिं दिट्ठो अम्हेहिं दुट्ठप्पा ? ॥ १३४ ॥

जुगवं पि तओ लग्गा हणिउं पाहाण-जट्ठि-मुट्ठीहिं । निच्चेट्ठं काऊणं अन्नाणाओ गया नयरिं ॥ १३५ ॥

विन्नायवइयरेहिं सिग्धं बलदेव-वासुदेवेहिं । भयभीयमाणसेहिं खमाविओ पायवडिएहिं ॥ १३६ ॥

भो भो ! खमसु महायस ! खमापहाणा भवंति महरिसिणो । मा कुणसु भद्द ! कोवं कोवो जं दारुणसहावो ॥१३७॥

जओ-

पढमं चिय तं जंतुं कोहग्गी दहइ जत्थ उववज्जे । जत्थुप्पन्नो तं चेव इंधणं धूमकेउ व्व ॥ १३८ ॥

पापर्द्धिपापविरतोऽसत्यभाषण-परस्वहरणेषु । परदारप्रसङ्गेषु च यथा शक्त्या भवतु विरतः ॥ १२६ ॥

एवं धर्मरतानां विशिष्टसंवेगभावितमनसाम् । लोकानामकल्याणं न किमपि प्रायः समापतति ॥ १२७ ॥

अथान्यदा तथाविधदुर्धरभवितव्यतानियोगेन । शाम्बादिकाः कुमारा विनिर्गताः कथमपि क्रीडया ॥ १२८ ॥

कादम्बकानने शाम्बकुमारस्य सत्कः कोऽपि पुरुषः । कोऽपि पिपासाभिहतो गतो भ्रमन्वननिकुञ्जे ॥ १२९ ॥

यात्राऽऽस्ते किल मद्यं समुज्झितं गिरिगुहायाः कुण्डेषु । षण्मासावस्थानात्सुपक्वमतिस्वादुरसकलितम् ॥ १३० ॥

तेन च पिपासितेनाकण्ठप्रमाणात्तकं पीतम् । कथितं शम्बादीनां गतैस्तत्रस्थितं दृष्टम् ॥ १३१ ॥

तैरपि तकमतिरसितं पीतं तिष्ठन्ति यावत्क्षणमेकम् । तावच्च मदाभिभूताः सञ्जाताः परवशाः सर्वे ॥ १३२ ॥

कुत्राऽपि भ्रमद्भिर्वने दृष्टो द्वैपायनो ऋषिस्तत्र । संस्मृतपूर्वव्यतिकराः आताम्रलोचना जाताः ॥ १३३ ॥

एष स किल पापो धक्ष्यत्यस्माकं सत्कां नगरीम् । ततः संप्रति याति कुत्र दृष्टोऽस्माभि र्दुष्टात्मा ? ॥ १३४ ॥

युगपदपि ततो लग्ना हन्तुं पाषाण-यष्टि मुष्टिभि : । निश्चेष्टं कृत्वाऽज्ञानाद्गता नगरीम् ॥ १३५ ॥

विज्ञातव्यतीकराभ्यां शीघ्रं बलदेव-वासुदेवाभ्याम् । भयभीतमानसाभ्यां क्षामयितः पादपतिताभ्याम् ॥ १३६ ॥

भो भो ! क्षमस्व महायशः ! क्षमाप्रधाना भवन्ति महर्षयः । मा कुरु भद्र ! कोपं कोपो यद् दारुणस्वभावः ॥१३७॥

यतः-

प्रथमं चैव तं जन्तुं क्रोधाग्नि र्दहति यत्रोपपद्यते । यत्रोत्पन्नस्तं चैवेन्धनं धूमकेतुरिव ॥ १३८ ॥

रन्ने वि कयावासा कसायवसया वयंति नरयगई । वसिमे वि कयनिवासा जिइंदिया जंति सुरलोयं ॥ १३९ ॥

किंच-

एगस्स वि नियहिययस्स भद्द ! विनिवारणे जइ न सत्ती । ता कह पारंभियभवमहारिविणिवारणं तुज्झ ? ॥ १४० ॥

अह भणसि निरवराहो कयत्थिओ हं इमेहिं पावेहिं । तं पि न जं अवयासो खंतीए कयावराहेसु ॥ १४१ ॥

जओ-

जं खमसि दोसवंते सो तुह खंतीए होइ अवयासो । अह न खमसि को तुह अविसयाए खंतीए वावारो ? ॥ १४२ ॥

अवरमिमेसि सिसूणं विवेयवियलाण मूढहियाण । खमियव्वं चेव जओ [1]दुवियायं होइ न दुमाया ॥ १४३ ॥

तहा-

पढउ सुयं धरउ वयं कुणउ तवं चरउ बंभचेराई । तह वि तयं सव्वं पि हु निरत्थयं कोववसगस्स ॥ १४४ ॥

अन्नं च भो महारिसि ! कोहवसट्टो दयंपि नासेज्जा । दहइ तव-संजमं पि हु जहेव मंडुक्कियाखमओ ॥ १४५ ॥

परिगलइ मई नस्सइ सरस्सई गलइ वयपरीणामो । कोववसयाण तम्हा परिहरसु कसायसत्तुमिमं ॥ १४६ ॥

भणियं च तेण सव्वं अहं पि जाणापि जं अकज्जमिणं । सव्वेमिसमणत्थफलं विसेसओ वयपवन्नाणं ॥ १४७ ॥

परमभिमाणसवसेणं तया निरायं कयत्थिएण मए । बद्धं नियाणमसुभं निकाइयं चेव तं च इमं ॥ १४८ ॥

अरण्येऽपि कृतावासाः कषायवशगा व्रजन्ति नरकगतिम् । वसतावपि कृतनिवासा जितेन्द्रिया यान्ति सुरलोकम् ॥ १३९॥

किञ्च -

एकस्यापि निजहृदयस्य भद्र ! विनिवारणे यदि न शक्तिः । ततः क्व प्रारम्भितभवमहारिविनिवारणं तव ? ॥१४०॥

अथ भणसि निरापराधः कदर्थितोऽहमेतैः पापैः । तदपि न यदवकाशः क्षान्त्याः कृतापराधेषु ॥ १४१ ॥

यतः-

यत्क्षमसे दोषवतः स तव क्षान्त्या भवत्यवकाशः । अथ न क्षमसे कस्तवाविषयायाः क्षान्त्याव्यापारः? ॥ १४२ ॥

अपरमेतेषां शिशूनां विवेकविकलानां मूढहृदयानाम् । क्षन्तव्यं चैव यतो दुर्विजातं भवति न दुर्माता ॥ १४३ ॥

तथा -

पठतु श्रुतं धरतु व्रतं करोतु तपश्चरतु ब्रह्मचर्यादीन् । तथापि तकम्सर्वमपि हु निरर्थकं कोपवशगस्य ॥ १४४ ॥

अन्यच्च भो महर्षे ! क्रोधवशार्त्तो दयामपि नाशयेत् । दहति तपः संयममपि हु यथैव मण्डुकियाक्षपकः ॥१४५॥

परिगलति मति र्नश्यति सरस्वती गलति व्रतपरिणामः । कोपवशगानां तस्मात्परिहर कषायशत्रुमिमम् ॥ १४६ ॥

भणितं च तेन सर्वमहमपि जानामि यदकार्यमिदम् । सर्वेषामनर्थफलं विशेषतो व्रतप्रपन्नानाम् ॥ १४७ ॥

परमभिमानवशेन तदा निरागसं कदर्थितेन मया । बद्धं निदानमशुभं निकाचितं चैव तच्चेदम् ॥ १४८ ॥

---

१. दुर्विजातं-दुःसन्तितिः ।

जइ अत्थि इमस्स फलं कट्ठाणुट्ठाणसंचियतवस्स । तो पावाणमिमेसिं नयरिमहं निड्डहिज्जामि ॥ १४९ ॥

परमेवं पणयाणं विणयजुणायं भविस्सई मोक्खो । तुम्हं दोण्ह जणाणं सुणयस्स य नत्थि अन्नस्स ॥ १५० ॥

एसा मज्झ पइन्ना न चलइ विहिया जओ जुगंते वि । तो हो महाणुभावा ! मा खिज्जह एत्थ वत्थुम्मि ॥ १५१ ॥

वुत्तं च तओ हलिणा जं जाणइ कुणउ तं किमन्नेण ? भवियव्वं एमेव य न अन्नहा होइ जिणभणियं ॥ १५२ ॥

तत्तो ते साममुहा परिगलियपरक्कमा अकयकज्जा । सविसाया सविलक्खा समागया नियययनयरीए ॥ १५३ ॥

सो वि हु पब्भभट्ठवओ सामरिसो रुद्दझाणवसवत्ती । मरिऊण समुप्पन्नो अग्गिकुमारेसु देवेसु ॥ १५४ ॥

पुणरवि य देव-दाणवनमंसिओ जिणवरो समोसरिओ । पुव्वक्कमेण राया वंदणवडियाए नहिरिओ ॥ १५५ ॥

तत्तो य तिय-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महापह-पहेसु । बहुजणवूहे बहुजणरोले सद्दे बहुजणस्स ॥ १५६ ॥

जंपइ परोप्परेणं जह किर जउनंदणो जिणवरिंदो । उप्पन्नविमलनाणो समोसढो नंदणुज्जाणे ॥ १५७ ॥

ता भो ! तित्थयराणं नामस्स वि सवणयं हियकरं ति । किं पुण वंदण-पूयण-नमंसणं धम्मसवणं वा ? ॥ १५८ ॥

तम्हा देवाणुपिया ! गच्छामो जिणवरं नमंसामो । तद्दंसणेणं विणएण पूयपावा भवामो त्ति ॥ १५९ ॥

ण्हाया कयबलिकम्मा अप्प-महामुल्लभूसणपहाणा । राईसरमाईया विणिग्गया पउरजणनिवहा ॥ १६० ॥

असुयाइं सुणिस्सामो सुयाइं निस्संकियाइं काहामो । अप्पुव्वं पि य किं पि हु पुच्छिस्सामो जिणवरिंदं ॥ १६१ ॥

गयमारुढा हयवरगया य रहवरगया य के वि नरा । नरजाण-जुग्ग-गिल्ली-थील्ली-सिबियाइजाणगया ॥ १६२ ॥

यद्यस्त्येतस्य फलं कष्टानुष्ठानसञ्चिततपसः । तदा पापनामेतेषां नगरिमहं निर्धक्ष्यामि ॥ १४९ ॥

परमेवं प्रणतयो र्विनययुतयो र्भविष्यति मोक्षः । युवयो र्द्वयो र्जनयोः शुनकश्च नास्त्यन्यस्य ॥ १५० ॥

एषा मम प्रतिज्ञा न चलति विहिता यतो युगान्तेऽपि । ततो हो महानुभावौः ! मा खिद्येथामत्र वस्तुनि ॥ १५१ ॥

उक्तं च ततो हलिना यज्जानाति करोतु तत् किमन्येन ? । भवितव्यमेवमेव च नान्यथा भवति जिनभणितम् ॥ १५२ ॥

ततस्तौ श्याममुखौ परिगलितपराक्रमावकृतकार्यौ । सविषादौ सविलक्षौ समागतौ निजकनगर्याम् ॥ १५३ ॥

सोऽपि हु प्रभ्रष्टव्रतः सामर्षो रौद्रध्यानवशवर्त्ती । मृत्वा समुत्पन्नोऽग्निकुमारेषु देवेषु ॥ १५४ ॥

पुनरपि च देव-दानवनमितो जिनवरः समवसृतः । पूर्वक्रमेण राजा वन्दनाय निःसृतः ॥ १५५ ॥

ततश्च त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु । बहुजनव्यूहे बहुजनरोले शब्दे बहुजनस्य ॥ १५६ ॥

जल्पति परस्परेण यथा किल यदुनन्दनो जिनवरेन्द्रः । उत्पन्नविमलज्ञानः समवसृतो नन्दनोद्याने ॥ १५७ ॥

ततो भो ! तीर्थकराणां नाम्नोऽपि श्रवणकं हितकरमिति । किं पुन र्वन्दन-पूजन-नमनं धर्मश्रवणं वा ? ॥ १५८ ॥

तस्माद्देवानुप्रियाः ! गच्छामो जिनवरं नमामः । तद्दर्शनेन विनयेन पूतपापा भवाम इति ॥ १५९ ॥

स्नाताः कृतबलिकर्माणोऽल्प-महामूल्यभूषणप्रधानाः । राजेश्वरादयो विनिर्गताः पौरजननिवहाः ॥ १६० ॥

अश्रुतानि श्रोत्स्यामः श्रुतानि निःशङ्कितानि करिष्यामः । अपूर्वमपि च किमपि हु प्रक्ष्यामो जिनवरेन्द्रम् ॥ १६१ ॥

गजमारुढा हयवरगताश्च रथवरगताश्च केऽपि नराः । नरयान-युग-गिल्ली-स्थिल्ली-शिबिकादियानगताः ॥ १६२ ॥

अन्ने पयचारेणं चलिया बलिपूयवावडकरग्गा । किं बहुणा ? संखोभियसायरलहरीसरिसचरिया ॥ १६३ ॥

छत्ताइछत्तदंसणसमणंतरमुक्कपहरणावरणा । जिणसमयभणियविहिणा पणय[जि]णा ठंति संठाणे ॥ १६४ ॥

भयवं विरायजणयं संवेगकरं च तीए परिसाए । पारद्धो दाउं जे सुहोवएसं सुहावयणो ॥ १६५ ॥

भो भव्वा ! भीमभवोयहिम्मि जर-जम्म-मरणसलिलम्मि । दुत्तर-गहीर-भीसणमोहमहावत्तदुग्गम्मि ॥ १६६ ॥

पजलंतमयणवडवानलम्मि दुव्वाररोगभुयगम्मि । विलसंतवसणसावयसहस्ससंरंभविसमम्मि ॥ १६७ ॥

जलहिजलपडियरयणंवदुल्लहं पाविउण मणुयत्तं । सिद्धंतसवण-सद्धा-विरियजुयं जाणवत्तं व ॥ १६८ ॥

मा धम्मकम्मकरणम्मि पावमेवं पमायमायरह । जीवाण जमेसो च्चिय परमत्थरिउ जओ भणियं ॥ १६९ ॥

पमाएणं महाघोरं पायालं सत्तमं । पडंति विसयासत्ता बंभदत्ताइणो जहा ॥ १७० ॥

पमाएणं परायत्ता तुरंगा कुंजराइणो । कसंकुसाइघाएहिं वाहिज्जंति सुदुक्खिया ॥ १७१ ॥

पमाएणं कुमाणुस्स-रोगाऽऽयंकेहिं पीडिया । करुणा हीणदीणा य मरंति अवसा तओ ॥ १७२ ॥

पमाएणं कुदेवा वि पिसाया भूय-किव्विसा । आभिओगत्तणं पत्ता मणोसंतावताविया ॥ १७३ ॥

पमाएणं महासूरी संपुन्नसुयकेवली । दुरंता-ऽणंतकालं तु णन्तकाए वि संवसे ॥ १७४ ॥

पमाओ उ मुणिंदेहिं भणिओ अट्ठभेयओ । अन्नाणं संसओ चेव मिच्छत्ताणं तहेव य ॥ १७५ ॥

रागो दोसो मइब्भंसो धम्मम्मि[य]अणायरो । जोगाणं दुप्पणीहाणं अट्ठहा वज्जियव्वो ॥ १७६ ॥

अन्ये पदचारेण चलिता बलिपूतव्यापृतकराग्रा: । किं बहुना ? संक्षोभितसागरलहरीसदृशचरित्रा: ॥ १६३ ॥

छत्रातिच्छत्रदर्शनसमनन्तरमुक्तप्रहरणावरणा: । जिनसमयभणितविधिना प्रणतजिनास्तिष्ठन्ति स्वस्थाने ॥ १६४ ॥

भगवान् विरागजनकं संवेगकरं च तस्यां पर्षदि । प्रारब्धो दातुं ये शुभोपदेशं सुखावचन: ॥ १६५ ॥

भो भव्या ! भीमभवोदधौ जरा-जन्म-मरणसलिले । दुस्तर-गंभीर-भीषणमोहमहावर्त्तदुर्गे ॥ १६६ ॥

प्रज्वलन्मदनवडवानले दुर्वाररोगभुजगे । विलसद्व्यसनश्वापदसहस्रसंरम्भविषमे ॥ १६७ ॥

जलधिजलपतितरत्नमिव दुर्लभं प्राप्य मनुष्यत्वम् । सिद्धांतश्रवण-श्रद्धा-वीर्ययुक्तं यानपात्रमिव ॥ १६८ ॥

मा धर्मकर्मकरणे पापमेवं प्रमादमाचरत । जीवानां यदेष चैव परमार्थरिपु र्यतो भणितम् ॥ १६९ ॥

प्रमादेन महाधोरं पातालं यावत्सप्तमम् । पतन्ति विषयासक्ता: ब्रह्मदत्तादयो यथा ॥ १७० ॥

प्रमादेन परायत्तास्तुरङ्गा कुञ्जरादय: । कशाङ्कुशादिघातै र्वाह्यन्ते सुदु:खिता: ॥ १७१ ॥

प्रमादेन कुमनुष्य-रोगा-ऽऽतङ्कै: पीडिता: । करुणा हीनदीनाश्च म्रियन्तेऽवशास्तत: ॥ १७२ ॥

प्रमादेन कुदेवा अपि पिशाचा भूत-किल्बिषा: । आभियोगत्वं प्राप्ता मनसन्तापतापिता: ॥ १७३ ॥

प्रमादेन महासूरि: संपूर्णश्रुतकेवली । दुरन्ता-ऽनन्तकालं त्वनन्तकायेऽपि संवसेत् ॥ १७४ ॥

प्रमादस्तु मुनीन्द्रै र्भणितोऽष्टभेदत: । अज्ञानं शंसयश्चैव मिथ्यात्वानां तथैव च ॥ १७५ ॥

रागो दोषो मतिभ्रंशो धर्मे चानादर: । योगानां दुष्प्रणिधानमष्टधा वर्जितव्य: ॥ १७६ ॥

वरं हालाहलं पीयं वरं भुत्तं महाविसं । वरं तालउडं खद्धं वरं अग्गीपवेसणं ॥ १७७ ॥

वरं सतूहिं संवासो वरं सप्पेहिं कीलियं । खणं पि न खमो काउं पमाओ भवचारए ॥ १७८ ॥

एगम्मि चेव जम्मम्मि मारयंति विसायणो[1] । पमाएणं अणंताणि दुक्खाणि मरणाणि य ॥ १७९ ॥

ता पमायं पमोत्तूण कायव्वो होइ सव्वहा । उज्जमो चेव धम्मम्मि सव्वसोक्खाण कारणे ॥ १८० ॥

खणभंगुरसंसारियपयत्थसत्थम्मि नायपरमत्था । पडिबंधमणत्थफलं कुणंतु कहमेत्थ सविवेया ? ॥ १८१ ॥

जओ -

गयकन्नतालतरलं जीवियमवि ताव सव्वजीवाणं । संझब्भरायसरिसं जोव्वणमवि चंचलसहावं ॥ १८२ ॥

सविया (र) तलरतरुणीकडक्खविक्खेवविब्भमं रूवं । लायन्नं पवणाहयलवलीदलचंचलमसारं ॥ १८३ ॥

जं पि किर विसयसोक्खं जियाण रम्मत्तणेण पडिहाइ । तं पि महुबिंदुकूवयनायाओ तुच्छमच्चत्थं ॥ १८४ ॥

एवमणिच्चसरुवं नाउं संसारियाणं वत्थूणं । सासयसिवसुहजणए धम्मे च्चिय होइ जइयव्वं ॥ १८५ ॥

इय सवणामयसरिसं सोउं सिरिनेमिसामिणो वयणं । संसारविरत्तमणा जाया सव्वा वि पुरिपरिसा ॥ १८६ ॥

तो तारिसा वि जउवल्लहा वि दुद्दंत-तरलहियया वि । संबाइया कुमार संविग्गा पव्वइंसु तया ॥ १८७ ॥

उत्तमकुलुग्गयाओ वि रुव-सोहग्गगुणजुयाओ वि । रुप्पिणिपामोक्खाओ वयं पवन्नाओ देवीओ ॥ १८८ ॥

वरं हालाहलं पीतं वरं भुक्तं महाविषम् । वरं तालपूटं भक्षितं वरमग्निप्रवेशनम् ॥ १७७ ॥

वरं शत्रुभिः संवासो वरं सर्पैः क्रीडितम् । क्षणमपि न क्षमः कर्तुं प्रमादो भवचारके ॥ १७८ ॥

एकस्मिश्चैव जन्मनि मारयन्ति विषादयः । प्रमादेनानन्तानि दुःखानि मरणानि च ॥ १७९ ॥

ततः प्रमादं प्रमुच्य कर्त्तव्यो भवति सर्वथा । उद्यमश्चैव धर्मे सर्वसौख्यानां कारणे ॥ १८० ॥

क्षणभङ्गुरसांसारिकपदार्थसार्थे ज्ञातपरमार्थाः । प्रतिबन्धमनर्थफलं कुर्वन्तु कथमत्र सविवेकाः ? ॥ १८१ ॥

यतः-

गजकर्णतालतरलं जीवितमपि तावत्सर्वजीवानाम् । सन्ध्याभ्ररागसदृशं यौवनमपि चञ्चलस्वभावम् ॥ १८२ ॥

सविकारतरलतरुणीकटाक्षविक्षेपविभ्रमं रुपम् । लावण्यं पवनाहतलवलीदलचञ्चलमसारम् ॥ १८३ ॥

यदपि किल विषयसौख्यं जीवानां रम्यत्वेन प्रतिभाति । तदपि मधुबिन्दुकूपकज्ञातात्तुच्छमत्यर्थम् ॥ १८४ ॥

एवमनित्यस्वरुपं ज्ञात्वा सांसारिकाणां वस्तूनाम् । शाश्वतशिवसुखजनके धर्मे एव भवति यतितव्यम् ॥ १८५ ॥

इति श्रवणामृतसदृशं श्रुत्वा श्रीनेमिस्वामिनो वचनम् । संसारविरक्तमनसो जाताः सर्वेऽपि पुरुषाः ॥ १८६ ॥

ते तादृशा अपि यदुवल्लभा अपि दुर्दान्त-तरलहृदया अपि । शाम्बादिकाः कुमाराः संविग्नाः प्रव्रजितास्तदा ॥ १८७ ॥

उत्तमकुलोद्गता अपि रुप-सौभाग्यगुणयुता अपि । रुकिमणिप्रमुखा व्रतं प्रपन्ना देव्यः ॥ १८८ ॥

---

१. विषादयः ।

सो वि हु कुलिंगिदेवो णाउण विभंगओ नियपइन्नं । तुरमाणो आगच्छइ पेच्छइ धम्मुज्जयं लोयं । १८९ ॥

न[1] तरइ किं पि अणत्थं काउं धम्मप्पभावओ तत्थ । छिद्दं निभालयंतो अच्छइ पासेसु भमडंतो ॥ १९० ॥

अह बारसमे वरिसे अवस्सभवियव्वायानिओयस्स । भवणाओ जायवाणं संजाओ माणसवियप्पो ॥ १९१ ॥

धम्मपभावएणऽम्हं सो पावो निप्पभो ठिओ नूणं । न तरइ काउं किं पि वि उद्धियदाढो भुयंगो व्व ॥ १९२ ॥

भुंजामो विलसामो संपइ बाढं पराइया अम्हे । मज्जाईनियमेहिं दुक्करकरणेण भणियं च ॥ १९३ ॥

पुप्फ-फलाणं च रसं सुराए मंसस्स महिलियाणं च । जाणंता जे विरया ते दुक्करकारए वंदे ॥ १९४ ॥

तो ते पमत्तचित्ते दट्ठूणं मज्जापाणगासत्ते । छिद्दं पाविय पावो उप्पाए बहुविहे कुणइ ॥ १९५ ॥

अट्टट्टहासमसमं मुंचंति अचित्तचित्तपुत्तलिया । देवउलदेवयाओ सकडक्खाओ निरक्खंति ॥ १९६ ॥

गयणयलनारिनच्चण-रुहिरपवरिसण-सिवापवेसा य । कुसुमिणदंसण-सूरोवराय-कविहसियरूवा य ॥ १९७ ॥

अवरे वि हु संजाया भूमीकंपाइया दुरुप्पाया । किं बहुणा जिणभणियं पच्चासन्नं तया जायं ॥ १९८ ॥

आहुणिय कट्ठ-तण-कयवराइसंवट्टवाउणा घणियं । पुंजीकरेइ पावो नयरीए मज्झयरम्मि ॥ १९९ ॥

सट्ठिं कुलकोडीओ बहिट्ठियाओ [तओ य] निक्करुणो । बावत्तरिं च मज्झट्ठियाओ सयलाओ मेलेउं ॥ २०० ॥

अपय-चउप्पयमाई जं किं पि हु पासई तयं सव्वं । नयरीए पडिबद्धं तं मज्झे खिवइ दुक्खनिही ॥ २०१ ॥

सोऽपि हु कुलिङ्गिदेवो ज्ञात्वा विभङ्गान्निजप्रतिज्ञाम् । त्वरमाण आगच्छति पश्यति धर्मोद्यतं लोकम् ॥ १८९ ॥

न शक्नोति किमप्यनर्थं कर्तुं धर्मप्रभावात्तत्र । छिद्रं निभालयन्नास्ते पार्श्वेषु भ्रमन् ॥ १९० ॥

अथ द्वादशमे वर्षेऽवश्यभवितव्यतानियोगस्य । भवनाद्यादवानां सञ्जातो मानसविकल्पः ॥ १९१ ॥

धर्मप्रभावेनास्माकं स पापो निष्प्रभः स्थितो नूनम् । न शक्नोति कर्तुं किमप्यप्युर्ध्वितद्रंष्ट्रो भुजङ्ग इव ॥ १९२ ॥

भुञ्जामहे विलसामः सम्प्रति बाढं पराजिता वयम् । मद्यादिनियमै र्दुष्करकरणेन भणितं च ॥ १९३ ॥

पुष्प-फलानां च सुराया मांसस्य महिलानां च । जानन्तो ये विरतास्तान्दुष्करकारकान् वन्दे ॥ १९४ ॥

ततस्तान् प्रमत्तचित्तान् दृष्ट्वा मद्यपानकासक्तान् । छिद्रं प्राप्य पाप उत्पादान् बहुविधान् करोति ॥ १९५ ॥

अट्टट्टहास्यमसमं मुञ्चत्यचित्तचित्रपुत्तलिकाः । देवकुलदेवताः सकटाक्षा निरीक्षन्ते ॥ १९६ ॥

गगनतल नारिनर्तन-रुधिरप्रवर्षण-शिवाप्रवेशाश्च । कुस्वप्नदर्शन-सूर्योपराग-कपिहसितरुपाश्च ॥ १९७ ॥

अपरेऽपि हु सञ्जाता भूमिकम्पादिका दुरुत्पादाः । किं बहुना जिनभणितं प्रत्यासन्नं तदा जातम् ॥ १९८ ॥

आधुन्य काष्ट-तृण-कचवरादिसंवर्त्तकवायुनाऽत्यन्तम् । पुञ्जीकरोति पापो नगर्या मध्ये ॥ १९९ ॥

षष्ठि कुलकोट्यो बहिःस्थिता स ततश्च निष्करुणः । द्वासप्तति च मध्यस्थिताः सकला मेलयित्वा ॥ २०० ॥

अपद-चतुष्पदादयो यत्किमपि खलु पश्यति तकत्सर्वम् । नगर्याः प्रतिबद्धं तन्मध्ये क्षिपति दुःखनिधिः ॥ २०१ ॥

---

१. न शक्नोति ।

तत्तो चउपासेसुं पज्जालिय पावयं पबलपवणं । उ[ल्ल]लियबहलधूमंधरयार-जालनिरुद्धनहं ॥ २०२ ॥

हा ताय ! भाय ! पिययम ! डज्झंताऽसरणया अणाहा य । वीसुंपलित्तगत्ता कहमच्छामो ? कहिं जामो ? ॥ २०३ ॥

जलणेण पसित्ताइं पडंति माऊण उवरि डिंभाइं । मायाओ पलित्ताओ पडंति उवरिं पलित्ताणं ॥ २०४ ॥

अंगीकयनरयदुहो हा हा ! को एरिसं महापावं । कज्जं ववसइ ? जो किर न दूरभव्वो अभव्वो वा ॥ २०५ ॥

कंदंति जायवा जायवीओ नाणापलावमुहलाओ । अवराओ नायरीओ रुयंति असमंजसपयारा ॥ २०६ ॥

हा बलदेव ! महाबल [हा······]वंत केसव ! कहिं ते । सहस त्ति गया सत्ती ? हा हा ! ते वि हु कहिं कुमरा ? ॥२०७॥

डज्झामो डज्झामो रक्खह रक्खह कुओ वि आगंतुं । इय सव्वत्तो सुव्वंति दारुणा पइपयं सद्दा ॥ २०८ ॥

बलदेवसुओ नामेण कुज्जओ गुरुसरेण पोक्करइ । जइ किर चरमसरीरो ता कह डज्झामि एवमहं ? ॥ २०९ ॥

इय भणिए सो सहसा उक्खित्तो जंभगेहिं जिणपासे । पव्वइओ कयपुन्नो कम्मं खविऊण सिद्धो य ॥ २१० ॥

बलदेव-वासुदेवा तुरए जोइत्तु रहवरे पियरो । आरोविऊण सिग्धं जा किर नयरीओ नीणंति ॥ २११ ॥

ता देवेणं भणिया निब्भच्छेऊण निट्ठुरगिराहिं । भो भो ! तुब्भे भुल्ला ? किं वा विसघारियावयवा ? ॥ २१२ ॥

किं वा वि हु वीसरियं मह वयणं मोहमोहियमणाण ? । जं दो वि जणा तुब्भे मोत्तु नऽन्नस्स नीसारो ॥ २१३ ॥

एवं वोत्तुं पावो पिहेइ दाराइं पुरपओलीए । तो पण्हिपहारेणं फोडिंति कवाडसंपुडए ॥ २१४ ॥

एवं पि कए जाव य न देइ निग्गममिमो रहवरस्स । अम्मा-पिऊहिं भणिया तो ते मा कुणह पडिबंधं ॥ २१५ ॥

ततश्चतुःपार्श्वेषु प्रज्वाल्य पावकं प्रबलपवनम् । उल्ललितबहुलधुम्रान्धकार-ज्वालानिरुद्धनभः ॥ २०२ ॥

हा तात ! भ्रात ! प्रियतम ! दह्यमानाअशरणा अनाथाश्च । विश्वक्प्रदीप्तगात्राः कथमास्महे ? क्व यामः ? ॥ २०३ ॥

ज़्वलनेन प्रदीप्तानि पतन्ति मातुरुपरि डिम्भानि । मातरः प्रदीप्ताः पतन्त्युपरि प्रदीप्तानाम् ॥ २०४ ॥

अङ्गीकृतनरकदुःखो हा हा ! क ईदृशं महापापम् । कार्यं व्यवसति ? य किल न दुरभव्योऽभव्यो वा ॥ २०५ ॥

क्रन्दन्ति यादवा यादव्यो नानाप्रलापमुखराः । अपरा नागर्यो रुदन्त्यसमञ्जसप्रचाराः ॥ २०६ ॥

हा बलदेव ! महाबल ! हा बलवान् केशव ! क्व ते । सहसेति गता शक्ति : ? हा हा ! तेऽपि हु क्व कुमाराः ? ॥२०७॥

दहामो दहामो रक्षत रक्षत कुतोऽप्यागत्य । इति सर्वतः श्रूयन्ते दारुणाः प्रतिपदं शब्दाः ॥ २०८ ॥

बलदेवसुतो नाम्ना कुब्जको गुरुस्वरेण पुत्करोति । यदि किल चरमशरीरस्तदा कथं दहामि एवमहम् ? ॥ २०९ ॥

इति भणिते स सहसोत्क्षिप्तो जृम्भकै जिनपार्श्वे । प्रव्रजितः कृतपुण्यः कर्म क्षपयित्वा सिद्धश्च ॥ २१० ॥

बलदेव-वासुदेवौ तुरगान्योजित्वा रथवरे पितॄन् । आरोप्य शीघ्रं यावत् किल नगर्या निर्गच्छतः ॥ २११ ॥

तदा देवेन भणितौ निर्भर्त्स्य निष्ठुरगीर्भिः । भो भो ! युवां विस्मृतौ ? किं वा विषगृहीतावयवौ ? ॥ २१२ ॥

किं वापि हु विस्मृतं मम वचनं मोहमोहितमनसौ ? । यद् द्वावपि जनौ युवां मुक्त्वा नान्यस्य निःसारः ॥ २१३ ॥

एवमुक्त्वा पापः पिदधाति द्वाराणि पुरप्रतोल्याः ॥ ततः पार्ष्णिप्रहारेण स्फोटति कपाटसम्पूटान् ॥ २१४ ॥

एवमपि कृते यावन्न ददाति निर्गममयं रथवरस्य । अम्मा-पितृभि र्भणितौ ततस्तौ मा कुरुतां प्रतिबन्धम् ॥ २१५ ॥

अम्हाणमुवरि जम्हा जिणिंदवयणं न अन्नहा होइ । ता वयह तुमे अम्हं पुणाइ जं होइ तं होउ ॥ २१६ ॥
तुब्भेहि जियंतेहिं पुणरवि कुलसंतई धुवं होही । अम्हाण संतियं पुण मिच्छादुक्कडमिमं वच्छा ! ॥ २१७ ॥
तो ते पमुक्कधाहा महया सद्देण रोविउं लग्गा । गुरुसोयताविमणा महंतमुव्वेयमावन्ना ॥ २१८ ॥
जिन्नुज्जाणम्मि ठिया ओरुन्नमुहा गलंतनयणजला । पेच्छंति पुरिं दीवायणेण डज्झंतियं दुहिया ॥ २१९ ॥
हा हा लच्छीहर ! लच्छिवच्छदुल्ललियवच्छ ! अच्छेरं । पेच्छसु समुद्दविजया वि जं वयं एव परिभविया ॥ २२० ॥
दीवायणेण इमिणा संखोहियमाणसा समग्गा वि । अक्खोहगुणजुया वि हु जायववग्गा खयं नीया ॥ २२१ ॥
अइथिमिय-सुत्थिया वि हु अप्पत्थियदुत्थणत्तदुत्थाओ । नायरयइत्थियाओ वच्छ ! अणाहाओ डज्झंति ॥ २२२ ॥
सागरगंभीरिमसंगया वि जलणेण लाघवं नीया । जत्तेण पालिया वि हु पेच्छसु पउरा विणस्संति ॥ २२३ ॥
अहियं हिमवंतसमुन्नओ वि बहुदेवउलनियरो । निद्दड्ढमूलभागो विहढइ खडहडियसिहरग्गो ॥ २२४ ॥
अवलोयसु अयलपइट्ठिया वि निट्ठवियमेइणिपइट्ठा । निवडंति खडहडारावभीसणा हेमपासाया ॥ २२५ ॥
दढधरणधरियपायासु डज्झमाणासु हत्थिसालासु । डज्झंति तडयडारावगब्भिणं वंससंधाया ॥ २२६ ॥
पइदियहं पूरणपूरिओ वि भणि-कणग-रयणभंडारो । उवहसियधणयकोसो वच्छ ! विणट्ठो विहिवसेण ॥ २२७ ॥
अभिचंदं रायं प(?य) इसप्पहं सयलसुहयरं सोमं । जायवलच्छी पेच्छंतिया वि कह झामिया सव्वा ? ॥ २२८ ॥
वच्छऽच्छेरयमवरं देवइ-वसुदेव-रोहिणिजुओ वि । पेच्छंताणं पज्जलइ रहवरो तह वि जीवामो ॥ २२९ ॥

अस्माकमुपरि यस्माज्जिनेन्द्रवचनं नान्यथा भवति । ततो व्रजतो युवामस्माकं पुन र्यद्भवति तद्भवतु ॥ २१६ ॥
युवाभ्यां जीवद्भ्यां पुनरपि कुलसन्तति र्ध्रुवं भविष्यति । अस्माकं सत्कं पुनर्मिथ्या दुष्कृतमिदं वत्सौ ! ॥ २१७ ॥
ततस्तौ प्रमुक्तपुत्कारौ महता शब्देन रोदितुं लग्नौ । गुरुशोकतापितमानसौ महोद्वेगमापन्नौ ॥ २१८ ॥
जीर्णोद्याने स्थितावरुदितमुखौ गलन्नयनजलौ । पश्यत: पुरिं द्वीपायनेन दह्यमानां दु:खितौ ॥ २१९ ॥
हा हा लक्ष्मीधर ! लक्ष्मीवक्षोदुर्ललितवत्स !आश्चर्यम् । पश्य समुद्रविजयावपि यदावामेवं परिभवितौ ॥ २२० ॥
द्वीपायनेनानेन संक्षोभितमानसा: समग्रा अपि । अक्षोभगुणयुता अपि खलु यादववर्गा: क्षयं नीता: ॥ २२१ ॥
अतिस्तिमित-सुस्थिता अपि खल्वप्रार्थितदुस्थत्वदुस्था: । नागरकस्त्रियो वत्स ! अनाथा दहन्ति ॥ २२२ ॥
सागरगम्भीरमसङ्गता अपि ज्वलनेन लाघवं नीता: । यत्नेन पालिता अपि खलु पश्य पौरा विनश्यन्ति ॥ २२३ ॥
अधिकं हिमवत्समुन्नतोऽपि बहुदेवदेवकुलनिकर: । निर्दग्धमूलभागो विघटति शिथिलितशिखराग्र: ॥ २२४ ॥
अवलोकयाचलप्रतिष्ठिता अपि निष्ठापितमेदिनिप्रतिष्ठा: । निपतन्ति खडखडारावभीषणा हेमप्रासादा: ॥ २२५ ॥
दृढधरणधृतपादासु दह्यमानासु हस्तिशालासु । दहन्ति तडतडारावगर्भिणं वंशसङ्घाता: ॥ २२६ ॥
प्रतिदिवसं पूरणपूरितोऽपि मणिकनकरत्नभण्डागार: । उपहसितधनदकोशो वत्स ! विनष्टो विधिवशेन ॥ २२७ ॥
अभिचन्द्रं राजानं प्रकृतिसप्रभं सकलसुखकरं सौम्यम् । यादवलक्ष्मी: प्रेक्षमाणयोरपि कथं दग्धा सर्वा ? ॥ २२८॥
वत्स ! आश्चर्यमपरं देवकी-वासुदेव-रोहिणयुतोऽपि । प्रेक्षमाणयो: प्रज्वलति रथवरस्तथापि जीवाम: ॥ २२९ ॥

दुक्कयपरिणइपन्हीए पेरिया पेच्छ पडइ पुरिमहिला । कुंतय-मद्दीरूवाहिं दोहिं बाहाहिं धरिया वि ॥ २३० ॥
एरिसगाण वि सुकुलुब्भवाण पुरिसाणमेरिसं वसणं । पुन्नक्खएण जायइ जियाणमियरेसि का गणणा ? ॥ २३१ ॥
एत्थंतरम्मि हलिणा भणिओ कण्हो सुदुक्खिओ संतो । बंधव ! कत्थ वयामो ? किं करिमो ? कस्स पोक्करिमो ? ॥ २३२ ॥
कस्स मुहं दरिसामो ? किं वा सरणं वयं पवज्जामो ? । इण्हिं का अम्ह गई हरिणाण व जूहभट्ठाण ? ॥ २३३ ॥
एयावत्थं नयरिं पेच्छंताणं समिद्धमम्हाणं । वज्जमयं णणु हिययं जं न वि सयसिक्करं जाइ ॥ २३४ ॥
सरिउं जिणिंदवयणं तओ पयट्टंति दाहिणाभिमुहं । वारं वारं परिवलियकंधरं ते पलोयंता ॥ २३५ ॥
पंडुसुया अम्हाणं संपइ सरणं ति पंडुमहुराए । चलिया ललियगईए मयगललीलं विडंबंता ॥ २३६ ॥
भूसणजुइविज्जुज्जोयभासुरा नयणनीरकयवरिसा । पाउसजलहरसरयब्भविब्भमा पहनहम्मि ठिया ॥ २३७ ॥
समकालं सारीरिय-माणसदुक्खेण ते समुप्फुन्ना । पेच्छऽहो ! बलियाण वि बलिओ बाढं विहिनिओओ ॥ २३८ ॥
पहिय व्व पहे वच्चंति पायचारेण भुक्खिया तिसिया । कंद-फल-पत्त-पुप्फाइभक्खिणो खवियतणुसोहा ॥ २३९ ॥
भूमीसयणा सयणाइविरहिया वत्थ-पावरणरहिया । ण्हाण-विलेवण-भोगोवभोगमुक्का मुणिवरु व्व ॥ २४० ॥
ते तारिसा वि सुहसुत्थिया वि अविउत्तसयणवग्गा वि । एक्कपए च्चिय दुहिया अहो ! दुरंतो विहिनिओगो ॥ २४१ ॥
सव्वत्थ वि वित्थरियं जह किर दीवायणेण वारवई । दड्ढा दो उव्वरिया नवरं बलभद्द-महुमहणा ॥ २४२ ॥
ते वि य कमेण जंता संपत्ता पुव्वदक्खिणविभागे । धयरट्ठायबलवंतसत्तुसुयरायकयरक्खं ॥ २४३ ॥

दुष्कृतपरिणतिपाष्ण्र्या प्रेरिता पश्य पतति पुर्महिला । कुन्ति-मद्रीरुपाभ्यां द्वाभ्यां बाहाभ्यां धृतापि ॥ २३० ॥
ईदृशानामपि सुकुलोद्भवानां पुरुषाणामीदृशं व्यसनम् । पुण्यक्षयेन जायते जीवानामितरेषां का गणना ? ॥ २३१ ॥
अत्रान्तरे हलिना भणितः कृष्णः सुदुःखितः सन् । बन्धो ! क्व गच्छावः ? किं कुर्वः ? कस्य पुत्कुर्वः ॥ २३२ ॥
कस्य मुखं दर्शयावः ? किं वा शरणमावां प्रपद्यामहे ? । इदानीं काऽऽवां गति र्हरिणानामिव यूथभ्रष्टानाम् ? ॥ २३३ ॥
एतदवस्थां नगरिं पश्यतो समृद्धमावयोः । वज्रमयं ननु हृदयं यन्नापि शतशर्करं याति ॥ २३४ ॥
स्मृत्वा जिनेन्द्रवचनं ततः प्रवर्तेते दक्षिणाभिमुखम् । वारं वारं परिवलितकन्धरं तौ प्रलोकयन्तौ ॥ २३५ ॥
पाण्डुसुता आवयोः सम्प्रति शरणमिति पाण्डुमथुरायाम् । चलितौ ललितगत्या मदगललीलां विडम्बयन्तौ ॥ २३६ ॥
भूषणद्युतिविद्युद्द्योतभासुरौ नयननीरकृतवर्षौ । प्रावृड्जलधरशरदाभ्रविभ्रमौ पथनभसि स्थितौ ॥ २३७ ॥
समकालं शारीरिक-मानसदुःखेन तौ समुत्पूर्णौ । पश्याहो ! बलिनामपि बलिको बाढं विधिनियोगः ॥ २३८ ॥
पथिक इव पथि व्रजतः पादचारेण बुभुक्षितौ तृषितौ । कन्द-फल-पत्र-पुष्पादिभक्षिणौ क्षपिततनुशोभौ ॥ २३९ ॥
भूमिशयनौ शयनादिविरहितौ वस्त्र-प्रावरणरहितौ । स्नान-विलेपन-भोगोपभोगमुक्तौ मुनिवराविव ॥ २४० ॥
तौ तादृशावपि सुखसुस्थितावप्यवियुक्तस्वजनवर्गावपि । एकपदे चैव दुःखितावहो ! दुरन्तो विधिनियोगः ॥ २४१ ॥
सर्वत्रापि विस्तृतं यथा किल द्वीपायनेन द्वारावती । दग्धा द्वावुद्धरितौ नवरं बलभद्रमधुमथनौ ॥ २४२ ॥
तावपि च क्रमेण यान्तौ सम्प्राप्तौ पूर्वदक्षिणविभागे । धृतराष्ट्रराजबलवच्छत्रुसुतराजकृतरक्षम् ॥ २४३ ॥

सत्तंगसुप्पइट्ठं उन्नयकरदाणवरिसरमणीयं । कुंभत्थलसोहिल्लं जहत्थयं हत्थिकप्पपुरं ॥ २४४ ॥

एत्थंतरम्मि कन्हो छुहाभिभूओ हलाउहं भणइ । आणेहि भोयणं भाय ! भुक्खिओऽहं दढमसत्तो ॥ २४५ ॥

गंतुं पयमवि तत्तो भणइ हली वच्छ ! होसु वीसत्थो । आणेमि भोयणं बंधवस्स मा वच्चसु विसायं ॥ २४६ ॥

परमेयं वइरिपुरं जइ कह वि हु वइरिएहिं पारद्धो । मुंचामि सीहनायं ता रक्खसु वच्छ ! अप्पाणं ॥ २४७ ॥

गंतूण नयरमज्झे महरिहमणिकडगविणिमयं काउं । कुल्लूरियावणाओ मंडगपभिई परममन्नं ॥ २४८ ॥

कल्लालियावणाओ सरगाई सुरभि पाणगं घेत्तुं । जावाऽऽगच्छइ सहस त्ति ताव सन्निहियसत्तूहिं ॥ २४९ ॥

सन्नद्धबद्धकवएहिं हक्किओ हण हण त्ति भणिरेहिं । बलदेवो वि हु संगोविऊण तं भत्तमेगत्थ ॥ २५० ॥

उप्पाडिऊण स महप्पमाणमालाणखंभमणवरयं । संचूरियं पवत्तो ससीहनायं तमरिसेन्नं ॥ २५१ ॥

कण्हो वि तुरियमागम्म सम्ममादाय परिहमुद्दंडं । हणिऊणं हयमहियं विहियमसेसं पि रिउसेन्नं ॥ २५२ ॥

अमलियमाणो बलभद्दभाउणो मुइयमाणसो मिलिओ । जेण न सीहो वसणस्सिओ वि सज्झो सियालाणं ॥ २५३ ॥

अह कत्थइ तरुतलछाइयाए तरुपत्तरइयपुडएहिं । भुंजंति जाव तो तेहिं सुमरियं पुव्वभुत्तस्स ॥ २५४ ॥

हा जिय ! तारिसभुंजाइयाए तह भुंजिऊण सविलासं । सम्माणदाणपरिवज्जिएहिं परिभुज्जइ इयाणिं ॥ २५५ ॥

कह सा जिण-गुरुपूया कह सा कलगीयपमुहसामग्गी ? । कह सो बंधववग्गो ? कह ते जीवियसमा कुमरा ? ॥ २५६ ॥

हा हियय ! किं न फुट्टसि सुमरंतं सरसपुव्वभुत्ताणं ? । इन्हिं विदेसिएहिं परिभुज्जइ भोयणं विहलं ॥ २५७ ॥

सप्ताङ्गसुप्रतिष्ठमुन्नत्तकरदानवर्षरमणीयम् । कुम्भस्थलशोभमानं यथार्थकं हस्तिकल्पपुरम् ॥ २४४ ॥

अत्रान्तरे कृष्णः क्षुधाभिमूतो हलायुधं भणति । आनय भोजनं भ्रात ! बुभुक्षितोऽहं दृढमशक्तः ॥ २४५ ॥

गन्तुं पदमपि ततो भणति हली वत्स ! भव विश्वस्तः । आनयामि भोजनं बन्धवस्य मा व्रज विषादम् ॥ २४६ ॥

परमेतद्वैरिपुरं यथा कथमपि हु वैरिकैः प्रारब्धः । मुञ्चामि सिंहनादं तावद्रक्ष वत्स ! आत्मानम् ॥ २४७ ॥

गत्वा नगरमध्ये महार्हमणिकटकविनिमयं कृत्वा । कान्दविकापणान्मण्डकप्रभृतिं परमान्नम् ॥ २४८ ॥

कलालिकापणात् सरकादि सुरभिं पानकं गृहीत्वा । यावदागच्छति सहसेति तावत् सन्निहितशत्रुभिः ॥ २४९ ॥

सन्नद्धबद्धकवचैराकारितो हण हणेति भणद्भिः । बलदेवोऽपि हु संगोप्य तं भक्तमेकत्र ॥ २५० ॥

उत्क्षिप्य स महाप्रमाणमालानस्तम्भमनवरतम् । सञ्चूर्णितुं प्रवृत्तः ससिंहनादं तमरिसैन्यम् ॥ २५१ ॥

कृष्णोऽपि त्वरितमागत्य सम्यगादाय परिधमुद्दण्डम् । हत्वा हतमथितं विहितमशेषमपि रिपुसैन्यम् ॥ २५२ ॥

अमलितमानो बलभद्रभ्रातु मुंदितमानसो मिलितः । येन न सिंहो व्यसनाश्रितोऽपि साध्यः शिवानाम् ॥ २५३ ॥

अथ क्वचित्तरुतलछायायां तरुपत्ररचितपुटकैः । भुञ्जेते यावत्तावत्ताभ्यां स्मृतं पूर्वभुक्तस्य ॥ २५४ ॥

हा जीव ! तादृशभुञ्जादिकया तथा भुक्त्वा सविलासम् । सन्मानदानपरिवर्जिताभ्यां परिभुज्यत इदानीम् ॥ २५५ ॥

क्व सा जिन-गुरुपूजा क्वसा कलगीतप्रमुखसामग्री ? । क्वस बन्धुवर्गः ? क्व ते जीवितसमाः कुमाराः ? ॥ २५६ ॥

हा हृदय ! किं न स्फुटसि स्मरन्तं सरसपूर्वभुक्तानाम् ? । इदानीं विदेशिकैः परिभूज्यते भोजनं विफलम् ॥ २५७ ॥

तह वि हु परिभुंजिज्जइ गयलज्जेहिं छुहा-पिवासाओ । पत्थावमपत्थावं जाणंति न जेण पावा उ ॥ २५८ ॥

एवं सविसायमणा भुंजिता वीसमित्तु खणमेगं । पुरओ केत्तियमेत्तं भूभागं जाव गच्छंति ॥ २५९ ॥

कंटयपहाणबब्बूल-बोरि-धव-खइरपमुहतरुनियरं । करकरकन्तकायं पत्ता कोसम्बवणमसुहं ॥ २६० ॥

ता लवणभोयणाओ खरतरकरतरणिगाढतवणाओ । [1]अणुचियसमाओ पुन्नक्खयाओ दवदद्धगमणाओ ॥ २६१ ॥

कन्हो तिसाभूभूओ मुच्छाविहलंघलो तरुतलम्मि । पडिओ बंधव ! तण्हाए वाहिओ गंतुमसमत्थो ॥ २६२ ॥

वामं पायं काऊणमुवरिमियरस्स रायलीलाए । पच्छाइऊण कोसेयपीयवत्थेणमप्पाणं ॥ २६३ ॥

नेमिजिणेसरवयणं व सीयलं सुहय ! पायसु जलं ति । अन्नह पाणा वच्चंति मज्झ इय भणिय पासुतो ॥ २६४ ॥

एयं सुन्नमरन्नं ता अपमत्तेण वच्छ ! होयव्वं । जेणऽम्हाणं बहवे वसणावडियाणमरिनिवहा ॥ २६५ ॥

भो भो वणाहिया देवयाउ ! एसो पिओ महं भाया । नासो मुक्को तुम्हं रक्खेयव्वो पयत्तेणं ॥ २६६ ॥

अप्पाहिऊण एवं जलमन्निसिउं गयम्मि बलभद्दे । भवियव्वयावसेणं जं जायं तं निसामेह ॥ २६७ ॥

खर-फरुससरीरछवी पलंबमंसू परूढदीहनहो । वल्लीवियाणसंजमियमुद्धओ वाहवेसधरो ॥ २६८ ॥

कन्हस्स कालपासेहिं कड्ढिओ कलियकंडकोयंडो ।
पत्तो तम्मि पएसे जराकुमारो कयंतो व्व ॥ २६९ ॥ ग्रन्थाग्रम् १२००० ॥

तथापि हु परिभुज्यते गतलज्जैः क्षुधा-पिपासात् । प्रस्तावमप्रस्तावं जानन्ति न येन पापास्तु ॥ २५८ ॥

एवं सविषादमनसौ भुक्त्वा विश्रम्य क्षणमेकम् । पुरतः कियन्मात्रं भूभागं यावद्गच्छतः ॥ २५९ ॥

कण्टकपाषाणबब्बूल-बोरि-धव-खदिरप्रमुखतरुनिकरम् । करकरकुर्वत्कायं प्राप्तौ कोशम्बवनमशुभम् ॥ २६० ॥

ततो लवणभोजनात्खरतरकरतरणिगाढतपनात् । अनुचितश्रमात् पुण्यक्षयाद् दवदग्धगमनात् ॥ २६१ ॥

कृष्णस्तृषाभिभूतो मूर्च्छाविह्वलान्धस्तरुतले । पतितो बन्धव ! तृष्णया बाधितो गन्तुमसमर्थः ॥ २६२ ॥

वामं पादं कृत्वोपरीतरस्य राजलीलया । प्रच्छाद्य कौशेयपीतवस्त्रेणात्मानम् ॥ २६३ ॥

नमेजिनेश्वरवचनमिव शीतलं सुभग ! पायय जलमिति । अन्यथा प्राणा व्रजन्ति ममेति भणित्वा प्रसुप्तः ॥ २६४ ॥

एतच्छून्यमरण्यं ततोऽप्रमत्तेन वत्स ! भवितव्यम् । येनावयोर्बहवो व्यसनापतितानामरिनिवहाः ॥ २६५ ॥

भो भो वनाधिता देवताः ! एष प्रियो मम भ्राता । न्यासो मुक्तो युष्माकं रक्षितव्यः प्रयत्नेन ॥ २६६ ॥

संदिष्यैवं जलमन्वेषितुं गते बलभद्रे । भवितव्यतावशेन यज्जातं तन्निशामयत ॥ २६७ ॥

खर-परुष शरीरच्छविः प्रलम्बमंशुः प्ररुढदीर्घनखः । वल्लिवितानसंयमितमुर्द्धजो व्याधवेशधरः ॥ २६८ ॥

कृष्णस्य कालपाशैः कृष्टो कलितकण्डकोदण्डः ।
प्राप्तस्तस्मिन्प्रदेशे जराकुमारः कृतान्त इव ॥ २६९ ॥

---

१. अनुचित्तश्रमात् ।

आरोविऊण धणुहरमायन्नं कड्ढिउं कढिणकंडं । कन्हो मिगबुद्धीए विद्धो वामम्मि पायतले ॥ २७० ॥

तत्तो भयरहिएणं ससंभमं उट्ठिऊण भणियमिमं । भो भो ! किल केणाहं विद्धो बाणेण पायतेल ? ॥ २७१ ॥

ता साहउ नियवंसं नियनामं नियकुलं नियं कज्जं । जेण मए न कया वि हु अयाणिओ पहयपुव्वो त्ति ॥ २७२ ॥

हा हा ! धिसि धिसि ! मम चेट्ठियस्स एसो हु माणुसोकोइ । हरिणजुवाणो न हु होइ एस इय खिज्जिउं बहुयं ॥२७३॥

वंसाइयं च पुच्छइ ता तं उवसप्पिऊण साहेमि । भो भो ! अहयं हरिवंससंभवो जायवसगोत्तो ॥ २७४ ॥

नामं जराकुमारो पुहईएक्कल्लवीरचरियस्स । जायववित्थयनहयलमयंकवसुदेवतणयस्स ॥ २७५ ॥

रुरु-हरिण-सीह-सद्दूलभीसणे काणणम्मि कण्हस्स । जीवियसमस्स रक्खत्थमेत्थ निवसामि अइदुहिओ ॥२७६॥

इयमायन्निय कण्हो जराकुमारो त्ति एस नाऊण । उग्घाडियदुहनियरो एवं भणिउं समाढत्तो ॥ २७७ ॥

ए ! एहि एहि भायर ! परोवयारेक्करसिय ! परिरंभ ! एसो सो हं कण्हो तुहमप्पाणस्स वि य दुहओ ॥ २७८ ॥

तेणुत्तं परिरंभणमुचियं पजलियचियानलस्स महं । निल्लक्खणस्स न उणो पसत्थलक्खणवओ भवओ ॥ २७९ ॥

पियबंधवस्स जीवियसमस्स बारसमवरिसमिलियस्स । कण्हस्स मए भयवं ! विहियमणज्जेण पाहुन्नं ॥ २८० ॥

पावस्स किं न निवडइ गयणाओ मज्झ मत्थए वज्जं । जइ वा सो वि हु संकइ फंसरभयाओ[१] जओ भणियं ॥२८१॥

एरिसकम्मरयाणं जं न पडइ खडहडंतयं वज्जं । तं नूणमिमो चिंतइ छिविउमिमे कत्थ सुज्झिस्सं ? ॥ २८२ ॥

आरोप्य धनुर्धरमाकर्णं कृष्ट्वा कठिनकाण्डम् । कृष्णो मृगबुद्ध्या विद्धो वामे पादतले ॥ २७० ॥

ततो भयरहितेन ससंभ्रममुत्थाय भणितमिदम् । भो भो ? किल केनाहं विद्धो बाणेन पादतले ? ॥ २७१ ॥

ततः कथयतु निजवंशं निजनाम निजकुलं निजं कार्यम् । येन मया न कदापि खल्वज्ञातः प्रहतपूर्व इति ॥ २७२ ॥

हा हा ! धिग्धिग् ! मम चेष्ठितस्येष खलु मनुष्यः कोपि । हरिणयुवानो न खलु भवत्येष इति खेदयित्वा बहुकम् ॥ २७३ ॥

वंशादिकं च पृच्छति ततस्तमुपसर्प्य कथयामि । भो भो ! अहं हरिवंशसम्भवो यादवसगोत्रः ॥ २७४ ॥

नाम जराकुमारः पृथिव्येकलवीरचरित्रस्य । यादवविस्तृतनभःस्थलमृगाङ्कवसुदेवतनयस्य ॥ २७५ ॥

रुरु-हरिण-सिंह-शार्दुलभीषणे कानने कृष्णस्य । जीवितसमस्य रक्षाणार्थमत्र निवसाम्यतिदुःखितः ॥ २७६ ॥

इत्याकर्ण्य कृष्णो जराकुमार इत्येष ज्ञात्वा । उद्घाटितदुःखनिकर एवं भणितुं समारब्धः ॥ २७७ ॥

ए ! एहि एहि भ्रात ! परोपकारैकरसिक ! परिरम्भ । एष सोऽहं कृष्णस्तवात्मनोऽपि च दुःखदः ॥ २७८ ॥

तेनोक्तं परिरम्भणमुचितं प्रज्वलितचितानलस्य मम । निर्लक्षणस्य न पुनः प्रशस्तलक्षणवतो भवतः ॥ २७९ ॥

प्रियबन्धवस्य जीवितसमस्य द्वादशमवर्षमिलितस्य । कृष्णस्य मया भगवन् ! विहितमनार्येण प्राघूर्णकम् ॥ २८० ॥

पापस्य किं न निपतति गगनान्मम मस्तके वज्रम् । यदि वा सोऽपि हु शङ्कते स्पर्शभयाद्यतो भणितम् ॥ २८१ ॥

इदृशकर्मरतानां यत्र पतति खटखटन्तं वज्रम् । तन्नूनमयं चिन्तयति स्पृष्टवेमान् कुत्र शोधिष्यामि ॥ २८२ ॥

---

१. स्पर्शभयात् ।

इय खिज्जिऊण बहुयं कंठम्मि विलिग्गिऊण कन्हस्स । उम्मुक्कमहाधाहं कलुणसरं रोविउं लग्गो ॥ २८३ ॥

हा कन्ह ! हा जणद्दण ! हा जायवगयणमंडणमयंक ! । हा ! कहमिहमायाओ तं बंधव-बंधुजणरहिओ ? ॥ २८४ ॥

किं वा विसामि जलणे ? किं वा पविसामि गुविलपायाले ? ।

कत्थ गणो सुज्झिस्सं ? कस्स मुहं दरिसइस्सामि ? ॥ २८५ ॥

आसंसारमकित्ती संजाया मज्झ मंदभग्गस्स । जह नियभाया कन्हो जराकुमारेण निहओ त्ति ॥ २८६ ॥

नियवइयरो य एसो जराकुमारस्स पुच्छमाणस्स । कहिओ कण्हेण तहिं सव्वो आगमणवुत्तंतो ॥ २८७ ॥

इय पलवंतो एसो बाहजलापुन्नदीणनयणजुओ । भणिओ जणद्देणं अवसर तं मज्झ पासाओ ॥ २८८ ॥

हिययाओ कुत्थुभमणिं पायतलाओ समुद्धरिय बाणं । पच्छहुत्तपएहिं पयाहि तं पंडुमहुराए ॥ २८९ ॥

जइ पुण कहमवि एही बलभद्दो तो तुमं पि मारिहिही । मा वयउ विणासं जायवाण वंसो निरवसेसो ॥ २९० ॥

पुव्वोइयवुत्तंतो बारवईए विणासपज्जंतो । मज्झ वि मरणं एवं कहियव्वं पंडुपुत्ताणं ॥ २९१ ॥

एवं बहुप्पयारं रुयमाणो पन्नवित्तु कन्हेण । कहमवि किच्छेण तया जराकुमारो विणिग्गमिओ ॥ २९२ ॥

कण्हो वि बाणपहरुत्थवेयणाविहुरविग्गहावयवो । वेरग्गभावियमणो चिंतिउमेवं समाढत्तो ॥ २९३ ॥

पेच्छाऽहो ! मम तारिसनिरुवमहरिवंससंभविस्साવિ । तारिससिणिद्धबंधवसहस्सपरिवारियस्सावि ॥ २९४ ॥

खणमेत्तेण वि दुद्धरविहाणवसवत्तिणो ममेयाणिं । एगाणियस्स मरणं हरिणस्स व जायमुत्तं च ॥ २९५ ॥

इति खेदित्वा बहुकं कण्ठे विलग्य कृष्णस्य । उन्मुक्तमहारार्टि करुणस्वरं रोदितुं लग्नः ॥ २८३ ॥

हा कृष्ण ! हा जनार्दन ! हा यादवगगनमण्डनमृगाङ्क ! । हा कथमिहायास्त्वं बन्धव-बन्धुजनरहितः ? ॥ २८४ ॥

किं वा विशामि ज्वलने ? किं वा प्रविशामि गहनपाताले ? ।

कुत्र गतः शोधिष्ये ? कस्य मुखं दर्शयिष्यामि ? ॥ २८५ ॥

आसंसारमकीर्तिः सञ्जाता मम मन्दभाग्यस्य । यथा निजभ्राता कृष्णो जराकुमारेण निहत इति ॥ २८६ ॥

निजव्यतीकरश्चैव जराकुमारस्य पृच्छतः । कथितः कृष्णेन तत्र सर्व आगमनवृत्तान्तः ॥ २८७ ॥

इति प्रलपन्नेष बाष्पजलापूर्णदीननयनयुगः । भणितो जनार्दनेनापसर त्वं मम पार्श्वात् ॥ २८८ ॥

हृदयात्कौस्तुभमणिं पादतलात्समुद्धृत्य बाणम् । पश्चाभिमुखैः पदैःप्रयाहित्वं पाण्डुमथुरायाम् ॥ २८९ ॥

यदि पुनः कथमप्येष्यति बलभद्रस्ततस्त्वामपि मारिष्यति । मा व्रजतु विनाशं यादवानां वंशो निरवशेषः ॥ २९० ॥

पूर्वोदितवृत्तान्तो द्वारावत्या विनाशपर्यन्तः । ममापि मरणमेवं कथितव्यं पाण्डुपुत्राणाम् ॥ २९१ ॥

इति बहुप्रकारं रुदन् प्रज्ञाप्य कृष्णेन । कथमपि कृच्छ्रेण तदा जराकुमारो विनिर्गतः ॥ २९२ ॥

कृष्णोऽपि बाणप्रहारोत्थवेदनाविधुरविग्रहावयवः । वैराग्यभावितमनाश्चिन्तयितुमेवं समारब्धः ॥ २९३ ॥

पश्याहो ! मम तादृशनिरुपमहरिवंशसम्भवस्यापि । तादृशस्निग्धबन्धवसहस्रपरिवारितस्यापि ॥ २९४ ॥

क्षणमात्रेणापि दुर्धरविधानवशवर्तिनो ममेदानीम् । एकाकिनो मरणं हरिणस्येव जातमुक्तं च ॥ २९५ ॥

खणदंसियसुरसरिवित्थराइं खणसुन्नरन्नसरिसाइं । एयाइं ताइं कम्मिंदयालिणो जीव ! ललियाइं ॥ २९६ ॥
ता अलमिमिणा परिचिंतिएण कज्जम्मि देमि नियमणं । भावियजिणवयणाणं जियाण परिदेवणमजुत्तं ॥२९७॥
संपइ नेमिजिणेसरपमुहाणं मज्झ तित्थनाहाणं । पाया सरणं निज्जियजम्मण-मरणाण सिद्धाणं ॥ २९८ ॥
साहूण नाण-दंसण-चरणजुयाणं गओ सरणमिण्हिं । केवलिपन्नत्तस्स वि धम्मस्स महाणुभावस्स ॥ २९९ ॥
इय चउसरणगओ हं सम्मं निंदामि दुक्कडं इण्हिं । सुकडं अणुमोएमो सव्वं चिय ताण पच्चक्खं ॥ ३०० ॥
पंचप्पयारमइयारजायमेसिं समक्खमालोए । वयपरिणामो पुण मज्झ जाणमाणस्स वि न जाओ ॥ ३०१ ॥
ते धन्ना कयपुन्ना संबकुमाराइया मह कुमारा । रुप्पिणिपामोक्खाओ पियाओ मे निबिडनेहाओ ॥ ३०२ ॥
जे चइऊणं घरवासमेरिसं दुक्खसंतइनिहाणं । जिणपासे पव्वइया ता तेसि वयाणिमणुसरिमो ॥ ३०३ ॥
संगामपमुहपावं समायरंतेण के वि जे जीवा । इहभव-अन्नभवेसु वि दुक्खविया ते खमावेमि ॥ ३०४ ॥
अन्नं च सरणमिण्हिं विसेसओ मज्झ मरणसमयम्मि । जिणसासणस्स सारो परमेट्ठीणं नमोक्कारो ॥ ३०५ ॥
एवं मुहुत्तमेगं जावऽच्छइ सुद्धमणपरीणामो । तावासुहकम्मवसा सरियं दीवायणरिसिस्स ॥ ३०६ ॥
पेच्छ अहो ! तेण तया कुलिंगिमेत्तेण तुच्छरूवेण । भुवणे अगंजियस्स वि माणमरट्टो महं भग्गो ॥ ३०७ ॥
जं मह पेच्छंतस्स वि दद्धा नयरी सुरिंदपुरिसरिसा । पिय-माइ-सयणवग्गो विणासिओ पावकम्मेण ॥ ३०८ ॥
ता जइ पेच्छामि तयं संपयमवि पावकारिणमणज्जं । कड्ढेमि तदुदराओ तो हं सकलंतरं सव्वं ॥ ३०९ ॥

क्षणदर्शितसुरसरिद्विस्तराणि क्षणशून्यारण्यसदृशानि । एतानि तानि कर्मेन्द्रजालिनो जीव ! ललितानि ॥ २९६ ॥
ततोऽलमनेन परिचिन्तितेन कार्ये ददामि निजकमनः । भावितजिनवचनानां जीवानां परिदेवनमयुक्तम् ॥ २९७ ॥
सम्प्रति नेमिजिनेश्वरप्रमुखाणां मम तीर्थनाथानाम् । पादाः शरणं निर्जितजन्म-मरणानां सिद्धानाम् ॥ २९८ ॥
साधूनां ज्ञान-दर्शन-चरणयुतानां गतः शरणमिदानीम् । केवलिप्रज्ञप्तस्यापि धर्मस्य महानुभावस्य ॥ २९९ ॥
इति चतुःशरणगतोऽहं सम्यग् निन्दामि दुष्कृतमिदानीम् । सुकृतमनुमोदयमि सर्वं चैव तेषां प्रत्यक्षम् ॥ ३०० ॥
पञ्चप्रकारमतिचारजातमेषां समक्षमालोचयामि । व्रतपरिणामः पुन र्मम ज्ञायमानस्यापि न जातः ॥ ३०१ ॥
ते धन्याः कृतपुण्याः शाम्बकुमारादिका मम कुमाराः । रुक्मिणिप्रमुखयाः प्रिया मे निबिडस्नेहाः ॥ ३०२ ॥
ये त्यक्त्वा गृहवासमीदृशं दुःखसतन्तिनिधानम् । जिनपार्श्वे प्रव्रजितास्ततस्तेषां व्रतान्यनुसरामः ॥ ३०३ ॥
सङ्ग्रामप्रमुखपापं समाचरता केऽपि ये जिताः । इह भवा-ऽन्यभवेष्वपि दुःखयितास्तान् क्षमयामि ॥ ३०४ ॥
अन्यच्च शरणमीदानीं विशेषतो मम मरणसमये । जिनशासनस्य सारः परमेष्ठीनां नमस्कारः ॥ ३०५ ॥
एवं मुहूर्तमात्रं यावदास्ते शुद्धमनःपरिणामः । तावदशुभकर्मवशात्स्मृतं द्वीपायनर्षेः ॥ ३०६ ॥
पश्याहो ! तेन तदा कुलिङ्गिमात्रेण तुच्छरुपेण । भुवनेऽपराजितमानगर्वो मम भग्नः ॥ ३०७ ॥
यन्मम पश्यतोऽपि दग्धा नगरी सुरेन्द्रपुरिसदृशा । पितृ-मातृ-स्वजनवर्गो विनाशितः पापकर्मणा ॥ ३०८ ॥
ततो यदि पश्यामि तकं साम्प्रतमपि पापकारिणमनार्यम । कर्षामि तदुदरात्ततोऽहं सकलतरं सर्वम् ॥ ३०९ ॥

एवं वहगयहियओ पुणरवि जाओ किलिट्ठपरिणामो । जारिसिया अहव गई मई वि मरणम्मि तारिसिया ॥३१०॥

रुद्दज्झाणोवगओ सुमरंतो वइरभावमणवरयं । मरिऊण समुप्पन्नोऽसुहलेसो वालुयपमाए ॥ ३११ ॥

एत्थंतरम्मि बलभद्दबंधवो बंधुबंधुरसिणेहो । परिपूरिऊण पयसो पोयिणिपुडयं पहपयट्टो ॥ ३१२ ॥

पाइस्सं पाणपियं सीलयमिणमो जलं ति चिंतंतो । न मुणइ मणयं पि जहा विहिविलसियमन्नहा जायं ॥ ३१३ ॥

अवसउणमग्गखलणा नियमणे संकिओ सकम्माण । विवरीयत्तणओ तह तुरियगई तत्थ संपत्तो ॥ ३१४ ॥

पेच्छइ तं तयवत्थं परिसंतो सुयउ ताव मह भाया । पडिबुद्धं पाइस्सं जलं ति संठविय जलपुडयं ॥ ३१५ ॥

जा जोयइ वयणमिमो ता पेच्छइ कसिणमक्खियावरियं । मयगसरूवं नाउं धसक्किओ ताव हिययम्मि ॥ ३१६ ॥

पडिबोहिओ वि कह वि हु जा न पयंपेइ ता मयं नाउं । उम्मुक्कमहानाओ ताव हली रोविउं लग्गो ॥ ३१७ ॥

वाहो वा सुहडो वा जो को वि वणे स होउ मह पुरओ । जेणेस सुहपसुत्तो विद्धो पायम्मि मह भाया ॥ ३१८ ॥

बालं विद्धं समणं नारिं सुत्तं पमत्तमह मत्तं । पहरंति न सप्पुरिसा ता नूण स को वि काउरिसो ॥ ३१९ ॥

ता पयडउ अप्पाणं पोरिसवायं च चत्तमज्जाओ । जेण भडवायजणियं भंजेमि मरट्टमविसेसं ॥ ३२० ॥

हा कन्ह ! कन्ह ! बंधव ! कत्थ गओ ? पसिय देसु पडिवयणं ।
अवरद्धं न कया वि हु तुज्झ मए कह णु मह रुट्ठो ? ॥ ३२१ ॥

पेम्ममकित्तिममेयाणमलियमेयं पि संपयं जायं । अन्नह कह तुह मरणे अहमिह जीवामि निप्पुन्नो ? ॥ ३२२ ॥

एवं वधगतहृदयः पुनरपि जातः क्लिष्टपरिणामः । यादृशाऽथवा गति र्मतिरपि मरणे तादृशा ॥ ३१० ॥

रौद्रध्यानोपगतः स्मरन् वैरभावमनवरतम् । मृत्वा समुत्पन्नोऽशुभलेश्यो वालुकाप्रभायाम् ॥ ३११ ॥

अत्रान्तरे बलभद्रबन्धव र्बन्धुबन्धुरस्नेहः । परिपूर्य पयसः पोमिनिपुटकं पथप्रवृत्तः ॥ ३१२ ॥

पायिष्ये प्राणप्रियं शीतलमेतज्जलमितिचिन्तयन् । न मुणति मनागपि यथा विधिविलसितमन्यथा जातम् ॥ ३१३ ॥

अपशकुनमार्गस्खलनान्निजमनसि शङ्कितः स्वकर्मणः । विपरितत्वात्तथा त्वरितगतिस्तत्र सम्प्राप्तः ॥ ३१४ ॥

प्रेक्षते तं तदवस्थं परिश्रान्तः स्वयतु तावन्मम भ्राता । प्रतिबुद्धं पायिष्ये जलमिति संस्थाप्य जलपुटकम् ॥ ३१५ ॥

यावत्पश्यति वदनमयं तावत्प्रेक्षते कृष्णमक्षिकावृतम् । मृतकस्वरुपं ज्ञात्वा क्षुब्धयस्तावद्धृदये ॥ ३१६ ॥

प्रतिबोधितोऽपि कथमपि खलु यावन्न प्रजल्पतितावन्मृतं ज्ञात्वा । उन्मुक्तमहानादस्तावद्धली रोदितुं लग्नः ॥ ३१७ ॥

व्याधो वा सुभटो वा यः कोऽपि वने स भवतु मम पुरतः । येनैष सुखप्रसुप्तो विद्धः पादे मम भ्राता ॥ ३१८ ॥

बालं वृद्धं श्रमणं नारिं सुप्तं प्रमत्तमथ मत्तम् । प्रहरन्ति न सत्पुरुषास्तावनूनं स कोऽपि कापुरुषः ॥ ३१९ ॥

ततः प्रकटयत्वात्मानं पौरुषवादं च त्यक्तमर्यादः । येन भटवादजनितं भनग्मि गर्वमविशेषम् ॥ ३२० ॥

हा कृष्ण ! कृष्ण ! बन्धव ! क्व गतः ? प्रसीद ददस्व प्रतिवचनम् ।
अपराधं न कदापि खलु तव मया कथं नु मम रुष्टः? ॥ ३२१ ॥

प्रेमाकृत्रिममेतयोरलीकमेतदपि साम्प्रतं जातम् । अन्यथा कथं तव मरणेऽहमिह जीवामि निष्पुण्यः ? ॥ ३२२ ॥

मोडइ हत्थे तोडइ सिरोरुहे भिडइ रुक्खमूलम्मि । ताडइ वच्छं फोडइ महीयलं पण्हिधाएहिं ॥ ३२३ ॥

खणमेगत्थ वियंभइ विस्संभइ तत्थ पासमाल्लियइ । नियदेवमुवालंभइ परिरंभइ मयगकन्हतणुं ॥ ३२४ ॥

उग्गायइ खणमेगं खणमेगं रुयइ हसइ खणमेगं । खणमेगं परिदेवइ वेवइ खणमेगमन्नत्थ ॥ ३२५ ॥

कइया वि मोहवसगो पलवइ असमंजसं असंबद्धं । कइया वि हु वीसत्थो रोवइ सरिऊण गुणनियरं ॥ ३२६ ॥

हा चंदवयण ! हा रूवमयण ! हा कमलपत्तसमनयण ! ।

हा अमयवयण ! हा गरिमगयण ! हा वच्छ ! नररयण ! ॥ ३२७ ॥

हा पुहइवीर ! हा वसणधीर ! हा सगरसुहडसोडीर ! । हा भुवणमल्ल ! हा वइरिसल्ल ! हा तुंगिममहल्ल ! ॥ ३२८ ॥

रूवं सोहग्ग वा लावन्नं वा पियंवइत्तं वा । सोजन्नं दक्खिन्नं पुन्नमपेसुन्ननेउन्नं ॥ ३२९ ॥

चायं नायं वायं अविसंवायं विसिट्ठसमवायं । गुणमणिरोहण ! रोएमि कं गुणं तुहमहमहन्नो ? ॥ ३३० ॥

अज्ज वि जीवइ रुट्ठो त्ति मुणिय परिभमइ जाव छम्मासे । खंधारोवियमडओ वणमज्झे मोहवसवत्ती ॥ ३३१ ॥

जाणंतो वि हु भुल्लो अहह ! महामोहविलसियमपुव्वं । दढमवियाणिय मज्झं जेण नडिज्जंति गरुया वि ॥ ३३२ ॥

आह च-

विविच्य बाधाः प्रभवन्ति यत्र, ... मिथ्यामतयश्चरन्ति ।

संसारमोहस्त्वयमन्य एव, दिग्मोहवत् तत्त्वधिया सहाऽऽस्ते ॥ ३३३ ॥

अपरं च केनचिदनक्षैर्युक्तममुष्मै नमस्कृतम्-

कृच्छ्राद् ब्रह्मेन्द्रभूतेरजनि परमितः स्थूलभद्रो विकारं, मुञ्चत्यश्रूण्यजस्रं मणकमृतिविधौ पश्य सेज्जम्भवोऽपि ।

षण्मासान् स्कन्धदेशे शबमवहदसौ हन्त ! रामोऽपि यस्मादित्थं यश्चित्ररूपो भवतु भुवि नमो मोहराजाय तस्मै ॥ ३३४ ॥

मोटयति हस्तयोस्त्रोटयति शिरोरुहान्नाक्रामति वृक्षमूले । ताडयति वक्षस्स्फोटयति महीतलं पार्ष्णिघातैः ॥ ३२३ ॥

क्षणमेकत्र विजृम्भति विश्रम्भति तत्र पार्श्वमालीनाति । निजदेवमुपालम्भति परिरम्भति मृतककृष्णतनुः ॥ ३२४ ॥

उद्गायति क्षणमेकं क्षणमेकं रोदिति हसति क्षणमेकम् । क्षणमेकं परिदेवयति वेपति क्षणमेकमन्यत्र ॥ ३२५ ॥

कदापि मोहवशगः प्रलपत्यसमञ्जसमसम्बद्धम् । कदापि हु विश्वस्तो रोदिति स्मृत्वा गुणनिकरम् ॥ ३२६ ॥

हा चन्द्रवदन ! हा रुपदमन ! हा कमलपत्रसमनयन ! ।

हा अमृतवदन ! हा गरिमगगन ! हा वत्स ! नररत्न ! ॥ ३२७ ॥

हा पृथिवीवीर ! हा व्यसनधीर ! हा समरसुभटसौण्डिर ! । हा भुवनमल्ल ! हा वैरिशल्य ! हा तुङ्गिममहन् ! ॥ ३२८ ॥

रुपं सौभाग्यं वा लावण्यं वा प्रियंवदित्वं वा । सौजन्यं दाक्षिण्यं पुण्यमपैशुन्यनैपूण्यम् ॥ ३२९ ॥

त्यागं न्यायं वादमविसंवादं विशिष्टसमवायम् । गुणमणिरोहण ! रोदिमि कं गुणं तवाहमधन्यः ? ॥ ३३० ॥

अद्यापि जीवति रुष्ट इति मुणित्वा परिभ्रमति यावच्छण्मासान् । स्कन्धारोपितमृतको वनमध्ये मोहवशवर्त्ती ॥ ३३१ ॥

जानन्नपि हु विस्मृतोऽहह ! महामोहविलसितमपूर्वम् । दृढमविज्ञाय मद्यं येन नाट्यन्ते गुरुका अपि ॥ ३३२ ॥

जह गिरिवरग्गरहचडणरूव-चिरमयगगाविचारणओ । दवदड्ढरुक्खसिंचण-सिलपउमिणिरोवणपयारा ॥३३५॥
रमणीयरमणिकन्हावहारसिढिलियसिहेणबंधणओ । संबुद्धरामकयकन्हकायसक्कारकरणेण ॥ ३३६ ॥
संकेयसहियपव्वइयपत्तसुरलोयदेवरूवेण । सिद्धत्थनिययसारहिजिएण पडिबोहिओ य जहा ॥ ३३७ ॥
तवलद्धिसहियजिणनेमिपहिय चारणसमीवपव्वइओ । जह विहियविविहतव-चरणपत्तमाहप्पगुणवसओ ॥३३८॥
पडिबुद्धसीह-सद्दूल-हरिणवणसत्तसंघपरियरिओ । गुणविम्हियवणयरलोयदिट्ठिपीऊसविट्ठिसमो ॥ ३३९ ॥
पारणयदिवससंपत्तसीमसवियारनारिदंसणओ । तक्खणनियत्तवणमज्झपत्ततणुवित्तिकयनियमो ॥ ३४० ॥
अह हरिणकहियरहयारपासभिक्खानिमित्तमभिपत्तो । जह अद्धछिन्नतरुपडणअप्पतिगपत्तसुहमरणो ॥ ३४१ ॥
जह बंभलोयवरकप्पपत्तपंचप्पयारविसयसुहो । तत्तो चविऊण जहा सिज्झिस्सइ कन्हतित्थम्मि ॥ ३४२ ॥
तह तच्चरियपवंचियवित्थरनिउणाओ समयसिद्धाओ । हरिवंसाओ नेयं इह पुण संखेवओ भणियं ॥ ३४३ ॥

॥ यादवाख्यानकं समाप्तम् ॥ ११० ॥

इदानीं मित्राणन्दकथानकस्यावसर; तच्च भावभट्टिकाख्यानके भणितमिति ।

एएहिं बुद्धिमंतेहिं सत्तमंतेहिं उज्जमपरेहिं । तह वि न खलियं एयं एवं दुजयं इमं दइवं ॥ १ ॥

दंष्ट्राकरालवदनं हरिमप्यजन्ति, मत्तं करीन्द्रमपि वीरधियो धरन्ति ।
कल्लोलसङ्कुलमपांपतिमापिबन्ति, दैवं बृहस्पतिधियोऽपि न वारयन्ति ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचित्तवृत्तावाख्यानकमणिकोशेऽशक्यदैवनिवारणप्रतिपादनपरः सप्तत्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३७ ॥

यथा गिरिवराग्ररथारोहणरुप-चिरमृतकगोचारणतः । दवदग्धवृक्षसिञ्चन-शिलापद्मिनिरोपणप्रकारात् ॥ ३३५ ॥
रमणीयरमणिकृष्णापहारशिथिलितस्नेहबन्धनतः । सम्बुद्धरामकृतकृष्णकायसत्कारकरणेन ॥ ३३६ ॥
सङ्केतसहितप्रव्रजितप्राप्तसुरलोकदेवरुपेण । सिद्धार्थनिजसारथिजीवेन प्रतिबोधितश्च यथा ॥ ३३७
तपोलब्धिसहितजिननेमिप्रथितचारणसमीपप्रव्रजितः । यथा विहितविविधतपश्चरणप्राप्तमाहात्म्यगुणवशात् ॥ ३३८ ॥
प्रतिबुद्धसिंह-शार्दूल-हरिणवनसत्त्वसङ्घपरिवारितः । गुणविस्मितवनचरलोकदृष्टिपीयूषवृष्टिसमः ॥ ३३९ ॥
पारणकदिवससम्प्राप्तसीमासविकारनारिदर्शनतः । तत्क्षणनिवर्तवनमध्यप्राप्ततनुवृत्तिकृतनियमः ॥ ३४० ॥
यथा हरिणकथितरथकारपार्श्वभिक्षानिमित्तमभिप्राप्तः । यथाऽर्धछिन्नतरुपतनात्मत्रिकप्राप्तशुभमरणः ॥ ३४१ ॥
यथा ब्रह्मलोकवरकल्पप्राप्तपञ्चप्रकारविषयसुखः । ततश्च्युत्वा यथा सेत्स्यति कृष्णतीर्थे ॥ ३४२ ॥
तथा तच्चरित्रप्रपञ्चितविस्तारनिपूणात्समयसिद्धात् । हरिवंशाज्ज्ञेयमिह पुनः संक्षेपतो भणितम् ॥ ३४३ ॥

॥ यादवाख्यानकंसमाप्तम् ॥ ११० ॥

एतैर्बुद्धिमद्भिः सत्त्ववद्भिरुद्यमपरैः ।
तथापि न स्खलितमेतदेवं दुर्जयमिदं दैवम् ॥ १ ॥

[३८. नष्टमृतरोदनादिनैरर्थक्याधिकारः]

प्राग् दैवमस्खलितप्र[१]तापमभिहितम् । साम्प्रतम् 'एतद्वशगानां स्वजनादौ मृते रोदनाद्यपार्थकम्' इत्येतदभिधीयते ।

तद्यथा-

रुन्नेण सोइएण य कालग्घत्थो न एइ इह बंधू ।
भरहो सगरो रामो पउमो एत्थं उदाहरणा ॥ ॥

अस्या व्याख्या - 'रुदितेन' अश्रुविमोचनेन 'शोचितेन च' मानसाशुभव्यापारेण 'कालग्रस्तः' कृतान्तकोडीकृतः 'न' नैव "इह" त्ति आयाति 'इह' अस्मिन् लोके 'बन्धुः' स्वजनः । दृष्टान्तानाह - 'भरतः' प्रथमचक्रवर्ती, 'सगरः' द्वितीयचक्रवर्ती, 'रामः' बलदेवः, 'पद्मः' लक्ष्मणबृहद्भ्राता "एत्थं" ति अत्रार्थे 'उदाहरणानि' दृष्टान्ता इति गाथासमासार्थः ॥ः व्यासार्थस्त्वाख्यानकैराह ।

तानि चामूनि । तत्रापि क्रमायातं प्रथमं किञ्चिद् भरताख्यानकमाख्यायते-

इह जइया किर भयवइ रिसहजिणिंदे जुगाइजिणवसभे । तिहुयणलग्गणखंभे अट्ठावयपव्वए सिद्धे ॥ १ ॥
संपइ भयवं ! सम्मग्गगमणखलणेक्कपच्चलो भुवणे । पसरिस्सइ तमपसरो अदिट्ठपरमत्थसब्भावो ॥ २ ॥
वियरिस्सइ अक्खलिओ कुस्सुइ-कुदिट्ठिपंसुलीसत्थो । तमसा अपस्समाणे जणनिवहे सुइसमाचारो ॥ ३ ॥

भरताख्यानकम् ॥ १११ ॥

इह यदा किल भगवति ऋषभजिनेन्द्रे युगादिजिनवृषभे । त्रिभुवनलग्नस्तम्भेऽष्टापदपर्वते सिद्धे ॥ १ ॥
सम्प्रति भगवन् ! सन्मार्गगमनस्खलनैकसमर्थो भुवने । प्रसरिष्यति तमः प्रसरोऽदृष्टपरमार्थसद्भावः ॥ २ ॥
वितरिष्यत्यस्खलितः कुश्रुति-कुदृष्टि-पांसुलीसार्थः । तमसाऽपश्यति जननिवहे शुचिसमाचारः ॥ ३ ॥

---

१. प्रभावममि. रं. ।

वीसुं पि वियंभिस्सइ कुनयपवतियकुवाइधूयगणो । केवलकिरणुस्सारियतमम्मि तइ पवसिए सूरे ॥ ४ ॥

वग्गिस्संति जगवणे परतित्थियकसिणमयगलकुलाइं । सियवायदाढदुसहे भयवं ! तइ पवसिए सिंहे ॥ ५ ॥

एवं बहुप्पयारं परिनिव्वाए जिणे जयपईवे । सयलं पि जयं तमसा अप्फुन्नमिणं ति मुणिऊणं ॥ ६ ॥

आणंद-सोयवसओ संकिन्नरसं समुव्वहंतेण । विबुहाहिवेण विहिओ जया महंतो मणे खेओ ॥ ७ ॥

हा भुवणुत्तम ! हा भुवणनाह ! हा भुवणबंधव ! सरन्न ! ।हा भुवणच्चिय ! हा भुवणधीर ! हा भुवणनररयण !॥८॥

हा भुवणुज्जल ! हा भुवणवीर ! हा भुवणवल्लह ! जिणिंद ! ।तुमए गुणमणिनिहिणा विवज्जियं सामिसालेण ॥९॥

जायमणाहं भुवणं कंदंतो संगयं ससोगमणो । जाओ जहत्थनामो सक्को संकंदणो जइया ॥ १० ॥

तइया किर भरहो वि हु सोयसमुप्फुन्नमाणसो सययं । नियजणयमरणदुहिओ अव्वत्तसरं रुयइ हियए ॥ ११ ॥

न मुणइ जह रोइज्जइ लोयम्मि मयम्मि वल्लहजणम्मि । ता निबिडसोयगंठी जाओ भरहस्स हिययम्मि ॥ १२ ॥

चिंतइ सुरनाहो वि हु मा पीडिज्जउ इमो महापुरिसो । मुक्को धाहासद्दो भरहस्स विलग्गिउं कंठे ॥ १३ ॥

भरहेसरो वि महया सद्देण तहेव रोविउं लग्गो । सव्वजणो वि हु एवं रोवइ तइया दुहाभिहओ ॥ १४ ॥

ससुरिंदेण वि भरहेण रोविए न य नियत्तिओ ताओ । ता किं इमिणा भावह निरत्थएणं परुन्नेणं ? ॥ १५ ॥

॥ इति भरताख्यानकं समाप्तम् ॥ १११ ॥

विश्वगपि विजृम्भिष्यति कुनयप्रवर्तितकुवादिधूकगणः । केवलकिरणोत्सारिततमसि तदा प्रवसिते सूर्ये ॥ ४ ॥

वल्गिष्यन्ति जगद्वने परतीर्थिककृष्णमदगलकुलानि । सितवाददंष्ट्रादुःषहे भगवन् ! त्वयि प्रवसिते सिंहे ॥ ५ ॥

एवं बहुप्रकारं परिनिर्वाते जिने जगत्प्रदीपे । सकलमपि जगत्तमसाऽऽपूर्णमिदमिति मुणित्वा ॥ ६ ॥

आनन्द-शोकवशात् सङ्कीर्णरसं समुद्वहता । विबुधाधिपेन विहितो यदा महान्मनसि खेदः ॥ ७ ॥

हा भुवनोत्तम ! हा भुवननाथ ! हा भुवनबन्धव ! शरण्य ! । हा भुवनार्चित ! हा भुवनधीर ! हा भुवननररत्न ! ॥ ८ ॥

हा भुवनोज्वल ! हा भुवनवीर ! हा भुवनवल्लभ ! जिनेन्द्र ! । त्वया गुणमणिनिधिना विवर्जितं स्वामिशालेन ॥ ९ ॥

जातमनाथं भुवनं क्रन्दन् संगतं सशोकमनाः । जातो यथार्थनामा शक्रः सक्रन्दनो यदा ॥ १० ॥

तदा किल भरतोऽपि हु शोकसमुत्पूर्णमानसः सततम् । निजजनकमरणदुःखितोऽव्यक्तस्वरं रोदिति हृदये ॥ ११ ॥

न मुणति यथा रुद्यते लोके मृते वल्लभजने । ततो निबिडशोकग्रन्थि र्जातो भरतस्य हृदये ॥ १२ ॥

चिन्तयति सुरनाथोऽपि हु मा पीड्यतामयं महापुरुषः । मुक्तः पुत्कारशब्दो भरतस्य विलग्य कण्ठे ॥ १३ ॥

भरतेश्वरोऽपि महता शब्देन तथैव रोदितुं लग्नः । सर्वजनोऽपि खल्वेवं रोदिति तदा दुःखाभिहतः ॥ १४ ॥

ससुरेन्द्रेणापि भरतेन रुदिति न च निवर्तितस्तातः । ततः किमनेन भावयत निरर्थकेन प्ररुदितेन ? ॥ १५ ॥

॥ इति भरताख्यानकं समाप्तम् ॥ १११ ॥

अधुना सगराख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

वज्जहररज्जपयवि व्व गोरिगीयावसत्तहरिणि व्व । कामियणसुरयकिरिय व्व सुइसमायारसेणि व्व ॥ १ ॥

पायालनिलयलच्छि व्व जा निरायंसुरामनायरया । भुवणत्तयविक्खाया अत्थि अउज्झाभिहाणपुरी ॥ २ ॥

साहियछखंडभरहो अइसयसंपुन्ननवनिहाणवई । मउडविभूसियबत्तीससहसनरनाहनमियकमो ॥ ३ ॥

रूवाइगुणविणिज्जियसुररमणीणं विसिट्ठिविलयाणं । चउसट्ठिसहस्साणं भत्ता भुवणब्भहियमहिमो ॥ ४ ॥

नाहो हय-रहवर-गयवराण चुलसीइसस्यसहस्साणं । चउदसरयणाहिवई तं पालइ सयरचक्कवई ॥ ५ ॥

तस्स य समकुमराणं रूयविणिज्जियजयंतकुमराणं । गंजियरिउसमराणं जिणिंदपयपउमभमराणं ॥ ६ ॥

निरुवमनररयणाणं सट्ठिसहस्साणि सुंदरसुयाणं । अवरं पि हु अच्चब्भु (यभू) यं सव्वं पि चक्किसुहं ॥ ७ ॥

अह अन्नया कुमारेहिं नियपिया (स) विणएहिं विन्नविओ । ताय ! तुह रिद्धिसहिया परिक्कमामो पुहईवीढे ॥ ८ ॥

ससिणेहमणुन्नाए मणुन्ननरवइसिरीए दिप्पंता । वियरंता संपत्ता अट्ठावयपव्वयं कुमरा ॥ ९ ॥

पेरंतपयडकडओ विविहविरायन्ततुरय-गयगमणो । विलसंतसेयचमरो गिरिमाकलिउं नरवइ व्व ॥ १० ॥

सूरो व्व सुद्धवंसो विचित्तवणराइरेहिरसरीरो । पयडसमुन्नपयाओ अट्ठावयपव्वओ दिट्ठो ॥ ११ ॥

सेन्नं निवेसिऊणं तलम्मि तच्चंगिमं नियच्छंता । उवरिमभाए चडिया पए पए कोउगऽक्खित्ता ॥ १२ ॥

दिट्ठं पव्वयसिहरं सुरसयणसमन्नियं मयप्पवरं । महुपाइकुलं व पडिक्खलंतपयचाररमणीयं ॥ १३ ॥

सगराख्यानकम् ॥ ११२ ॥

वज्रधरराज्यपदवीव गौरिगीतावसक्तहरिणीव । कामिजनसुरतक्रियेव शुचिसमाचारश्रेणिरिव ॥ १ ॥

पातालनिलयलक्ष्मीरिव या निरागाश्रुरामनागरका । भुवनत्रयविख्याताऽस्त्ययोध्याभिधानपुरी ॥ २ ॥

साधितषट्खण्डभरतोऽतिशय संपूर्णनवनिधानपतिः । मुकुटविभूषितद्वात्रिंशत्सहस्रनरनाथनतक्रमः ॥ ३ ॥

रुपादिगुणविनिर्जितसुररमणीनां विशिष्टवनितानाम् । चतुःषष्ठिसहस्राणां भर्ता भुवनाभ्यधिकमहिमा ॥ ४ ॥

नाथो हय-रथवर-गजवराणां चतुरशीतिशतसहस्राणाम् । चतुर्दशरत्नाधिपतिस्तं पालयति सगरचक्रवर्ती ॥ ५ ॥

तस्य च समकुमाराणां रुपविनिर्जितजयन्तकुमाराणाम् । पराजितरिपुसमराणां जिनेन्द्रपदपद्मभ्रमराणाम् ॥ ६ ॥

निरुपमनररत्नानां षष्ठिसहस्राणि सुन्दरसुतानाम् । अपरमपि खल्वाश्यर्यभूतं सर्वमपि चक्रिसुखम् ॥ ७ ॥

अथान्यदा कुमारै र्निजपिता सविनयैर्विज्ञापितः । तात ! तवर्धिसहिताः परिक्रमामः पृथिवीपीठे ॥ ८ ॥

सस्नेहमनुज्ञाते मनोज्ञनरपतिश्रिया दीप्यन्तः । विचरन्तः सम्प्राप्ता अष्टापदपर्वतं कुमाराः ॥ ९ ॥

प्रेरयन्प्रकटकटको विविधविराजमानतुरग-गजगमनः । विलसच्छ्वेतचमरो गिरिमाकल्यनरपतिरिव ॥ १० ॥

शूर इव शुद्धवंशो विचित्रवनराजिराजमानशरीरः । प्रकटसमुन्नतपादोऽष्टापदपर्वतो दृष्टः ॥ ११ ।

सैन्यं निवेश्य तले तच्चङ्गिमां पश्यन्तः । उपरिमभाग मारुढाः पदे पदे कौतूकाक्षिप्ताः ॥ १२ ॥

दृष्टं पर्वतशिखरं सुरस्वजनसमन्वितं मदप्रवरम् । मधुपायिकुलमिव प्रतिस्खलत्पदचाररमणीयम् ॥ १३ ॥

जत्थिदनीलमणिमयकुट्टिमतलभूमिमज्झसंकंतो । उडुनियरो जणइ जणस्स धरणिगयगयणआसंकं ॥ १४ ॥

विलिहियगयणंगणतुंगसिहरसयसन्निरुद्धगहमग्गं । पव्वयचंगिमदंसणसंपत्तं सुरविमाणं व ॥ १५ ॥

विरइय (वियरइ) विसंकमित्तो धणओ इव विहियउत्तरासंगो ।

पयडियपुप्फविमाणो विरायए जत्थ सुरविसरो ॥ १६ ॥

वन्नप्पमाणसंगयविमाणदिप्पंतदेवपडिमहरं । सग्गं व जियाययणं नियंति निरुवद्दवं तत्थ ॥ १७ ॥

उसभाइजिणेसरपडिमदंसणुप्पन्नपयडरोमंच । पणमित्तु भावसारं एवं थोउं समाढत्ता ॥ १८ ॥

चक्कंकुसकलक्खणु, भुवणविलक्खणु, पक्खालियबहुपावमलु ।

चउवीसजिणिंदहं, पणयसुरिंदहं, पणमिवि भत्तिए पयकमलु ॥ १९ ॥

अट्ठावयपव्वयसेहराहं, भरहेसरकारियजिणवराहं ।

जसु जेतिउ जिणह पमाणु वन्नु तं पभणहुं निसुणहु देवि कन्नु ॥ २० ॥

धणुसयइं पंच सिरिरिसहसामि, वरकणयकंति करिलीलगामि ।

धणुसय चियारि पंचासअहिय, कणयप्पहि अजियजिणिंद कहिय ॥ २१ ॥

संभवह जिणिंदह सय चियारि, उच्चत कणयवन्नह वियारि ।

आहुट्ठसयइ धणुहहं पमाणु, हेमाभह अभिनंदणह जाणु ॥ २२ ॥

यत्रेन्द्रनीलमणिमयकुट्टिमतलभूमिमध्यसङ्क्रान्तः । ऊडुनिकरो जनयति जनस्य धरणिगतगगनाशङ्काम् ॥ १४ ॥

विलिखितगगनाङ्गणतुङ्गशिखरशतसन्निरुद्धग्रहमार्गम् । पर्वतचङ्गिमादर्शनसम्प्राप्तं सुरविमानमिव ॥ १५ ॥

वितरति विशङ्कमितो धनद इव विहितोत्तरासङ्गः ।

प्रकटितपुष्पविमानो विराजति यत्र सुरविसरः ॥ १६ ॥

वर्णप्रमाणसङ्गतविमानदीप्यमानदेवप्रतिमागृहम् । स्वर्गमिव जिनायतनं पश्यन्ति निरुपद्रवं तत्र ॥ १७ ॥

ऋषभादिजिनेश्वरप्रतिमादर्शनोत्पन्नप्रकटरोमाञ्चाः । प्रणम्य भावसारमेवं स्तोतुं समारब्धाः ॥ १८ ॥

चक्राङ्कुशलक्षणं भुवनविलक्षणं प्रक्षालितबहुपापमलम् ।

चतुर्विंशतिजिनेन्द्रस्य प्रणतसुरेन्द्रस्य प्रणम्य भक्त्या पदकमलम् ॥ १९ ॥

अष्टापदपर्वतशेखरस्य भरतेश्वरकारितजिनवरस्य ।

यस्य यावज्जिनस्य प्रमाणं वर्णं तं प्रभणामो निशृणुत दत्वा कर्णम् ॥ २० ॥

धनुःशतानि पञ्च श्रीऋषभस्वामी, वरकनककान्तिः करिलीलागामी ।

धनुःशत चत्वारि पञ्चाशदधिकः कनकप्रभोऽजितजिनेन्द्रः कथितः ॥ २१ ॥

सम्भवस्य जिनेन्द्रस्य शतचत्वारि, उच्चत्वकनकवर्णस्य विचारी ।

अर्धतृतीयशतानि धनुषः प्रमाणं, हेमाभस्याभिन्दनस्य जानीहि ॥ २२ ॥

सय तिन्नि सुमइपरमेसरहो, उत्तत्तकणयतणुभासुरहो। निम्मलपवालजुइसुप्पहस्स, अड्डाइय सय पउमप्पहस्स ॥२३॥

दुइ धणुसय आसि सुपाससामि, तणविज्जवन्नु सिवनयरगामि।

चंदप्पहु जिणवरु चंदछाउ, धणुसउ, दिवड्ढु तसु तणउ काउ ॥ २४ ॥

जिण सुविहि संखतलविमलदेहु, सो धणुसउ एक्कु गुणोहगेहु।

जिण धणुह नउइ सीयलसनामु, तवणीयवन्नु निम्महियकामु ॥ २५ ॥

सेयंसु सुवन्नसवन्नकंति, धणुहहं असीइ तसु तणु कहंति।

रत्तुप्पलरत्तु सुरिंदपुज्जु, सत्तरि धणुहहं सिरिवासुपुज्जु ॥ २६ ॥

जिणु विमलु विमलकरु कणयवन्नु, सो सट्ठिधणुह सिवपहपवन्नु।

पंचासधणुह जिणवरु अणंतु, कुलभवणु सिरिहि कलहोयकंतु ॥ २७ ॥

सिरिधम्मु धम्मधुरधरणधीरु, पयपालधणुहमज्जुणसरीरु।

सिरिसंतिजिणह चालीस आसि, जो हेमवन्नु सिवनयरिवासि ॥ २८ ॥

पणतीस कुंथुजिण हेमभासु, जिं सासयसिवपुरि पत्तु वासु।

अरु कणयवन्नु धणुहरहं तीस, जसु पणमहिं पाय सुरासुरीस ॥ २९ ॥

शतत्रिणि सुमतिपरमेश्वरस्योत्तप्तकनकतनुभासुरस्य। निर्मलप्रवालद्युतिसुप्रभस्य द्व्यार्धं शतं पद्मप्रभस्य ॥ २३ ॥

द्वे धनुःशतमासीत् सुपार्श्वस्वामी, तपनीयवर्णः शिवनगरगामी।

चन्द्रप्रभो जिनवरश्चन्द्रच्छायो धनुशतद्व्यार्धं तस्य तनुः कायः ॥ २४ ॥

जिनःसुविधिः शङ्खतलविमलदेहः स धनुशतमेकं गुणौघगेहम्।

जिनो धनुषो नवति शीतलसनामा, तपनीयवर्णो निर्मथितकामः ॥ २५ ॥

श्रेयांसः सुवर्णसवर्णकान्तिः, धनुषोऽशीतिस्तस्य तनुः कथयन्ति।

रक्तोत्पलरक्तः सुरेन्द्रपूज्यः सप्तति धनुषः श्रीवासुपूज्यः ॥ २६ ॥

जिनो विमलो विमलकरः कनकवर्णः स षष्ठिधनुषः शिवपथप्रपन्नः।

पञ्चाशद्धनुषो जिनवरोऽनन्तः कुलभवनः श्रियाः कलधौतकान्तिः ॥ २७ ॥

श्रीधर्मो धर्मधुरधरणधीरः पञ्चचत्त्वारिंशद्धनुषोऽर्जुन शरीरः।

श्री शान्तिजिनस्य चत्वारिंशदासीद्यो हेमवर्णः शिवनगरीवासी ॥ २८ ॥

पञ्चत्रिंशत् कुन्थुजिनो हेमभास, इव शाश्वतशिवपुरिप्राप्तवासः।

अरः कनकवर्णो धनुषस्त्रिंशद्यस्य प्रणमन्ति पादं सुरासुरीशाः ॥ २९ ॥

नीलुप्पलसामलु मल्लिनाहु, पणुवीसधणुह केवलसणाहु ।

मुणिसुव्वउ सुव्वउ साममुत्ति, सो वीसधणुह वज्जरिय सुत्ति ॥ ३० ॥

पन्नरसधणुह नमिजिणवरासु, तवणीयतणुहु पणयामरासु ।

घणकज्जलसामलु रिट्ठनेमि, दसधणुह धम्मवरचक्कनेमि ॥ ३१ ॥

मरगयसवन्नु तित्थयरु पासु, नवहत्थ विणिद्धुयकम्मपासु ।

कणयाभु सत्तरयणीपमाणु, सिद्धत्थह नंदणु वद्धमाणु ॥ ३२ ॥

इय निरुवमसासण, भुवणपयासण, जो नरु भत्तिए संथवइ ।

चउवीस वि जिणवर, सिवसिरिवहुवर, सो संसारि न संभमइ ॥ ३३ ॥

एवं थोउं जिणहरगिरिवरगयचंगिमाहरियहियया । पुच्छंति मंतिवग्गं सप्पणयं ते पयत्तेण ॥ ३४ ॥

केण इमं जिणभवणं कारवियं सुकयकम्मुणा सुहयं ? तेण वि कहियं जह किर नियजणयसयासओ सोउं ॥३५॥

जिणभवणविहाणफलं कारवियं भरहचक्किणा एयं । तेहिं वि भणियं जोयह एयारिसपव्वयं रम्मं ॥ ३६ ॥

जेणं अम्हे जिणभवणमेरिसं मणहरं करावेमो । तेहिं वि तारिसयगिरी गवेसिओ वि हु महीवीढे ॥ ३७ ॥

जा कह वि नोवलद्धो ता भणियमिमस्स चेव काहामो । रक्खाविहाणमणहं जेण महागुणमिमं पि जओ ॥ ३८ ॥

जिन्नाणं सिन्नाणं भट्ठाण महाफलं समुद्धरणे । समए चिरंतणाणं दंसियमन्नच्चाणं पि ॥ ३९ ॥

नीलोत्पलश्यामलो मल्लीनाथः पञ्चविंशधनुषः केवलसनाथः ।

मुनिसुव्रतः सुव्रतः श्याममूर्तिः स विंशतिधनुः कथितश्रुतिः ॥ ३० ॥

पञ्चदशधनुषो नमिजिनवरस्य तपनीयतनोः प्रणतामरस्य ।

घनकज्जलशयामलो रिष्टनेमि दशधनुषो धर्मवरचक्रनेमिः ॥ ३१ ॥

मरकतसवर्णस्तीर्थकरः पार्श्वो नवहस्तो विनिधूतकर्मपाशः ।

कनकाभः सप्तरत्निप्रमाणः सिद्धार्थस्य नन्दनो वर्धमानः ॥ ३२ ॥

इति निरुपमशासनं भुवनप्रकाशनं यो नरो भक्त्या संस्तौति ।

चतुर्विंशतिरपि जिनवरान् शिवश्रीवधुवरान्, स संसारे न सम्भ्रमति ॥ ३३ ॥

एवं स्तुत्वा जिनगृहगिरिवरगतचङ्गिमाहृतहृदयाः । पृच्छन्ति मन्त्रिवर्गं सप्रणयं ते प्रयत्नेन ॥ ३४ ॥

केनेदं जिनभवनं कारितं सुकृतकर्मणा सुभगम् ? । तेनापि कथितं यथा किल निजजनकसकाशाच्छ्रुत्वा ॥ ३५ ॥

जिनभवनविधानफलं कारितं भरतचक्रिणैतद् । तैरपि भणितं पश्यतेदृशपर्वतं रम्यम् ॥ ३६ ॥

येन वयं जिनभवनमीदृशं मनोहरं कारयामः । तैरपि तादृशगिरि र्गवेषितोऽपि हु महीपीठे ॥ ३७ ॥

यावत्कथमपि नोपलब्धस्तावद्भणितमेतस्य चैव करिष्यामः । रक्षाविधानमनघं येन महागुणमिदमपि यतः ॥ ३८ ॥

जीर्णानां शीर्णानां भ्रष्टानां महाफलं समुद्धरणे । समये चिरन्तनानां दर्शितमनर्चितानामपि ॥ ३९ ॥

तत्तो वड्डइयरयणेण छिंदिउं जोयणप्पमाणाओ । पइयाओ दुरारोहाओ भाविमणुयाण विहियाओ ॥ ४० ॥

चउपासेसुं जोयणसहस्समाणा खणाविया परिहा । जिणभवणरक्खणट्ठा विसुद्धचित्तेहिं कुमरेहिं ॥ ४१ ॥

जाओ भवणवईणं भवणेसु उवद्दवो तओ रुट्ठो । जलणप्पहाभिहाणो अग्गिकुमारो गुरुपभावो ॥ ४२ ॥

आगंतूणं भणिया भो पावा ! किं समायरियमेयं ? अहवा दुन्नयकरणाणं तुम्ह समुवट्ठियं मरणं ॥ ४३ ॥

तो जन्हुकुमारेणं मा रूस सुभद्द ! जिणहरस्स कए । कयमेयं ति सविणयं खमाविओ सो गओ ठाणं ॥ ४४ ॥

भवियव्वयानिओगे तेसिं चिंता पुणो इमा जाया । अइसोहणा वि परिहा जलरहिया सोहइ न एसा ॥ ४५ ॥

तो सारणिं विहेउं गंगानीरप्पवाहमाणेउं । परिपूरिया समंता पत्तं नीरं असुरभवणे ॥ ४६ ॥

तो जलणप्पहअमरेण नीरभरपूरिए नियवभवणे । रुसिऊण नेत्तजलणेण भासरासीकया कुमरा ॥ ४७ ॥

तत्तो दइववसेणं तेसिमकंडम्मि तारिसे जाए । किंकायव्वविमूढो परिवारो कंदिउं लग्गो ॥ ४८ ॥

अवरोह-मंति-सामंतपभिइणोऽसज्झदुहभरक्कंता । हाहारवमुहलदिसा सव्वे वि हु पलविउं लग्गा ॥ ४९ ॥

हा रूव-कंति-विन्नाण-नाण-लायन्नरयणजलनिहिणो ? । कत्थ गया सव्वे वि हु मोत्तुमणाहे समगमम्हे ? ॥ ५० ॥

अम्हे अक्खयदेहा कुमरा सव्वे वि जममुहं पत्ता । एरिसमकंतवयणं को णु कहिस्सइ पुरो रन्नो ? ॥ ५१ ॥

एत्थेव ता मरामो निब्भग्गा किं गया करिस्सामो ? । इय कयनिच्छयहियया तया चियाओ रयावेंति ॥ ५२ ॥

दट्ठूणं तं वइयरमेगेण दिएण चिंतियं तमिमं । मूढाण विलसियमिमा किमणत्थपरंपरा अवरा ? ॥ ५३ ॥

ततो वार्धकिरत्नेन छित्वा योजनप्रमाणाः । पदिका दुरारोहा भाविमनुष्याणां विहिताः ॥ ४० ॥

चतुःपार्श्वयो र्योजनसहस्रमाणा खानिता परिखा । जिनभवनरक्षणार्था विशुद्धचित्तैः कुमारैः ॥ ४१ ॥

जातो भवनपतीनां भवनेषूपद्रवस्ततो रुष्टः । ज्वलनप्रभाभिधानोऽग्निकुमारो गुरुप्रभावः ॥ ४२ ॥

आगत्य भणिता भो पापाः ! किं समाचरितमेतद् ? । अथवा दुर्नयकरणानां युष्माकं समुपस्थितं मरणम् ॥ ४३ ॥

ततो जह्नुकुमारेण मा रुष्य सुभद्र ! जिनगृहस्य कृते । कृतमेतदिति सविनयं क्षामितः सः गतःस्थानम् ॥ ४४ ॥

भवितव्यतानियोगात्तेषां चिन्ता पुनरिमा जाता । अतिशोभनापि परिखा जलरहिता शोभते नैषा ॥ ४५ ॥

ततः सारणिं विधाय गङ्गानीरप्रवाहमानीय । परिपूरिता समन्तात्प्राप्तं नीरमसुरभवने ॥ ४६ ॥

ततो ज्वलनप्रभामरेण नीरभरपूरिते निजकभवने । रुष्ट्वा नेत्रज्वलनेन भस्मराशीकृताः कुमाराः ॥ ४७ ॥

ततो दैववशेन तेषामकाण्डे तादृशे जाते । किं कर्तव्यविमूढः परिवारः क्रन्दितुं लग्नः ॥ ४८ ॥

अन्तःपुर-मन्त्रि-सामन्तप्रभृतयोऽसाध्यदुःखभराक्रान्ताः । हाहारवमुखरदिशः सर्वेऽपि हु प्रलपितुं लग्नाः ॥ ४९ ॥

हा रुप-कान्ति-विज्ञान-ज्ञान-लावण्यरत्नजलनिधयः ? । क्व गताः सर्वेऽपि हु मुक्त्वानाथान् समकमस्मान् ? ॥ ५० ॥

वयमक्षयदेहाः कुमाराः सर्वेऽपि यममुखं प्राप्ताः । ईदृशमकान्तवचनं को नु कथयिष्यति पुरो राज्ञः ? ॥ ५१ ॥

अत्रैव तावन्म्रियामहे निर्भाग्याः किं गताः करिष्यामः ? । इति कृतनिश्चयहृदयास्तदा चिता रचयन्ति ॥ ५२ ॥

दृष्ट्वा तं व्यतीकरमेकेन द्विजेन चिन्तितं तदिमम् । मूढानां विलसितमिमा किमनर्थपरम्पराऽपरा ? ॥ ५३ ॥

पभणइ भट्टो भद्दा ! तुब्भे वि हु मा निरत्थयं मरह । मा भवउ उवरि गंडस्स फोडया तुम्ह मरणेणं ॥ ५४ ॥

रन्नो य सावइस्सं पढममहं चेव कुमरवुत्तंतं । इय सव्वे वि मरंते निसेहिउं बुद्धिमं विप्पो ॥ ५५ ॥

काऊण मडयमेगं खंधे पोक्करइ नयरमज्झम्मि । अन्नाओ अन्नाओ अहो ! हु सयरे वि पभवंते ॥ ५६ ॥

राया वि हु पयईए माणससरसलिलसच्छहो सोउं । पुच्छइ किमेयमन्नायघोसणं भणइ विप्पो वि ? ॥ ५७ ॥

देवेगो संपयमंधजट्ठिया पाणवल्लहो पुत्तो । दसिऊण सप्परूवेण हयकयंतेण मह हरिओ ॥ ५८ ॥

राया वि हु गारुडिए वाहरिउं भणइ मंतसत्तीए । जीवावह पुत्तमिमं महाणुभावस्स विप्पस्स ॥ ५९ ॥

ते वि हु सव्वे मिलिउं सामत्थेऊण नियबुद्धीए । कुणिमो देवाएसं सव्वमिमं किं वियप्पेणं ? ॥ ६० ॥

परमाणावसु भूइं देव ! कुओ वि हु कुलाओ जत्थ कुले । न कया वि हु कोइ मओ तो रन्ना पेसिओ विप्पो ॥ ६१ ॥

नीसेसनयरमाहिंडिऊण परिपुच्छिऊण पइभवणं । अप्पत्तमंतवाईवुत्तविसेसणकलियभूइं ॥ ६२ ॥

सो आगओ विलक्खो जंपइ एरिसविसेसणविसिट्ठा । देव ! लब्भइ भूई उड्ढं देवो पमाणं ति ॥ ६३ ॥

तो ईसि विहसिऊणं भणिओ रन्ना स माहणो विप्प ! । जइ जणसामन्नमिमं ता तुज्झ पराभवो को णु ? ॥ ६४ ॥

जओ-

पंचजणसमाणे वि हु वसणे पत्ते न कीरई सोगो । किं पुण सयलनरा-ऽमर-तिहुयणसाहारणे मरणे ॥ ६५ ॥

भट्टेण भणियमेव जइ जाणसि तो थिरो भवसु सामि ! । नियभणियं परिपालसु तमप्पियं सावइस्सामि ॥ ६६ ॥

प्रभणति भट्टो भद्राः ! यूयमपि हु मा निरर्थकं म्रियध्वम् । मा भवतूपरि गण्डस्य स्फोटका युष्मन्मरणेन ॥ ५४ ॥

राज्ञश्च श्रावयिष्यामि प्रथममहं चैव कुमारवृत्तान्तम् । इति सर्वानपि म्रियमाणान्निषेध्य बुद्धिमान् विप्रः ॥ ५५ ॥

कृत्वा मृतकमेकं स्कन्धे पुत्करोति नगरमध्ये । अन्यायोऽन्यायोऽहो ! हु सगरेऽपि प्रभवति ॥ ५६ ॥

राजापि हु प्रकृत्या मानससरःसलिलसदृशः श्रुत्वा । पृच्छति किमेतदन्यायघोषणां भणति विप्रोऽपि ? ॥ ५७ ॥

देवैकः साम्प्रतमन्धयष्टिकाप्राणवल्लभः पुत्रः । दंशित्वा सर्परुपेण हतकृतान्तेन मम हृतः ॥ ५८ ॥

राजापि हु गारुडिकान् व्याहृत्य भणति मन्त्रशक्त्या । जीवयत पुत्रमिमं महानुभावस्य विप्रस्य ॥ ५९ ॥

तेऽपि हु सर्वे मिलित्वा सामर्थ्येण निजबुद्ध्या । कुर्मो देवादेशं सर्वमिदं किं विकल्पेन ? ॥ ६० ॥

परमाणायय भूतिं देव ! कुतोऽपि हु कुलाद्यत्र कुले । न कदापि हु कोऽपि मृतस्ततो राज्ञा विप्रः प्रेषितः ॥ ६१ ॥

निःशेषनगरमाहिण्ड्य परिपृच्छ्य प्रतिभवनम् । अप्राप्तमन्त्रवाद्युक्तविशेषणकलितभूतिम् ॥ ६२ ॥

स आगतो विलक्षो जल्पतीदृशविशेषणविशिष्टा । देव ! न लभ्यते भूतिरुर्ध्वं देवः प्रमाणमिति ॥ ६३ ॥

तत इषद्विहस्य भणितो राज्ञा स माहनो विप्रः । तत जनसामान्यमिदं ततस्तव पराभवः को नु ? ॥ ६४ ॥

यतः-

पञ्चजनसमानेऽपि हु व्यसने प्राप्ते न क्रियते शोकः । किं पुनः सकलनरा-ऽमर-त्रिभुवनसाधारणे मरणे ॥ ६५ ॥

भट्टेन भणितमेवं यदि जानासि ततः स्थिरो भव स्वामिन् ! । निजभणितं परिपालय त्वामप्रियं श्रावयिष्यामि ॥ ६६ ॥

जम्हा तुज्झ वि संपइ सट्ठिसहस्साणि सामिय ! सुयाणं । सग्गग्गमणोलग्गाइं जायाइं विहिनिओगेण ॥ ६७ ॥
सुणिऊण कन्नकडुयं तं वयणं विवसविग्गहावयवो । वज्जप्पहारपहओ व्व मुच्छिओ तयणु पुहइवई ॥ ६८ ॥
सत्थीकओ य सिरिखंडपवणजलसीयलोवयारेहिं । कुणइ पलावे दढसोयसंकुसल्लियसमग्गतणू ॥ ६९ ॥
हा गुणनिहिणो ! हा जणयवच्छला ! हा सिणिद्धजणणिपिया ! । तुम्हाणं सव्वेसिं कहेह रोयामि कयरमहं ? ॥७०॥
हा वच्छ रयणसेहर ! हा कणयद्धयकुमार ! मणदइय ! । हा पुत्त पउमसेहर ! हा पउमुत्तर ! पियालाव ! ॥ ७१ ॥
हा सीहविक्कमंगय ! नियविक्कमविजयकेसरिकिसोर ! । हा गयवाहण ! मयगलमंथरगइगमणदुल्ललिय ! ॥ ७२ ॥
हा समरकेउ ! रिउविसरसमरजयसिरिनिवासकुलभवण ! । हा दढधम्म ! मणोहर ! धम्मियसव्वंगगुणगेह ! ॥७३॥
हा वज्जंगय ! संगय ! हा वीरंगय ! विसालवच्छयल ! । इय कयनामग्गाहं सयरो रोवइ नियकुमारे ॥ ७४ ॥
हा दइय ! निग्घिण ! तए समसुत्ती पाडिया ममेगस्स । दे ! पसिय पसिय दंससु सुयमेगं ताव मह पुरओ ॥७५॥
रे दइय ! किमवरद्धं तुज्झ मए कहसु मंदभग्गेण । सुयरयणाण सहस्साणेगपए च्चिय हरंतस्स ? ॥ ७६ ॥
हे विहि ! फुक्किय ! निल्लज्ज ! पाव ! निप्फुट्ट ! चत्तमज्जाय ! । किं कुणसि एत्तिएहिं ? मुंचसु सुयमेगमुच्छंगे ॥७७॥
हा ललित ! लीलावइतिहुयणतिलए ! रयंगि ! रइसरिए ! । किं न मरह सुयरहिया निप्पुन्ना संपयं सहसा ? ॥७८॥
हा हियय ! कढसु हा हियय ! फुडसु हा हियय ! दलसु सयराहं ।
पाविय ! धरसि किमज्ज वि वज्जसिलिंकाहिं निम्मवियं ? ॥ ७९ ॥

यस्मात्तवापि सम्प्रति षष्ठिसहस्राणि स्वामिन् ! सुतानाम् । स्वर्गगमनावलग्नानि जातानि विधिनियोगेन ॥ ६७ ॥
श्रुत्वा कर्णकटुकं तद्वचनं विवशविग्रहावयवः । वज्रप्रहारप्रहत इव मूर्च्छितस्तदनु पृथिवीपतिः ॥ ६८ ॥
स्वस्थीकृतश्चश्रीखण्डपवनजलशीतलोपचारैः । करोति प्रलापान् दृढशोकशङ्कुशल्यितसमग्रतनुः ॥ ६९ ॥
हा गुणनिधयः ! हा जनकवत्सलाः ! हा स्निग्धजननीप्रियाः ! । युष्माकं सर्वेषां कथयत रोदिमि कतरमहम् ? ॥ ७० ॥
हा वत्स रत्नशेखर ! हा कनकध्वजकुमार ! मनोदयित ! । हा पुत्र पद्मशेखर ! हा पद्मोत्तर ! प्रियालाप ! ॥ ७१ ॥
हा सिंहविक्रमाङ्गज ! निजविक्रम-विजित-केसरिकिशोर ! । हा गजवाहन ! मदगलमन्थरगतिगमनदुर्ललित ! ॥ ७२ ॥
हा समरकेतो ! रिपुविसरसमरजयश्रीनिवासकुलभवन ! । हा दृढधर्म ! मनोहर ! धार्मिकसर्वाङ्गगुणगृह ! ॥ ७३ ॥
हा वज्राङ्गद संगत ! हा वीराङ्गद ! विशालवक्षःस्थल ! । इति कृतनामग्राहं सगरो रोदिति निजकुमारान् ॥ ७४ ॥
हा दैव ! निर्घृण ! त्वया समसूत्री पातिता ममैकस्य । [1]दे ! प्रसीद प्रसीद दर्शय सुतमेकं तावन्मम पुरतः ॥ ७५ ॥
रे दैव ! किमपराद्धं तव मया कथय मन्दभाग्येन । सुतरत्नानां सहस्राणामेकपदे चैव हरतः? ॥ ७६ ॥
हे विधे ! फुत्कृत ! निर्लज्ज ! पाप ! निस्फुट ! त्यक्तमर्याद ! । किं करोषि एतावद्भिः ? मुञ्च सुतमेकमुत्सङ्गे ॥ ७७ ॥
हा ललिते ! लीलावतित्रिभुवनतिलके ! रताङ्गि ! रतिश्रिये ! । किं न म्रियध्वं सुतरहिता निष्पुण्याः साम्प्रतं सहसा ? ॥७८॥
हा हृदय ! क्वथय हा हृदय ! स्फुटय हा हृदय ! दलय शीघ्रम् ।
पापि ! धर किमद्यापि वज्रशिलिङ्कभि निर्मापितम् ? ॥ ७९ ॥

---

१. दे - अव्यय - 'सखा' इत्यामन्त्रणार्थसूचकोऽयं शब्दः ।

किं नत्थि कोइ देवो गंधव्वो दाणवो व खयरो वा ? । किं निद्देवयमेयं ? न कुणइ जं को वि मह ताणं ॥ ८० ॥

भणियं दिएण सुमरसु जं संपयमेव जंपियं तुमए । अहवा वि हु नियवसणे मुज्झइ सव्वो वि जमिहुत्तं ॥ ८१ ॥

दिज्जइ सुहमुवएसो हत्थं नच्चाविऊण अन्नस्स । नियवसणे सा बुद्धी न याणिमो कत्थइ पलाया[1] ? ॥ ८२ ॥

ता अज्ज वि होसु थिरो अवलंबसु धीरिमं महाराय ! । विसहइ वज्जपहारं अयलो च्चिय न उण लेट्ठुदलं ॥ ८३ ॥

इय णेगपयारेणं रोवंतेण वि नरिंदसयरेणं । नियदइयकुमरनिवहो न वालिओ मच्चुगेहाओ ॥ ८४ ॥

सव्वे समाउया जह जाय आसायणाए संघस्स । उत्तरज्झयणाओ तहा जम्मंतरसंगयं नेयं ॥ ८५ ॥

॥ सगराख्यानकं समाप्तम् ॥ ११२ ॥

इदानीं रामाख्यानकस्यावरः, तच्च यादवाख्यानके भणितमेवेति क्रमप्राप्तं पद्माख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

जइया य दुहा वि हु पारदारिओ मारिओ दुरायारो । लंकानाहो वाहो व्वनीइधरिणीए दहवयणो ॥ १ ॥

जइया य निक्कलंका महासई अच्चुयं गया सीया । रज्जं पालंताणं लक्खण-रामाण पज्जंते ॥ २ ॥

रामस्स सुए मरणे नियमेणं लक्खणकुमारो । रामो वि हु तम्मरेण गहगहिओ भमइ भूवीढे ॥ ३ ॥

एवंविहो सिणेहो पाएण सहोयराण नऽन्नेसिं । सक्केण सुरसमक्खं इय वज्जरिए नियसभाए ॥ ४ ॥

एगो असद्दहंतो अणेगभडकोडिसंकडत्थाणे । सीहासणोवविट्ठे लक्खणकुमरम्मि मायाए ॥ ५ ॥

किं नास्ति कोऽपि देवो गन्धर्वो दानवो वा खेचरो वा ? । किं निर्दैवतमेतन् ? न करोति यत्कोऽपि मम त्राणम् ॥ ८० ॥

भणितं द्विजेन स्मर यत्साम्प्रतमेव जल्पितं त्वया । अथवापि हु निजव्यसने मुह्यति सर्वेऽपि यदिहोक्तम् ॥ ८१ ॥

दीयते सुखमुपदेशो हस्तं नर्तयित्वान्यस्य । निज व्यसने सा बुद्धि र्न जानीमः कुत्रचित्पलानाः ॥ ८२ ॥

ततोऽद्यापि भव स्थिरोऽवलम्बय धीरिमां महाराज ! । विषहते वज्रप्रहारमचलश्चैव न पुन र्लेष्टुदलम् ॥ ८३ ॥

इत्यनेकप्रकारेण रुदतापि नरेन्द्रसगरेण । निजदयितकुमारनिवहो न वालितो मृत्युगृहात् ॥ ८४ ॥

सर्वे समायुका यथा जाता आशातनया संघस्य । उत्तराध्ययनात्तथा जन्मान्तरसंगतं ज्ञेयम् ॥ ८५ ॥

॥ सगराख्यानकम् समाप्तम् ॥ ११२ ॥

पद्माख्यानकम् ॥ ११३ ॥

यदा च द्विधापि हु पारदारिको मारितो दुराचारः । लङ्कानाथो व्याध इव नीतिगृहिण्या दशवदनः ॥ १ ॥

यदा च निष्कलङ्का महासती अच्युतं गता सीता । राज्यं पालयतो र्लक्ष्मण -रामयोः पर्यन्ते ॥ २ ॥

रामस्य श्रुते मरणे नियमेन म्रियते लक्ष्मणकुमारः । रामोऽपि हु तन्मरणे ग्रहगृहीतो भ्रमति भूपीठे ॥ ३ ॥

एवंविधः स्नेह प्रायेण सहोदरयो र्नान्येषाम् । शक्रेण सुरसमक्षमिति कथिते निजसभायाम् ॥ ४ ॥

एकोऽश्रद्दधन्ननेकभटकोटिसङ्कीर्णास्थाने । सिंहासनोपविष्टे लक्ष्मणकुमारे मायया ॥ ५ ॥

---

१. पलाणा रं. ।

अंतउरं विहेउं हाहारवगब्भिणं भणइ देवो । मुट्ठा मुट्ठ त्ति अहो ! मओ रामदेवपहू ॥ ६ ॥

तं वयणं सोऊणं नेहऽज्झवसायजायसंघट्टो । उववि‌ट्ठो लच्छिहरो मुक्को सहस त्ति पाणेहिं ॥ ७ ॥

नेहो अणत्थहेऊ जियाण नेहो हु दुग्गइनिमित्तं । नेहो हासट्ठाणं नेहो हु विडंबणाहेऊ ॥ ८ ॥

नेहेण नियलरहिओ भवचारयमंदिरे वसइ जीवो । नेहेण दढं खुप्पइ जलरहिए कद्दमे मूढो ॥ ९ ॥

नेहेण दारुरहियम्मि पंजरे वसइ सइ सुओ व्व जिओ । कीलियविवज्जिए खोडयम्मि फुडमेस संवसइ ॥ १० ॥

नेहो विवेयवइरी अणामिया दढमणत्थरिंछोली । नेहेणं चिय परिममइ जियगणो दुहभवावत्ते ॥ ११ ॥

पेच्छसु नेहेण इमो पंचत्तं पाविओ विमूढमणो । तेणं चिय परिचतो मूलाओ इमो विवेईहिं ॥ १२ ॥

इय भावितो देवो विलक्खचित्तो विसायमावन्नो । धिसि धिसि विलसियमेयं अपरिक्खयकारिणो मज्झ ॥ १३ ॥

एवं विसन्नचित्ते पच्छायावेण दूमिए देवे । एएण निमित्तेणं मयम्मि लक्खणकुमारम्मि ॥ १४ ॥

हाहारवं कुणंते सोरोहे परियणे ससामंते । नीसेसे नयरिजणे संपत्तो रामएवो वि ॥ १५ ॥

दट्ठूणं निच्चेट्ठं विच्छायमुहं च लक्खणकुमारं । मुच्छानिमीलियच्छो धस त्ति पडिओ महीवीढे ॥ १६ ॥

सिसिरोवयारकरणा चेयन्नं पाविओ मणायमिमो । सिरिपउमपुहइपालो पलवइ विविहप्पयारेहिं ॥ १७ ॥

हा वच्छ ! लक्खण ! तुमं मम भत्तो किं न देसि पडिवयणं ! । किं वा अब्भुट्ठाणं न कुणसि मह पासपत्तस्स ? ॥ १८ ॥

अन्तःपुरं विधाय हाहाराव गर्भिणं भणति देवः । मृष्टा मृष्टा इति अहो ! मृतो मृतो रामदेवप्रभुः ॥ ६ ॥

तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहाध्यवसायजातसंघट्टः । उपविष्टो लक्ष्मीधरो मुक्तः सहसेति प्राणैः ॥ ७ ॥

स्नेहोऽनर्थहेतु जीवानां स्नेहः खलु दुर्गतिनिमित्तम् । स्नेहो हास्यस्थानं स्नेहः खलु विडम्बनाहेतुः ॥ ८ ॥

स्नेहेन निगडरहितो भवचारकमन्दिरे वसति जीवः । स्नेहेन दृढं मज्जति जलरहिते कर्दमे मूढः ॥ ९ ॥

स्नेहेन दारुरहितेपञ्जरे वसति सदा शुक इव जीवः । कीलिकाविवर्जिते खोडे स्पष्टमेष संवसति ॥ १० ॥

स्नेहो विवेकवैर्यनामिका दृढमनर्थपङ्क्तिः । स्नेहेन चैव परिभ्रमति जीवगणो दुःखभवावर्त्ते ॥ ११ ॥

पश्य स्नेहेनायं पञ्चत्वं प्राप्तो विमूढमनाः । तेन चैव परित्यक्तो मूलादयं विवेकिभिः ॥ १२ ॥

इति भावयन् देवो विलक्षणचित्तो विषादमापन्नः । धिग्धिग्विलसितमेतदपरीक्षितकारिणो मम ॥ १३ ॥

एवं विषण्णचित्ते पश्चात्तापेन दूयमाने देवे । एतेन निमित्तेन मृते लक्ष्मणकुमारे ॥ १४ ॥

हाहारावं कुर्वति सान्तःपुरे परिजने ससामन्ते । निःशेषे नगरिजने सम्प्राप्तो रामदेवोऽपि ॥ १५ ॥

दृष्ट्वा निश्चेष्टं विच्छायमुखं च लक्ष्मणकुमारम् । मूर्च्छानिमीलिताक्षो धसेति पतितो महीपीठे ॥ १६ ॥

शिशिरोपचारकरणाच्चैतन्यं प्राप्तो मनागयम् । श्रीपद्मपृथिवीपालः प्रलपति विविधप्रकारैः ॥ १७ ॥

हा वत्स ! लक्ष्मण ! त्वं मम भक्तः किं न ददासि प्रतिवचनम् ? । किं वाभ्युत्थानं न करोषि मम पार्श्वप्राप्तस्य ॥ १८ ॥

किं तुह गुरुयणविणयं ? किं वा पणयं च पणइवग्गम्मि ? । मग्गणगणम्मि चायं तुज्झ गुणं कमिह वन्नेमि ? ॥१९॥
तथा हि-
किं सुंबकुमरसिरछेयसाहसं सुज्जहासखग्गगहं[1] । किं वा वि हु सुप्पनहाभीसणरक्खसिपरभवणं ॥ २० ॥
किं वा खरदूसणरायसमरभडभिडणसुहडनिव्वहणं । किं कोडिसिलुप्पाडणमहवा दहवयणरक्खवहं ॥ २१ ॥
भुवणऽच्चब्भुयभूयं विसिट्ठजणविम्हयावहमपुव्वं । तुह वियसियकमलदलच्छ ! वच्छ ! रोएमि कं व गुणं ? ॥२२॥
तुह वच्छ ! नावरद्धं कइया वि मए न यावि मह तुमए । ता किं संपइ रुट्ठो न देसि दुहियस्स पडिवयणं ? ॥ २३ ॥
पावियफुडचेयन्नो चिंतइ समईए रामदेवनिवो । किं एसो सच्चं चिय मओ न जं देइ पडिवयणं ? ॥ २४ ॥
एत्थंतरम्मि भणियं पहाणपुरिसेहिं एस अम्ह पहू । अवहरिओ हयविहिणा ता कीरउ देहसक्कारो ॥ २५ ॥
रामो वि भणइ पडिहयममंगलं तुम्ह एरिसं वयणं । न उणो मरिही कइया वि बंधवो एस मज्झ पिओ ॥ २६ ॥
पुणरवि जंपइ पउमो दुज्जणलोयाण मज्झयाराओ । उट्ठसु वच्छ ! वयामो कहिं पि दूरे अरन्नम्मि ॥ २७ ॥
इय भणिऊणं खंधे काउं अन्नत्थ जाइ गहगहिओ । तत्थ वि न्हावइ धोवइ परिहावइ वत्थ-ऽलंकारे ॥ २८ ॥
जेमावइ परमन्नं मुहम्मि पक्खिवइ सरसतंबोलं । उच्छंगम्मि निवेसिय परिमुसिउं वयणमालवइ ॥ २९ ॥
इय मोहमोहियमई पभूयकालं वणम्मि परिभमइ । खंधारोवियमडओ न मुणइ जह एस कालगओ ॥ ३० ॥

किं तव गुरुजनविनयं ? किं वा प्रणयं च प्रणतिवर्गे ? । मार्गणगणे त्यागं तव गुणं कमिह वर्णयामि ? ॥ १९ ॥
तथा हि -
किं शम्बुकुमारशिरच्छेदसाहसं सूर्यहासखड्गग्रहम् । किं वापि हु सुपर्णखाभीषणराक्षसिपराभवनम् ॥ २० ॥
किं वा खरदूषणराजसमरभटाक्रमणसुभटनिर्वधनम् । किं कोटिशिलोत्पाटनमथवा दशवदनरक्षोवधम् ॥ २१ ॥
भुवनाश्चर्यभूतभूतं विशिष्टजनविस्मयावहमपूर्वम् । तव विकसितकमलदलाक्ष ! वत्स ! रोदिमि कं वा गुणम् ? ॥ २२ ॥
तव वत्स ! नापराद्धं कदापि मया न चापि मम त्वया । ततः किं सम्प्रति रुष्टो न ददासि दुःखितस्य प्रतिवचनम् ? ॥२३॥
प्राप्तस्फुटचैतन्यश्चिन्तयति स्वमत्या रामदेवनृपः । किमेष सत्यं चेव मृतो न यद्ददाति प्रतिवचनम् ? ॥ २४ ॥
अत्रान्तरे भणितं प्रधानपुरुषैरेषोऽस्मत् प्रभुः । अपहृतो हतविधिना ततः क्रियतां देहसत्कारः ॥ २५ ॥
रामोऽपि भणति प्रतिहतममङ्गलं युष्मदीदृशं वचनम् । न पुन र्मरिष्यति कदापि बन्धव एष मम प्रियः ॥ २६ ॥
पुनरपि जल्पति पद्मो दुर्जनलोकानां मध्यात् । उत्तिष्ठ वत्स ! व्रजावः कुत्रापि दूरेऽरण्ये ॥ २७ ॥
इति भणित्वा स्कन्धे कृत्वान्यत्र याति ग्रहगृहीतः । तत्रापि स्नापयति धावयति परिधापयति वस्त्रालङ्कारान् ॥ २८॥
जेमयति परमान्नं मुखे प्रक्षिपति सरसतम्बोलम् । उत्सङ्गे निवेश्य परिस्पृश्य वदनमालपति ॥ २९ ॥
इति मोहमोहितमतिः प्रभूतकालं वने परिभ्रमति। स्कन्धारोपितमृतको न मुणति यथैव कालगतः ॥ ३० ॥

---

१. सूरहास० रं० ।

तं जह सारहिदेवो पडिबोहइ जह य सीयदेविंदो । उवसग्गे कुणइ जहा उप्पाडइ केवलं नाणं ॥ ३१ ॥

तह सव्वं वित्थरओ विन्नेयं रामदेवचरियाओ । ठाणासुन्नत्थं पुण इह भणियं जाणियव्वमिमं ॥ ३२ ॥ छ ॥

॥ पद्माख्यानकं समाप्तम् ॥ ११३ ॥

एएहिं मओ बंधू बहुएण वि रोइएण नाऽऽणीओ । तह अन्नो वि न आणइ निरत्थयं रोइयाइ तओ ॥ १ ॥

आक्रन्दितेन बहुनाऽपि च शोचितेन, सार्द्धं सुरेश्वरगणैरपि रोदितेन ।
क्रोडीकृतं हतकृतान्तभटैः स्वबन्धुं, प्रत्यानयेयुरिह केऽपि न सद्धियोऽपि ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचित्तवृत्तावाख्यानकमणिकोशे नष्टमृतविषय रोदनादिनैरर्थक्यप्रतिपादनपरोऽष्टात्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३८ ॥

तं यथा सारथिदेवः प्रतिबोधयति यथा च सीतादेवेन्द्रः । उपसर्गान्करोति यथोत्पादयति केवलं ज्ञानम् ॥ ३१ ॥

तथा सर्वं विस्तरतो विज्ञेयं रामदेवचरित्रात् । स्थानाशून्यार्थं पुनरिह भणितं ज्ञातव्यमिदम् ॥ ३२ ॥

॥ पद्माख्यानकम् समाप्तम् ॥ ११३ ॥

एतै मृतो बन्धु र्बहुकेनापि रुदितेन नाऽऽनीतः ।
तथान्योऽपि नानयति निरर्थकं रुदितादिस्ततः ॥ १ ॥

● ● ●

[३९. बन्धुकृत्रिमस्नेहत्वाधिकारः]

अनन्तरं रोदिनादि निरर्थकमभिहितम् । अधुना चैतत् स्नेहवशगैः क्रियमाणं कृत्रिमस्नेहत्वाद् बन्धूनां निरवकाशमेवेत्येतदभिधातुकाम आह-

बंधू वि इह अरित्तं कुणइ सकज्जेण तेसु को मोहो ? ।
रविकंत-चुलणि-कोणिय-संख-भरहकणगकेउ व्व ॥

व्याख्या-बन्धुरपि आस्तां परः 'इह' अस्मिन् लोके 'अरित्वं' शत्रुत्वं ''कुणइ'' त्ति करोति 'स्वकार्येण' स्वप्रयोजनेन, तेषु बन्धुषु को मोहः कः स्नेहः ? । दृष्टान्तानाह- 'रविकान्ता च' सूर्यकान्ता प्रदेशिनृपभार्या 'चुलणी च' ब्रह्मभार्या 'कोणिकश्च' श्रेणिकपुत्रः 'शङ्खश्च' कलावतीपतिः 'भरतश्च' वृषभजिनपुत्रः 'कनककेतुश्च' कनककेत्वाख्यो राजा ये ते तथोक्ताः तद्वदित्यक्षरार्थः ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्रापि तावत् क्रमप्राप्तं रविकान्ताख्यानकमाख्यायते-

केयइदेससरोवरभूसणसियकमलसंडसंकासा । केयइदलधवला इब्भतुंगधवलहरमालाहिं ॥ १ ॥

सेयविया नाम पुरी तत्थऽत्थि पएसिनाम नरनाहो । साहसिओ कूरमणो पावमई वम्मकलिओ वि ॥ २ ॥

नाहियवायपरो वि हु दीसंतो रोद्ददंसणो दूरं । इहलोयविसयगिद्धो वसीकयासेसपरलोओ ॥ ३ ॥

सूरियकंता नामेण अत्थि लायन्नअमयरसकुल्ला । नियरूवोवहसियतियसपणइणी पणइणी तस्स ॥ ४ ॥

रविकान्ताख्यानकम् ॥ ११४ ॥

केतकीदेशसरोवरभूषणसितकमलखण्डसङ्काशा । केतकीदलधवलेभ्यतुङ्गधवलगृहमालाभिः ॥ १ ॥

श्वेताम्बिका नाम पुरी तत्रास्ति प्रदेशीनामा नरनाथः । साहसिकः क्रूरमनाः पापमति र्वर्मकलितोऽपि ॥ २ ॥

नास्तिकवादपरोऽपि खलु पश्यन् रौद्रदर्शनो दूरम् । इहलोकविषयगृद्धो वशीकृताशेषपरलोकः ॥ ३ ॥

सूर्यकान्ता नाम्नास्ति लावण्यामृतरसकूल्या । निजरूपोपहसितत्रिदशप्रणयिनी प्रणयिनी तस्य ॥ ४ ॥

तासाइदोसरहिओ फुरियपयावो य सूरसंजोगा। सुविसुद्धवन्नकलिओ सूरियकंतो व्व तस्स सुओ ॥ ५ ॥
सूरियकंतो नामं पारं पत्तो कलाकलावस्स । तस्स य पएसिरन्नो सिणेहपत्तं परमहेसि ॥ ६ ॥
चित्तो नाम अमच्चो अलद्धमज्झो थिराउ बुद्धीओ । मयरहरम्मि नईउ व समकालं जम्मि विलसंति ॥ ७ ॥
सो अन्नया कयाई पट्ठविओ निवपओयणे कहि वि । सावत्थीए जियसत्तुरायपासम्मि नरवइणा ॥ ८ ॥
तेण चउनाणकलिओ केसी नामेण गणहरो दिट्ठो । अन्तेवासी सिरिपाससामिणो तत्थ य गएण ॥ ९ ॥
धम्मकहं कहमाणो तस्स सयासम्मि सो वि संपत्तो । सोऊण परमधम्मं संबुद्धो[१] जायसंवेगो ॥ १० ॥
बारसविहगिहिधम्मं सम्मत्तपुरस्सरं सुहासयओ । पडिवज्जइ कयकिच्चं अत्ताणं मन्नमाणो य ॥ ११ ॥
पभणइ भयवं ! भवदुरवगाहकूवम्मि निवडिओ अहयं । तुब्भेहिं समुद्धरिओ जिणपवयणरज्जुखिवणेण ॥ १२ ॥
काऊण गुरुपसायं इन्हिं नियचलणकमलफरिसेण । सेयवियानयरीए भूमितलं कुणह सुपवित्तं ॥ १३ ॥
[२]सूरीहुत्तं जह वट्टमाणजोगेण आगमिस्सामो । वंदित्तु भावसारं सेयवियं पडिगओ मंती ॥ १४ ॥
विहरंता य कमेणं संपत्ता सूरिणो वि तत्थेव । निययसुनिउत्तपुरिसेहिं तयणु वद्धाविओ मंती ॥ १५ ॥
नाऊण तेसिमागमणमसमरोमंचकंचुइयकाओ । ठाणट्ठिओ वि भत्तीए नमइ सूरीण पयकमलं ॥ १६ ॥
चिंतइ य जहा मिच्छत्तमोहिओ मज्झ एस नरनाहो । रुद्दाणीयपरिगओ भवाभिणंदी हरजणो व्व ॥ १७ ॥

त्रासादिदोषरहितः स्फुरितप्रतापश्च सूर्यसंयोगात् । सुविशुद्धवर्णकलितः सूर्यकान्त इव तस्य सुतः ॥ ५ ॥
सूर्यकान्तो नाम पारं प्राप्तः कलाकलापस्य । तस्य च प्रदेशीराज्ञः स्नेहप्राप्तं परमासीत् ॥ ६ ॥
चित्रो नामामात्योऽलब्धमध्यः स्थिरायाः बुद्ध्याः । मकराकरे नद्य इव समकालं यस्मिन् विलसन्ति ॥ ७ ॥
सोऽन्यदा कदाचित्प्रस्थापितो नृप प्रयोजने क्वापि । श्रावस्त्यां जितशत्रुराजपार्श्वे नरपतिना ॥ ८ ॥
तेन चतुर्ज्ञानकलितः केशी नाम्ना गणधरो दृष्टः । अन्तेवासी श्रीपार्श्वस्वामिनस्तत्र च गतेन ॥ ९ ॥
धर्मकथां कथ्यमानस्तस्य सकाशे सोऽपि सम्प्राप्तः । श्रुत्वा परमधर्मं संबुद्धो जातसंवेगः ॥ १० ॥
द्वादशविधगृहिधर्मं सम्यक्त्वपुरस्सरं शुभाशयः । प्रतिपद्यते कृतकृत्यमात्मानं मन्यमानश्च ॥ ११ ॥
प्रभणति भगवन् ! भवदुरवगाहकूपे निपतितोऽहम् । युष्माभिः समुद्धृतो जिनप्रवचनरज्जुक्षेपणेन ॥ १२ ॥
कृत्वा गुरुप्रसादमिदानीं निजचरणकमलस्पर्शेन । श्वेताम्बिकानगर्या भूमितलं कुरुध्वं सुपवित्रम् ॥ १३ ॥
सूरिभिरुक्तं यथा वर्त्तमानयोगेनागमिष्यामः । वन्दित्वा भावसारं श्वेताम्बिकां प्रतिगतो मन्त्री ॥ १४॥
विहरन्तश्चक्रमेण संप्राप्ताः सूरयोऽपि तत्रैव । निजकसुनियुक्तपुरुषैस्तदनु वर्धापितो मन्त्री ॥ १५ ॥
ज्ञात्वा तेषामागमनसमरोमाञ्चकञ्चुकितकायः । स्थानस्थितोऽपि भक्त्या नमति सूरीणां पदकमलम् ॥ १६ ॥
चिन्तयति च यथा मिथ्यात्वमोहितो ममैष नरनाथः । रौद्रानीकपरिगतो भवाभिनन्दी हरजन इव ॥ १७ ॥

---

१. संतुष्टो रं. । २. सूरिभिरुक्तम् ।

किं मइ जीवंते वि हु सचिवे एसो गमिस्सई नरयं ? । किं सो हु तस्स इट्ठो जोइज्जइ जो न धम्मम्मि ? ॥ १८ ॥
किं वा हवेज्ज मित्तो जो न समुद्धरइ पावपंकाओ ? । ता केणावि उवाएण नेमि सूरीण पासमिमं ॥ १९ ॥
भवजलहिम्मि निवडियं जेण इमं उद्धरंति ते गुरुणो । जिणसमयजाणवत्तेण मंतिणा चिंतिऊण तओ ॥ २० ॥
देव ! इमे वरतुरया बहुकालमवाहिया विणस्संति । इय आसवाहियालिच्छलेण मंती तहिं नेइ ॥ २१ ॥
कुव्वंति जत्थ सद्धम्मदेसणं सूरिणो बहुजणस्स । तो भणियं नरवइणा एसो मुंडो किमारडइ ? ॥ २२ ॥
तत्तो चित्तेणुत्तं सम्मं जाणे न देव ! हिं किंतु । गंतूणं निसुणेमो तयणु गया गुरुसमीवम्मि ॥ २३ ॥
जीवाईए तत्ते परूविए देवयासरूवे य । गुरुणा तो भणइ निवो सव्वमसंबद्धमेयं ति ॥ २४ ॥
इह नत्थि ताव जीवो तुह वंछियतत्तमूलभूओ य । पच्चक्खगोयराईयत्ता ससविसाणं व ॥ २५ ॥
तो भणियं सूरीहिं किमियं पच्चक्खगोयराईयं । भो भद्द ! तुज्झ ? किं वा सव्वेसिं जंतुजायाणं ? ॥ २६ ॥
तत्थ जइ पढमपक्खो तो पव्वय-थंम-कुंभमाईणं । होइ अभावपसंगो जं पच्चक्खस्स विसओ ते ॥ २७ ॥
पडिनियजीवगोयरचारित्तं अह दुइज्जपक्खो य । सो वि असिद्धो सिद्धीए तस्स तुह चेव सब्भावो ॥ २८ ॥
सव्वन्नुजीवसिद्धीए तयणु जीवाइतत्तपडिसेहो । होइ अणत्थो जीवे सइ बंधाईण सुकरत्ता ॥ २९ ॥
इच्चाइतंतजुत्तीए तेहिं राया निरुत्तरो विहिओ । तो भणइ सविणयमिमो भयवं ! जइ होज्ज परलोओ ॥ ३० ॥
ता मम माया अच्चंतधम्मिया आसि सयलसत्तहिया । जणओ पुण निंत्तिसो निद्धम्मो पावकरणरओ ॥ ३१ ॥

किं मयि जीवत्यपि हु सचिव एष गमिष्यति नरकम् ? । किं स खलु तस्येष्टो योजयति यो न धर्मे ? ॥ १८ ॥
किं वा भवेन्मित्रं यो न समुद्धरति पापपङ्कात् ? । ततः केनाप्युपायेन नयामि सूरिणां पार्श्वमिमम् ॥ १९ ॥
भवजलधौ निपतितं येनेममुद्धरन्ति ते गुरवः । जिनसमययानपात्रेण मन्त्रिणा चिन्तयित्वा ततः ॥ २० ॥
देव ! इमे वरतुरगा बहुकालमवाहिता विनश्यन्ति । इत्यश्ववाहयालिच्छलेन मन्त्री तत्र नयति ॥ २१ ॥
कुर्वन्ति यत्र सद्धर्मदेशनां सूरयो बहुजनस्य । ततो भणितं नरपतिनैष मुण्डः किमारटति ? ॥ २२ ॥
ततश्चित्रेणोक्तं सम्यग्जाने न देवाहं किन्तु । गत्वा निशृणुवस्तदनु गतौ गुरु समीपे ॥ २३ ॥
जीवादिके ततः प्ररुपिते देवतास्वरूपे च । गुरुणा ततो भणति नृपः सर्वमसम्बद्धमेतदिति ॥ २४ ॥
इह नास्ति तावज्जीवस्तव वाञ्छिततत्त्वमूलभूतश्च । प्रत्यक्षगोचरा इति ताः शशविषाणमिव ॥ २५ ॥
ततो भणितं सूरिभिः किमिदं प्रत्यक्षगोचरादिकम् । भो भद्र ! तव ? किं वा सर्वेषां जन्तुजातानाम् ? ॥ २६ ॥
तत्र यदि प्रथमपक्षस्ततः पर्वत-स्तम्भ-कुंभादीनाम् । भवत्यभावप्रसङ्गो यत्प्रत्यक्षस्य विषयस्ते ॥ २७ ॥
प्रतिनिवर्तजीवागोचरचारित्वमथ द्वितीयपक्षश्च । सोऽप्यसिद्धः सिद्ध्या तस्य तव चैव सद्भावः ॥ २८ ॥
सर्वज्ञजीवसिद्ध्या तदनु जीवादितत्त्वप्रतिषेधः । भवत्यनर्थो जीवे सति बन्धादीनां सुकरत्वात् ॥ २९ ॥
इत्यादितन्त्रयुक्त्या तै राजा निरुत्तरो विहितः । ततो भणति सविनयमयं भगवन् ! यदि भवेत् परलोकः ॥ ३० ॥
ततो मम मातात्यन्तधार्मिकाऽऽसीत्सकलसत्त्वहिता । जनकः पुन र्निस्त्रिंशो निर्धर्मः पापकरणरतः ॥ ३१ ॥

तुम्ह मएणं मरिऊण ताणि पत्ताणि सग्ग-णरएसु । ते कह आगंतूणं न प्पडिबोहिंति मं एत्थ ? ॥ ३२ ॥

तो भणियं सूरीहिं भद्द ! जहा कोइ रायपुरिसेहिं । महयावराहगहिओ वज्झभुवं निज्जए पुरिसो ॥ ३३ ॥

सो भणइ तेसि पुरओ नियसयणाण मिलित्तुमीहे हं । एक्कं वारं काऊण मह दयं मुयह ता तुब्भे ॥ ३४ ॥

तो किं तेसि सयासा मिलण सो लहइ जणणि-जणयाणं ? । एवं नेरइया वि हु परमाहम्मियसयासाओ ॥ ३५ ॥

न लहंति इहाऽऽगंतुं करवत्ताईहिं कप्परिज्जंता । करुणारहिएहिं दढं निरंतरं नरयवालेहिं ॥ ३६ ॥

देवा पुण विसयपसत्त मणहरुज्जाणकीलणे सत्ता । नरभवअसुहत्ताओ न हुइंति इहं जओ भणियं ॥ ३७ ॥

संकंतदिव्वपेमा विसयपसत्ता समत्तकत्तव्वा । अणहीणमणुयकज्जा नरभवमसुहं न इंति सुरा ॥ ३८ ॥

चत्तारि पंच जोयणसयाणि गंधो उ मणुयलोयस्स । उड्ढं वच्चइ जेणं न हु देवा तेण आवंति ॥ ३९ ॥

इच्चाइकारणाओ उवंति नरनाह ! ते कहं इहइं ? तो भणियं भूवइणा सच्चं भयवं ! भवउ एवं ॥ ४० ॥

तह वि मए तावेगो चोरो निच्छिद्दलोहमइयाए । मंजूसाए निहित्तो कालेण निरिक्खओ तम्मि ॥ ४१ ॥

किमिपुंजो च्चिय दिट्ठो मज्झंतेणं न यावि कालेण । मंजूसाए विहियं छिद्दं तो नत्थि एत्थ जिओ ॥ ४२ ॥

तो भणियं सूरीहिं वायामेत्तं नरिंद ! एयं पि । जम्हा लोहमयाए कुंभीए निहत्तपुरिसेण ॥ ४३ ॥

वाइज्जंते संखम्मि संखसद्दो बहिं विणिस्सरइ । लोहमए वा गोले निक्खत्ते जलणमज्झम्मि ॥ ४४ ॥

तम्मि य धमिज्जमाणे अग्गी पविसेइ गोलयस्संतो । निग्गमपवेसविहियं न किं पि दीसइ तहिं छिद्दं ॥ ४५ ॥

तव मतेन मृत्वा तौ प्राप्तौ स्वर्ग-नरकयो: । तौ कथमागत्य न प्रतिबोधयतो मामत्र ? ॥ ३२ ॥

ततो भणितं सूरिभि र्भद्र ! यथा कोऽपि राजपुरुषै: । महापराधगृहीतो वध्यभूवं नीयते पुरुष: ॥ ३३ ॥

स भणति तेषां पुरतो निजस्वजनानां मिलयितुमिहेऽहम् । एकं वारं कृत्वा मम दयां मुञ्चत ततो यूयम् ॥ ३४ ॥

तदा किं तेषां सकाशान्मिलनं स लभते जननी-जनकयो: ?। एवं नैरयिका अपि हु परमाधर्मिकसकाशात् ॥ ३५ ॥

न लभन्त इहाऽऽगन्तुं करपत्रादिभि: कल्प्यमाना: । करुणारहितै र्दृढ निरन्तरं नरकपालै: ॥ ३६ ॥

देवा: पुन विषयप्रसक्ता मनोहरोद्यानक्रीडने सक्ता: । नरभवाशुभत्वान्न खल्वेआयन्ती यतो भणितम् ॥ ३७ ॥

सङ्क्रान्तदिव्यप्रेमाणो विषयप्रसक्ता: समाप्तकर्त्तव्या: । अनाधीनमनुष्यकार्या नरभवमशुभं आयन्ति सुरा: ॥ ३८ ॥

चत्वार: पञ्च योजनशतानि गन्धस्तु मनुजलोकस्य । ऊर्ध्वं गच्छति येन न खलु देवास्तेनायान्ति ॥ ३९ ॥

इत्यादि कारणादुपयन्ति नरनाथ ! ते कथमिह ? । ततो भणितं भूपतिना सत्यं भगवन् ! भवत्वेवम् ॥ ४० ॥

तथापि मया तावदेकश्चौरो निश्छिद्रलोहमयायाम् । मञ्जूषायां निक्षिप्त: कालेन निरीक्षितस्तस्मिन् ॥ ४१ ॥

कृमिपुञ्जश्चैव दृष्टो मध्यान्तेन न चापि कालेन । मञ्जूषायां विहितं छिद्रं ततो नास्त्यत्र जीव: ॥ ४२ ॥

ततो भणितं सूरिभि र्वाचामात्रं नरेन्द्र ! एतदपि । यस्माल्लोहमयायां कुम्भौ निक्षिप्तपुरुषेण ॥ ४३ ॥

वाद्यति शङ्खे शङ्खशब्दो बहि र्विनि:सरति । लोहमये वो गोलके निक्षिप्ते ज्वलनमध्ये ॥ ४४ ॥

तस्मिंश्च धम्यमानेऽग्नि: प्रविशति गोलकस्यान्त: । निर्गमप्रवेशविहितं न किमपि दृश्यते तत्र च्छिद्रम् ॥ ४५ ॥

मुत्तेसु वि संख-सराइएसु जइ एवमत्थि नरनाह ! । ताव अमुत्ते जीवे सद्दहियव्वं विसेसेणं ॥ ४६ ॥

पुणरवि भणियं रन्ना भयवं ! एगस्स तक्करस्स मए । खंडीकयं सरीरं तिलमेत्तं न य कहिं पि तहिं ॥ ४७ ॥

दिट्ठो जीवो ता कहमेसो अत्थि त्ति सद्दहेयव्वं ? । सूरीहुत्तं रायं ! ससिकंतमणिम्मि बहुसो वि ॥ ४८ ॥

फोडिज्जंतम्मि जलं अरणियकट्ठाइएसु तह अग्गी । नो उपलब्भइ अह चंदकिरणजोगाइसामग्गी ॥ ४९ ॥

तेसिं भावं जणवइ ससिकंताईसु एवमिहइं पि । अह भणियं नरवइणा भयव ! अवरो मए चोरो ॥ ५० ॥

जीवंतो तोलेउं गलमावलिऊण मरिउं पच्छा । पुणरवि य तोलिओ न य निभालिओ तो वि चोरस्स ॥ ५१ ॥

तुल्लजणिओ विसेसो ता कहमत्थि त्ति सद्दहेयव्वो ? । गुरुणा भणियं नरव ! केण वि गोवालपुत्तेण ॥ ५२ ॥

वायंडयं[१] परिपूरिय पवणस्स स तोलिओ पुणो रित्तो । विहिऊण तोलिओ न उण पवणजणिओ तहिं दिट्ठो ॥५३॥

कोइ विसेसो अह पुव्वमेस पच्चक्खमेवमुवलद्धो । मुत्तेसु ताव एवं कि भणियव्वं अमुत्तेसुं ? ॥ ५४ ॥

तम्हा उ असाहारणचेयन्नगुणोवलंभभावाओ । तुम्हाण वि..... देसेणऽप्पा हु पच्चक्खो ? ॥ ५५ ॥

इच्चाइमोहविद्धंसनिउणजिणसमयवयणमंतेहिं । तह कह वि उंजिओ सो मिच्छत्तविसेण जह मुक्को ॥ ५५ ॥

जंपइ य तओ तुब्भेहिं जं समाइट्ठमवितहं भयवं ! । किंतु कमागयनत्थियवाइत्तं परिचयामि कहं ? ॥ ५६ ॥

सूरीहिं तओ भणियं एयं पि अकारणं महाराय ! । कमपत्तं रोग-दरिद्दमाइयं किं न मोत्तव्वं ? ॥ ५७ ॥

मूर्तेष्वपि शङ्ख-शरादिकेषु यद्येवमस्ति नरनाथ ! । तावदमूर्ते जीवे श्रद्धितव्यं विशेषेण ॥ ४६ ॥

पुनरपि भणितं राज्ञा भगवन्नेकस्य तस्करस्य मया । खण्डीकृतं शरीरं तिलमात्रं न च क्वापि तत्र ॥ ४७ ॥

दृष्टो जीवस्ततः कथमेषोऽस्तीति श्रद्धेयम् ? । सूरिभिरुक्तं राजन् ! शशिकान्तमणौ बहुशोऽपि ॥ ४८ ॥

स्फोटयति जलमरणिककाष्ठादिषु तथाग्निः । नोपलभ्यतेऽथ चन्द्रकिरणयोगादिसामग्री ॥ ४९ ॥

तेषां भावं जनयति शशिकान्तादिष्वेवमिहापि । अथ भणितं नरपतिना भगवन्नपरो मया चौरः ॥ ५० ॥

जीवन् तोलयित्वा गलमावलिल्य मारयित्वा पश्चात् । पुनरपि च तोलितो न च निभालितस्तदापि चौरस्य ॥ ५१ ॥

तूल्यजनितो विशेषस्ततः कथमस्तीति श्रद्धितव्यः ?। गुरुणा भणितं नरवर ! केनापि गोपालकपुत्रेण ॥ ५२ ॥

वातदृतिका परिपूर्य पवनस्य सा तोलिता पुना रिक्ता । विधाय तोलिता न पुनः पवनजनितस्तत्र दृष्टः ॥ ५३ ॥

कोऽपि विशेषोऽथ पूर्वमेष प्रत्यक्षमेवमुपलब्धः । मूर्तेषु तावदेवं किं भणितव्यममूर्तेषु ? ॥ ५४ ॥

तस्मात्त्वसाधारण चैतन्यगुणोपलम्भाभावात् । युष्माकमपि......देशेनात्मा खलु प्रत्यक्षः ? ॥ ५५ ॥

इत्यादिमोहविध्वंसननिपूणजिनसमयवचनमन्त्रैः । तथा कथमपि योजितः स मिथ्यात्वविषेण यथा मुक्तः ॥ ५६ ॥

जल्पति च ततो युष्मद्धि र्यत्समादिष्टमवितथं भगवन् ! । किन्तु क्रमागतनास्तिकवादित्वं परित्यजामि कथम् ? ॥ ५७ ॥

सूरिभिस्ततो भणितमेतदप्यकारणं महाराज ! । क्रमप्राप्तं रोग-दारिद्रादिकं किं न मोक्तव्यम् ? ॥ ५७ ॥

---

१. दीयडयं रं. ।

जायइ पच्छायावो उ अन्नहा लोहभारवाहस्स । पुरिस्स व को एसो ? रन्ना भणिए भणइ सूरी ॥ ५८ ॥
दविणोवज्जणकज्जे चउरो पुरिसा विणिग्गया केइ । तत्तो कम्मि पएसे दिट्ठो लोहागरो तेहिं ॥ ५९ ॥
आवयमेत्तं वहिउं तरंति लोहं सउत्तमंगेण । घेत्तुं तावयमेत्तं संवलिया कह वि अह पुरओ ॥ ६० ॥
रुप्पागरम्मि दिट्ठे लोहं चइऊण ते जणे तिन्नि । गिन्हंति रुप्पमेगो परिहरइ न कह वि तं लोहं ॥ ६१ ॥
अन्नेहिं भणिज्जंतो वि भणइ तुब्भेऽणवट्ठिया दूरं । अहयं तु पुणो एयं चिरपरिवूढं न हु चएमि ॥ ६२ ॥
अग्गे गच्छंतेहिं निहालिओ कणयआगरो रुप्पं । परिहरिउं ते तिन्नि वि लिंति सुवन्नं जहिच्छाए ॥ ६३ ॥
इयरो वि तेहिं भणिओ लोहं मोत्तूण गिन्ह कणयमिणं । उवहसइ अहो ! तुब्भे निच्छयरहिया य पडिवन्ने ॥ ६४ ॥
पुरओ संचलिएहिं संपत्तो रयणआगरो तेहिं । तत्तो समुज्झिऊणं कणयं गिन्हंति रयणाइं ॥ ६५ ॥
वुत्तो य लोहवाही अन्नेहिं भणसि जं न कहियं मे । एत्तियगए वि गिन्हसु लोहं मोत्तूण रयणाणि ॥ ६६ ॥
दारिद्दभरक्कंतो इहरा सोइहिसि मूढ ! तं बहुयं । एवं भणिज्जमाणो नवरमुवहसइ सो अन्ने ॥ ६७ ॥
संपत्ता नियदेसे कइय वि रयणाणि विक्किऊण तओ । विलसंति जहिच्छाए नियभवणे पिययमासहिया ॥ ६८ ॥
लोहभरवाहओ वि य तेसिं पासित्तु लच्छिविच्छड्डुं । पच्छायावदवेणं पइदिवसं डज्झए हियए ॥ ६९ ॥
इय लोहभारवाहयपुरिससमं चयसु नियमभिप्पायं । नाणाईरयणाइं गेन्हसु सिवसोक्खहेऊणि ॥ ७० ॥
इय जंपिओ य गुरुणा संवेगपरायणो महीनाहो । पाएसु निविडिऊणं एवं भणिउं समाढत्तो ॥ ७१ ॥

जायते पश्चातापस्त्वन्यथा लोहभारवाहस्य । पुरुषस्येव क एष ? राज्ञा भणिते भणति सूरिः ॥ ५८ ॥
द्रविणोपार्जन कार्ये चत्वारः पुरुषा विनिर्गता केऽपि । ततः कस्मिन् प्रदेशे दृष्टो लोहाकारस्तैः ॥ ५९ ॥
यावन्मात्रं वोढुं शक्नुवन्ति लोहं स्वोत्तमाङ्गेन । गृहीत्वा तावन्मात्रं संवलिताः कथमाप्यथ पुरतः ॥ ६०॥
रुप्याकरे दृष्टे लोहं त्यक्त्वा ते जनास्त्रयः । गृहणन्ति रुप्यमेकः परिहरति न कथमपि तं लोहम् ॥ ६१ ॥
अन्यै र्भण्यमानोऽपि भणति यूयमनवस्थिता दुरम् । अहं तु पुनरेतच्चिरपरिवोढं न हु त्यजामि ॥ ६२ ॥
अग्रे गच्छद्भि र्निभालितः कनकाकरो रुप्यम् । परिहर्य ते त्रयोऽपि लान्ति सुवर्णं यथेच्छया ॥ ६३ ॥
इतरो ऽपि तै र्भणितो लोहं मुक्त्वा गृहाण कनकमिदम् । उपहसत्यहो ! यूयं निश्चयरहिताश्च प्रतिपन्ने ॥ ६४॥
पुरतः सञ्चलद्भिः सम्प्राप्तो रत्नाकरस्तैः । ततः समुज्झ्य कनकं गृह्णन्ति रत्नानि ॥ ६५ ॥
उक्तश्च लोहवाह्यन्यै र्भणसि यन्न कथितं मे । एतावद्गतेऽपि गृहाण लोहं मुक्त्वा रत्नानि ॥ ६६ ॥
दारिद्रभराक्रान्त इतरथा शोचयिष्यसि मुढ ! त्वं बहुकम् । एवं भण्यमानो नवरमुपहसति सोऽन्यान् ॥ ६७ ॥
सम्प्राप्ता निजदेशे कदापि रत्नानि विक्रीय ततः । विलसन्ति यथेच्छया निजभवने प्रियतमासहिताः ॥ ६८ ॥
लोहभारवाहकोऽपि च तेषां दृष्ट्वा लक्ष्मीविभवम् । पश्चात्तापदवेन प्रतिदिवसं दहति हृदये ॥ ६९ ॥
इति लोहभारवाहकपुरुषसमं त्यज निजमभिप्रायम् । ज्ञानादिरत्नानि गृहाण शिवसौख्यहेतूनि ॥ ७० ॥
इति जल्पितश्च गुरुणा संवेगपरायणो महीनाथः । पादयो र्निपत्यैवं भणितुं समारब्धः ॥ ७१ ॥

तुब्भेहि समुद्धरिओ कारुन्नपरेहिं निवडिओ अहयं । अन्नाण-दुहसमुद्दे सुदेसणाजाणवत्तेणं ॥ ७२ ॥

सोऊणं नरनाहो दुविहं (धम्मं) पि भावियमणो सो । गिहिधम्मं पडिवज्जइ सम्मं बारसविहं तत्तो ॥ ७३ ॥

गच्छंतेहिं दिणेहिं रन्नो तह कह वि परिणओ धम्मो । जह खोभिउं न सक्का सक्काईया सुरा वि तयं ॥ ७४ ॥

संवेयभावियमणो पडिवज्जइ पोसहं अहऽन्नदिणे । कामाउरा विचिंतइ रविकंता नियमणे एवं ॥ ७५ ॥

अंगीकयजिणधम्मो जप्पभिइं चेव एस संजाओ । अच्छंतु ताव परिहासगब्भिणा संगमारंभा ॥ ७६ ॥

आलवणं पि हु तप्पभिइ चेव न कयं मए समं इमिणा । ता मारिऊणमेयं रज्जे पुत्तं निवेसेउं ॥ ७७ ॥

विलसामि जहिच्छाए इय चिंतिय दुट्ठबुद्धिसहियाए । पोसहपारणयदिणे दिन्नं हालाहलं रन्नो ॥ ७८ ॥

तो तिव्वविससमुब्भूयवेयणावेसविहुरसव्वंगो । सूरियकंताविलसियमेयं नाऊण चिंतेइ ॥ ७९ ॥

नियकज्जबद्धचित्ता महिलाऽणत्थाण कारण परमं । घिप्पइ न य रूवेण न यावि सम्माणदाणेणं ॥ ८० ॥

विज्जु व्व चवलहियया विसहररमणि व्व कुडिलगइगमणा । बहुनियडि-कूड-कवडाण मंदिरं निंदिया महिला ॥ ८१ ॥

नेहगुणक्खयकारी दीवयकलिय व्व पत्तनिहिया वि । निच्चं सकज्जलग्गा दहणसरूवा जए महिला ॥ ८२ ॥

ता किं मह एयाए चिंताए ? नियकज्जमेवेन्हि । साहिज्जउ जेणेत्तो थोवं मे जीवियव्वं ति ॥ ८३ ॥

इय चिंतिऊण तत्तो विप्फुरियअपुव्वगरुयसंवेगो । तत्थ ठिओ वि हु सरणं पडिवज्जइ वीरकमकमलं ॥ ८४ ॥

निद्दड्ढअट्ठकम्मिंधणाण सिद्धाण सुद्धबुद्धिजुओ । सरणं गओ म्हि संपइ सासयसिवसोक्खपत्ताणं ॥ ८५ ॥

युष्मद्भिः समुद्धरितः कारुण्यपरैः निपतितोऽहम् । अज्ञान - दुःखसमुद्रे सुदेशनायानपात्रेण ॥ ७२ ॥

श्रुत्वा नरनाथो द्विविधं [धर्म]मपि भावितमनाः सः । गृहधर्मं प्रतिपद्यते सम्यग् द्वादशविधं ततः ॥ ७३ ॥

गच्छद्भि दिनै राज्ञस्तथा कथमपि परिणतो धर्मः । यथा क्षोभयितुं न शक्ताः सुरा अपि तकम् ॥ ७४ ॥

संवेगभावितमनाः प्रतिपद्यते पौषधमथान्यदिने । कामातुरा विचिन्तयति रविकान्ता निजमनस्येवम् ॥ ७५ ॥

अङ्गीकृतजिनधर्मो यत्प्रभृतिश्चैवैष सञ्जातः । आसतां तावत्परिहासगर्भिणाः संगमारम्भाः ॥ ७६ ॥

आलपनमपि हु तत्प्रभृतिश्चैव न कृतं मया सममनेन । ततो मारयित्वैनं राज्ये पुत्रं निवेश्य ॥७७॥

विलसामि यथेच्छयेति चिन्तयित्वा दुष्टबुद्धिसहितया । पौषधपारणकदिने दत्तं हालाहलं राज्ञे ॥ ७८ ॥

ततस्तीव्रविषसमुद्भूतवेदनावशविधुरसर्वाङ्गः । सूर्यकान्ताविलसितमेतज्ज्ञात्वा चिन्तयति ॥ ७९ ॥

निजकार्यबद्धचित्ता महिलाऽनर्थानां कारणं परमम् । गृह्यते न च रुपेण न चापि सन्मानदानेन ॥ ८० ॥

विद्युदिव चपलहृदया विषधररमणीव कुटिलगतिगमना । बहुनिकृति-कूट-कपटानां मन्दिरं निन्दिता महिला ॥ ८१ ॥

स्नेहगुणक्षयकारी-दीपककलितेव पत्रनिहितेव । नित्यं स्वकार्यलग्ना दहनस्वरूपा जगति महिला ॥ ८२ ॥

ततः किं ममानया चिन्तया ? निजकार्यमवैदानीम् । साध्यतां येनेतः स्तोकं मे जीवितव्यमिति ॥ ८३ ॥

इति चिन्तयित्वा ततो विस्फुरितापूर्वगुरुकसंवेगः । तत्र स्थितोऽपि खलु शरणं प्रतिपद्यते वीरक्रमकमलम् ॥ ८४ ॥

निर्दग्धाष्टकर्मेन्धनानां सिद्धानां शुध्धबुद्धियुतः । शरणं गतोऽस्मि सम्प्रति शाश्वतशिवसौख्यप्रासानाम् ॥ ८५ ॥

भवपंकुक्खुत्तो हं सधम्महत्थावलंबदाणेणं । करुणाए समुद्धरिओ परोवयारेक्कसिएहिं ॥ ८६ ॥

पयकमलं सरणमहं पडिवज्जे तेसि केसिसूरीणं । समसत्तु-मित्तचित्ताण सुहय उवएसनिरयाणं ॥ ८७ ॥

अहरीकयकप्पद्दुम-चिंतामणि-कामधेणुमाहप्पो । सासयसिवसुहहेऊ जिणधम्मो होउ मह सरणं ॥ ८८ ॥

इय चउसरणगओ हं पाणिगणं सव्वमवि खमावेमि । समभावसहियहिययस्स मम वि सो खमउ सययं पि ॥८९॥

सूरियकंताउवरिं विसेसओ होउ मह समो भावो ! अवरज्झंति जओ इह पुव्वक्कयदुक्कयकम्माइं ॥ ९० ॥

इय भाविंतो सम्मं नरनाहो गहियअणसणो मारिउं । सोहम्मसूरियाभे पवरविमाणे समुप्पन्नो ॥ ९१ ॥

नामेण सूरियाभो तियसो वररिद्धि-कंतिसंजुत्तो । तत्तो चुओ समाणो महाविदेहम्मि सिज्झिहइ ॥ ९२ ॥

॥ रविकान्ताख्यानकं समाप्तम् ॥ ११४ ॥

इदानीं चुलण्याख्यानकं व्याख्यायते । तच्चेदम्-

पंचालजणवयाणं नयरमलंकारभूयमवि सुहयं । कंपिल्लं तं पालइ पउमावासो निवो बंभो ॥ १ ॥

सयलावरोहसारा चुलणी नामेण भारिया तस्स । तीए चउदससुमिणेहिं सूइओ बारसमचक्की ॥ २ ॥

चइउं सुरलोगाओ चरित्तिणो चित्तसाहुणो भाया । पुव्वभवकयनियाणो तइया नामेण संभूई ॥ ३ ॥

गब्भम्मि समुप्पन्नो जाओ कालक्कमेण सुमुहुत्ते । कयबंभदत्तनामो जा किर परिवड्ढिउं लग्गो ॥ ४ ॥

ताव य बंभो राया तिहुयणसाहारणेण रोएणं । अब्भाहओ समाणो सुत्थकए नियंयरजस्स ॥ ५ ॥

भवपङ्कक्षिप्तोऽहं सद्धर्महस्तावलम्बदानेन । करुणया समुद्धरितः परोपकारैकरसिकैः ॥ ८६ ॥

पदकमलं शरणमहं प्रतिपद्ये तेषां केशीसूरीणाम् । समशत्रु-मित्रचित्तानां सुखदोपदेशनिरतानाम् ॥ ८७ ॥

अधरीकृतकल्पद्रुम-चिन्तामणि-कामधेनुमाहात्म्यः । शाश्वतशिवसुखहेतु र्जिनधर्मो भवतु मम शरणम् ॥ ८८ ॥

इति चतुःशरणगतोऽहं प्राणिगणं सर्वमपि क्षामयामि । समभावसहितहृदयस्य ममापि स क्षामयतु सततमपि ॥ ८९ ॥

सूर्यकान्तोपरि विशेषतो भवतु मम समो भावः । अपराध्यन्ति यत इह पूर्वकृतदुष्कृतकर्माणि ॥ ९० ॥

इति भावयन् सम्यङ् नरनाथो गृहीतानशनो मृत्वा । सौधर्मसूर्याभे प्रवरविमाने समुत्पन्नः ॥ ९१ ॥

नाम्ना सूर्याभस्त्रिदशो वरर्द्धि-कान्ति संयुक्तः । ततश्च्युतस्सन् महाविदेहे सेत्स्यति ॥ ९२ ॥

॥ रविकान्ताख्यनकं समाप्तम् ॥

चूलन्याख्यानकम् ॥ ११५ ॥

पञ्चालजनपदानां नगरमलङ्कारभूतमपि सुभगम् । काम्पिल्यं तं पालयति पद्मावासो नृपो बह्मः ॥ १ ॥

सकलान्तःपुरसारा चुलनी नाम्ना भार्या तस्य । तया चतुर्दश स्वप्नैः सूचितो द्वादशमचक्री ॥ २ ॥

च्युत्वा सुरलोकाच्चरित्रिणश्चित्रसाधो र्भ्राता । पूर्वभवकृतनिदानस्तदा नाम्ना सम्भूतिः ॥ ३ ॥

गर्भे समुत्पन्नो जातः कालक्रमेण सुमुहूर्ते । कृतबह्मदत्तनामा यावत्किल परिवर्धितुं लग्नः ॥ ४ ॥

तावच्च बह्मो राजा त्रिभुवनसाधारणेन रोगेण । अभ्याहतस्सन् स्वस्थीकृते निजकराज्यस्य ॥ ५ ॥

कडयं कणेरुदत्तं तहावरं पुप्फचूलनरनाहं । दीहं च दीहदरिसी चउरे चउरे वि नियमित्ते ॥ ६ ॥
वाहरिऊण पयंपइ सप्पस्सयमेस बालओ तुम्हं । उच्छंगे पक्खित्तो जह पालइ मज्झ रज्जसिरिं ॥ ७ ॥
तह कायव्वं इय जंपिऊण वियणाए मरणमणुपत्तो । इयरेहिं वि मित्तेहिं दीहो जोगो त्ति कलिऊण ॥ ८ ॥
रज्जपरिपालणत्थं मुक्को मइपुव्वगं पयत्तेण । सो वि हु तं परिपालइ समईए बंभमंतिजुओ ॥ ९ ॥
तं जहा-
पाढइ कुमरं विहिणा समप्पिउं बंभदत्तमभिउत्तो । विउसाणंदस्स कलाविउस्स पासम्मि सूरिस्स ॥ १० ॥
चिंतइ कोट्ठायारं संभालइ धणसमिद्धभंडारं । कारवइ संधि-विग्गह-जाणाऽऽसणरायनीईओ ॥ ११ ॥
गयसाहणं निरूवइ परिभावइ तरलहयवरसमूहं । पडियरइ रहवरोहं परिपालइ पत्तिपरिवारं ॥ १२ ॥
चउरंगबलसमिद्धिं वड्ढारइ बुद्धि-पोरिससहाओ । अंतेउरं च रक्खइ चुलणीए समं विसेसेणं ॥ १३ ॥
एवं पइदिणमेसो रहम्मि सह तीए मंतणं कुणइ । सा वि हु तेण समाणं सया वि ससिणेहमालवइ ॥ १४ ॥
तओ य-
आलावाओ पेम्मं पेम्पाओ रई रईए विस्संभो । विस्संभाओ पणओ पंचविहो वड्ढिओ नेहो ॥ १५ ॥
अविवेयबहुलयाए हयजोव्वणस्स जीवाणं । दुद्दंतत्तणओ दढमिंदियतुरयाण पावाणं ॥ १६ ॥
पइभवमब्भासाओ एयाणं पावगामधम्माणं । दूरं जाणंताणि वि परोप्परं ताणि घडियाणि ॥ १७ ॥

कटकं करेणुदत्तं तथापरं पुष्पचूलनरनाथम् । दीर्घं च दीर्घदर्शी चत्वारांश्चत्वारोऽपि निजमित्रान् ॥ ६ ॥
व्याहृत्य प्रजल्पति सप्रशयमेष बालको युष्माकम् । उत्सङ्गे प्रक्षिप्तो यथा पालयति मम राज्यश्रियम् ॥ ७ ॥
तथा कर्त्तव्यमिति जल्पित्वा वेदनया मरणमनुप्राप्तः । इतरैरपि मित्रै दीर्घो योग्य इति कलित्वा ॥ ८ ॥
राज्यपरिपालनार्थं मुक्तो मतिपूर्वकं प्रयत्नेन । सोऽपि हु तं परिपालयति स्वमत्या ब्रह्ममन्त्रियुतः ॥ ९ ॥
तं यथा-
पाठयति कुमारं विधिना समर्प्य ब्रह्मदत्तमभ्युक्तः । विदुषानन्दस्य कलाविदोः पार्श्वे सूरिणः ॥ १० ॥
चिन्तयति कोष्टागारं सम्भालयति धनसमृद्धभण्डारम् । कारयति सन्धि-विग्रह-याना-ऽऽसनराजनीतयः ॥ ११ ॥
गजसाधनं निरुपयति परिभावयति तरलहयवरसमूहम् । प्रतिचरति रथवरौघं परिपालयति पत्तिपरिवारम् ॥ १२ ॥
चतुरंगबलसमृद्धं वर्धयति बुद्धि-पौरुषसहायः । अन्तःपुरं च रक्षति चुलण्या समं विशेषेण ॥ १३॥
एवं प्रतिदिनमेष रहसि सह तया मन्त्रणां करोति । सापि हु तेन समानं सदापि सस्नेहमालपति ॥ १४ ॥
ततश्च-
आलापात् प्रेम प्रेम्णो रती रत्या विश्रम्भः । विश्रम्भात्प्रणयः पञ्चविधो वर्धितः स्नेहः ॥ १५ ॥
अविवेकबहुलतयैतस्य हतयौवनस्य जीवानाम् । दुर्दान्तत्वाद् दृढमिन्द्रियतुरगाणां पापानाम् ॥ १६ ॥
प्रतिभवमभ्यासादेतयोः पापकयोरधर्मयोः । दूरं जानन्तान्यपि परस्परं तानि घटितानि ॥ १७ ॥

अवि य-

सविलासहसिय-जंपिय-सकडक्खनिरिक्खणाइणा दीहो । समरंगणसूरो वि हु तीए विहिओ सवसवत्ती ॥ १८ ॥

तथा चाभ्यधायि-

मत्तेमकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः, क्रूरप्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ।

सत्यं ब्रवीमि कृतिनां पुरतः प्रसह्य, कन्दर्पदर्पजयिनो विरला मनुष्याः ॥ १९ ॥

तत्तो तं नियमित्तस्स संतियं सुकयमवगणेऊण । सह तीए मोहियमई लग्गो सक्खं अकज्जम्मि ॥ २० ॥

दीहो अदीहदरिसी तीए विहिओ सुदीहदरिसी वि । अहवा वि महिलियाहिं गिरि व्व गरुया वि भिज्जंति ॥ २१ ॥

भणियं च-

नीयंगमाहिं सुपओहराहिं उप्पिच्छ-मंथरगईहिं । महिलाहिं निन्नयाहि व गिरि व्व गरुया वि भिज्जंति ॥ २२ ॥

घणमालाओ व समुल्लसंतसुपओहराओ वड्ढंति । मोहविसं महिलाओ गोणसगरलं व पुरिसस्स ॥ २३ ॥

एवं सो तीए समं विजणवसाओ अकज्जमावन्नो । एत्तो च्चिय एयाहिं रहो विरूद्धो सयाणाण ॥ २४ ॥

उक्तं च-

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा, न विविक्तासनो भवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामः, पण्डितोऽप्यत्र मुह्यति ॥ २५ ॥

अन्नं च महिलियाणं रहम्मि न हु दंसणं हवइ जाव । सद्धिं परपुरिसेणं ताव सइत्तं जओ भणियं ॥ २६ ॥

रहो नास्ति क्षणो नास्ति, नास्ति प्रार्थयिता नरः । तेन नारद ! नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥ २७ ॥

एवं सो पच्छन्नो ववहरमाणो जणेण विन्नाओ । गोविज्जंतं पि जओ अकज्जमिह नज्जइ जयम्मि ॥ २८ ॥

तो जणपरंपराए नायमिमं बंभदत्तकुमरेण । तो तेणं नियचित्ते विचिंतियं चउरमइएण ॥ २९ ॥

अपि च -

सविलासहसित-जल्पित-सकटाक्षनिरीक्षणादिना दीर्घः । समराङ्गणशूरोऽपि हु तया विहितः स्ववशवर्त्ती ॥ १८ ॥

ततस्तं निजमित्रस्य सत्कं सुकृतमवगणय्य । सह तया मोहितमति र्लग्नः साक्षादकार्ये ॥ २० ॥

दीर्घोऽदीर्घदर्शी तया विहितः सुदीर्घदर्श्यपि । अथवापि महिलाभि र्गिरिरिव गुरुका अपि भिद्यन्ते ॥ २१ ॥

भणितं च -

नीम्नंगमाभिः सुपयोधराभिरुत्त्रस्तमन्थरगतिभिः । महिलाभि र्निम्नगाभिरिव गिरिरिव गुरुका अपि भिद्यन्ते ॥ २२ ॥

घनमाला इव समुल्लसत्सुपयोधरा वर्धन्ते । मोहविषं महिला गोनसगरलमिव पुरुषस्य ॥ २३॥

एवं स तया समं विजनवशादकार्यमापन्नः । इतश्चैवैताभी रहो विरुद्धः सकर्णानाम् ॥ २४ ॥

अन्यच्च महिलाणां रहसि न खलु दर्शनं भवति यावद् । सार्द्धं परपुरुषेण तावत्सतित्वं यतो भणितम् ॥ २६ ॥

एवं स प्रच्छन्नो व्यवहरन् जनेन विज्ञातः । गोप्यमानमपि यतोऽकार्यमिह ज्ञायते जगति ॥ २८ ॥

ततो जनपरम्परया ज्ञातमिदं ब्रह्मदत्तकुमारेण । तदा तेन निजचित्ते विचिन्तितं चतुरमतिना ॥ २९ ॥

जइ पयडं चिय संपइ पच्चारिज्जंति कह वि हु इमाणि । ता लज्जं मोत्तूणं विरूवमवि किं पि हु कुणंति ॥ ३० ॥

जम्हा मयणायत्ता मणुया मारंति मायरं पियरं । पियपुत्तं पि हु तम्हा छन्नं केण वि पयारेण ॥ ३१ ॥

जाणावेमि इमाइं कह वि हु विरमंति जइ अकज्जाओ । तो लट्ठं पयडं पुण पुच्छिज्जंतं नयविरुद्धं ॥ ३२ ॥

उक्तं च-

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च । वञ्चनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥

इय परिभाविय नयनिउणमन्नया तेसिमेव बोहत्थं । करकलिकाय-कोइलजुयलं संजमिय निबिडमिमो ॥ ३४ ॥

अंतेउमरमज्झेणं वच्चइ उग्गिन्नकंबियाहत्थो । किमिमं वरायमेवं बद्धं तुह किं कयमिमेण ? ॥ ३५ ॥

इय पुट्ठो सो जंपइ जणेण एयं विजाइयं जुयलं । दिट्ठं मए अकज्जं कुणमाणं नयरमज्झम्मि ॥ ३६ ॥

तत्तो हं नियनयरे अनयं न सहामि तेण पावमिमं । निहणामि एवमन्नो वि को वि जो काहिइ विरूवं ॥ ३७ ॥

निग्गहियव्वोऽवस्सं सो वि मए इय सुणित्तु दीहनिवो । जंपइ चुलणिं पइ नायकुमरगंभीरभिप्पाओ ॥ ३८ ॥

काओ हं तं पुण कोइल त्ति जाणावियं कुमारेण । ता न हु सोहणमेयं सा वि हु जंपइ अनायनया ॥ ३९ ॥

सिसुरूवाणं ओ ! केत्तियाणि कन्नम्मि कुणसि किच्चाणि ? । बालत्तणओ जंपंति जं व तं वा वि हु इमाणि ॥४०॥

अन्नम्मि दिणे संकिन्नहत्थिणी भद्दजाइओ हत्थी । बंधिय तहेव वच्चइ कुमरो दीहो वि भणइ तयं ॥ ४१ ॥

संपइ किं भणसि पिए ! ? एयं पि हु अम्ह बोहणनिमित्तं । कुमरेण कयं तत्तो तं चिंतसु किं पि हु उवायं ॥ ४२ ॥

यदि प्रकटं चैव सम्प्रति प्रतार्येते कथमपि खल्विमौ । ततो लज्जां मुक्त्वा विरुपमपि किमपि हु कुरुतः ॥ ३० ॥

यस्मान्मदनायत्ता मनुष्या मारयन्ति मातरं पितरम् । प्रियपुत्रमपि हु तस्माच्छन्नं केनापि प्रकारेण ॥ ३१ ॥

ज्ञापयामीमौ कथमपि हु विरमतो यथाऽकार्यात् । तदा सुष्ठुः प्रकटं पुनःपृच्छ्यमाणं नयविरुद्धम् ॥ ३२ ॥

इति परिभाव्य नयनिपुणमन्यदा तयोरेव बोधार्थम् । करकलितकाक-कोकिलयुगलं संयम्य निबिडमयम् ॥ ३४ ॥

अन्तःपुरमध्येन व्रजत्युदीर्णकम्बिकाहस्तः । किमिमं वराकमेवं बद्धं तव किं कृतमनेन ? ॥ ३५ ॥

इति पृष्टः स जल्पति जनेन एतद्विजातिकं युगलम् । दृष्टं मयाऽकार्यं क्रियमाणं नगरमध्ये ॥ ३६ ॥

ततोऽहं निजनगरे ऽनयं न सहे तेन पापमिमम् । निहन्मि एवमन्योऽपि कोऽपि यः करिष्यति विरुपम् ॥ ३७ ॥

निगृहीतव्योऽवश्यं सोऽपि मयेति श्रुत्वा दीर्घनृपः । जल्पति चुलणिं प्रति ज्ञातकुमारगम्भीराभिप्रायः ॥ ३८ ॥

काकोऽहं त्वं पुनः कोकिलेति ज्ञापितं कुमारेण । ततो न खलु शोभनमेतत्सापि हु जल्पत्यज्ञातनया ॥ ३९ ॥

शिशुरुपाणामो ! कियन्ति कर्णे कुरुषे कृत्यानि ? । बालत्त्वाज्जल्पति यद्वा तद्वापि खल्विमानि ॥ ४० ॥

अन्यस्मिन् दिने सङ्कीर्णहस्तिनी भद्रजातिको हस्ती । बदध्वा तथैव गच्छति कुमारो दीर्घोऽपि भणति तकाम् ॥ ४१ ॥

संप्रति किं भणसि प्रिये !? एतदपि खल्वावयो र्बोधननिमित्तम् । कुमारेण कृतं ततस्तं चिन्तय किमपि खलूपायम् ॥४२॥

जओ-

मउओ वि पिए ! छिज्जइ वाही वालो वि हम्मए सत्तू । मइ जीवंते अन्ने वि तुह सुया सुयणु ! होहिंति ॥ ४३ ॥

एवं सा सिक्खविया जंपइ कहमेरिसं महापावं । नियजाए ववसिज्जइ मेच्छाण वि निंदणिज्जं ? इति ॥ ४४ ॥

एवं पइदिवसं पि हु चोइज्जंती चरित्तपरिचता । मन्नइ तं पि हु पावा अहो ! हु मोहस्स माहप्पं ॥ ४५ ॥

परमेयं पयडं चिय किज्जंतं जणइ गरुयमववायं । ता पच्छन्नं कइया वि कज्जिही सहसु कइ वि दिणे ॥ ४६ ॥

इय ताणि कुमरमारणपदुट्ठचित्ताणि ताव अच्छंति । अलहंताणि कुओ वि हु सुविसिट्ठं मारणोवायं ॥ ४७ ॥

कुमरो वि हु वरधणुणा सद्धिं पिउबंभमंतितणएण । चिट्ठइ विसिट्ठकीलाहि कीलमाणो निरुव्विग्गो ॥ ४८ ॥

तथा हि –

कइया वि हु परिवाहइ तुरंगमे तुरयवाहियालीए । कइया वि हत्थिसिक्खानिउणो कीलावइ करिंदे ॥ ४९ ॥

कइया वि हु कीलापव्वएसु कीलइ कुमारपरियरिओ । कइया वि धणुव्वेए परिस्समं कुणइअव्वहिओ ॥ ५० ॥

कइया वि मल्लजुद्धं विउसविणोयं कयाइ सत्थगयं । इयं विविहकलाविसयं कुणइ पबंधेणमब्भासं ॥ ५१ ॥

नाओ धणुणा नियजणयमंतिणा एस वइयरो सव्वो । कुमारविणासणविसओ तो भणिओ तेण दीहनिवो ॥ ५२ ॥

तं चिंतसु रज्जमिमं मज्झ पए संपयं सुओ एस । कायव्वो अहयं पुण परलोयहिए जइस्सामि ॥ ५३ ॥

सो चिंतइ लट्ठमिमो जइ ओसहमंतरेण मह वाही । नासइ तो तेणुत्तं समीहियं कुणसु किमजुत्तं ? ॥ ५४ ॥

यतः-

मृदुकोऽपि प्रिये ! छिद्यते व्याधि र्बालोऽपि हन्यते शत्रुः । मयि जीवत्यन्येऽपि तव सुताः सुतनु ! भविष्यन्ति ॥ ४३ ॥

एवं सा शिक्षयिता जल्पति कथमीदृशं महापापम् । निजजाते व्यवस्यते म्लेच्छानामपि निन्दनीयम् ? इति ॥ ४४ ॥

एवं प्रतिदिवसमपि हु चोद्यमाना चरित्रपरित्यक्ता । मन्यते तमपि हु पापाहो ! हु मोहस्य महात्म्यम् ॥ ४५ ॥

परमेतत्प्रकटं चैव क्रियमाणं जनयति गुरुकमपवादम् । ततः प्रच्छन्नं कदापि करिष्यते सहस्व कत्यपि दिनान् ॥ ४६ ॥

इति तौ कुमारमारणप्रदुष्टचितौ तावदासेते । अलभमानौ कुतोऽपि हु सुविशिष्टं मारणोपायम् ॥ ४७ ॥

कुमारोऽपि हु वरधनुना सार्द्धं पितृब्रह्ममन्त्रितनयेन । तिष्ठति विशिष्ठक्रीडाभिः क्रीडन् निरुद्विग्नः ॥ ४८ ॥

तथाहि -

कदापि हु परिवाहयति तुरंगमांस्तुरगवाहलिकया । कदापि हस्तिशिक्षानिपूणः क्रीडयति करीन्द्रान् ॥ ४९ ॥

कदापि हु क्रीडापर्वतेषु क्रीडति कुमारपरिवारितः । कदापि हु धनुर्वेदे परिश्रमं करोत्यवहितः ॥ ५० ॥

कदापि मल्लयुद्धं विद्वद्विनोदं कदापि शास्त्रगतम् । इति विविधकलाविषयं करोति प्रबन्धेनाभ्यासम् ॥ ५१ ॥

ज्ञातो धनुना निजजनकमन्त्रिणैष व्यतीकरः सर्वः । कुमारविनाशनविषयस्ततो भणितस्तेन दीर्घनृपः ॥ ५२ ॥

त्वं चिन्तय राज्यमिदं मम पदे साम्प्रतं सुत एषः । कर्त्तव्योऽहं पुनः परलोकहिते यतिष्ये ॥ ५३ ॥

स चिन्तयति सुष्ठुरयं यद्यौषधमन्तरेण मम व्याधिः । नश्यति तदा तेनोक्तं समीहितं कुरुष्व किमयुक्तम् ? ॥ ५४ ॥

तो तेण नयरबाहिं सत्तायरं करावियं तत्थ । अच्छइ पेच्छंतो दुट्ठविलसियं ताण पावाणं ॥ ५५ ॥
चुलणीए चिंतियमिमो रइविग्घकरो कहं किर कुमारो । मारेयव्वो ? तो तीए निच्छियं मज्झ भायसुया ॥ ५६ ॥
वयपत्ता तीए समं वीवाहं कारवेमि कुमरस्स । महया विच्छड्डेणं तस्सेव य वासभवणकए ॥ ५७ ॥
कारविय चित्तरुवं जउपासायं पहाणखंभजुयं । तम्मि य सयणनिमित्तं सवहूयं पक्खिविय कुमरं ॥ ५८ ॥
वीसं पि हु पासायं पज्जालिस्सं कयम्मि एवमिमो । मरिही अवन्नवाओ वि रक्खिओ मज्झ किर होही ॥ ५९ ॥
इय चिंतिउण कहियं दीहनरिंदस्स सोहणमिमं ति । पडिवज्जिउण तेणं पासायाई तहेव कयं ॥ ६० ॥
नायमिमं सचिवेणं तओ सुरंगा खणाविया तेण । जउहर-सत्तायाराणमंतरालम्मि पच्छन्ना ॥ ६१ ॥
जाणाविओ वरधणू जया कुओ वि हु भयं भवइ एत्थं । तइया पन्हिपहारं दाविज्जसु कुमरमेत्थ पए ॥ ६२ ॥
नीहरिय सुरंगाए सत्तायारम्मि मज्झ पासम्मि । आगच्छेज्ज सकुमरो पमाइयव्वं न एत्थऽत्थे ॥ ६३ ॥
तत्तो चुलणीवयणा तहेव पज्जालियम्मि पासाए । पन्हिपहारं कुमरो कारविओ भणियभूमीए ॥ ६४ ॥
निग्गंतूण य तत्तो पत्तो घणुमंतिणो सयासम्मि । तेण वि सव्वो कहिओ कुमारमारणकयपवंचो ॥ ६५ ॥
चुलणी-दीहभएणं तत्तो ठाणाओ जह विणिग्गमिया । आरोढुं तुरएहिं जहा पणट्ठा अरन्नम्मि ॥ ६६ ॥
कालेण जहा जाओ चोद्दसरयणाहिवो छखंडवई । भरहम्मि बंभदत्तो सुयाओ सव्वं तहा नेयं ॥ ६७ ॥
एत्थ पुण पत्थुयत्थे एत्तियमेत्तं सुहं कहिज्जंतं । तो तत्तियमेव मए भणियं ति कयं पसंगेण ॥ ६८ ॥

ततस्तेन नगरबाह्यं सत्रागारं कारितं तत्र । आस्ते पश्यन् दुष्टविलसितं तयोः पापयोः ॥ ५५ ॥
चुलण्या चिन्तितमयं रतिविघ्नकरः कथं किल कुमारः । मारयितव्यः ? ततस्तया निश्चितं मम भ्रातृसुता ॥ ५६ ॥
वयःप्राप्ता तया समं विवाहं कारयामि कुमारस्य । महता विभवेन तस्यैव च वासभवनकृते ॥ ५७ ॥
कारितं चित्ररुपं चतुःप्रासादं प्रधानस्तम्भयुतम् । तस्मिंश्च शयननिमित्तं सवधूकं प्रक्षिप्य कुमारम् ॥ ५८ ॥
विश्वगपि हु प्रासादं प्रज्वालिष्यामि कृत एवमयम् । मरिष्यत्यवर्णवादोऽपि रक्षितो मम किल भविष्यति ॥ ५९ ॥
इति चिन्तयित्वा कथितं दीर्घनरेन्द्रस्य शोभनमिदमिति । प्रतिपद्य तेन प्रासादादिस्तथैव कृतम् ॥ ६० ॥
ज्ञातमिदं सचिवेन ततः सुरङ्गा खानिता तेन । जतुगृह-सत्रागारयोरन्तराले प्रच्छन्ना ॥ ६१ ॥
ज्ञापितो वरधनु र्यदा कुतोऽपि खलु भयं भवत्यत्र । तदा पार्ष्णिप्रहारं दापयेः कुमारमत्र पदे ॥ ६२ ॥
निःसृत्य सुरङ्गया सत्रागारे मम पार्श्वे । आगच्छेःसकुमारः प्रमादितव्यं नात्रार्थे ॥ ६३ ॥
ततश्चुलनीवचनात्तथैव प्रज्वालिते प्रासादे । पार्ष्णिप्रहारं कुमारः कारितो भणितभूमौ ॥ ६४ ॥
निर्गत्य च ततः प्राप्तो धनुमन्त्रिणः सकाशे । तेनापि सर्वः कथितः कुमारमारणकृतप्रपञ्चः ॥ ६५ ॥
चुलणी-दीर्घभयेन ततः स्थानाद्यथा विनिर्गतौ । आरुह्य तुरगैर्यथा प्रणष्टावरण्ये ॥ ६६ ॥
कालेन यथा जातश्चतुर्दशरत्नाधिपः षट्खण्डाधिपतिः । भरते ब्रह्मदत्तः श्रुतात् सर्वं तथा ज्ञेयम् ॥ ६७ ॥
अत्र पुनः प्रस्तुतार्थे एतावन्मात्रं सुखं कथ्यमानम् । ततस्तावदेव मया भणितमिति कृतं प्रसंगेन ॥ ६८ ॥

एवं दुहावहाणं नमो त्थु विसयाणिमाण पावाण । जाण कए जणणी वि हु ववसइ पुत्ते वि पावमिमं ॥ ६९ ॥

जंतु खयं सिग्धमिमे विसया अहवा विसंतु पायलं । जाण कए जणणी वि हु ववसइ पुत्ते वि पावमिमं ॥ ७० ॥

निवडउ य निरालंबं गिरिसिहराओ इमा विसयवंछा । जीए कए जणणी वि हु ववसइ पुत्ते वि पावमिमं ॥ ७१ ॥

॥ चुलण्याख्यानकं समाप्तमिति ॥ ११५ ॥

अधुना कोणिकाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम् –

मेरु व्व नाभिभूयं पच्चंतपुरं समत्थि वित्थिन्नं । गयणं व कविविराइयमहीणवं भोगिभवणं व ॥ १ ॥

तत्थऽत्थि निवो निस्सेससत्तुसंदोहसंजणियअंतो । जियसत्तू सयलकलाकलावलक्खणकलियदेहो ॥ २ ॥

निस्सेसगुणनिवासो नामेण सुमंगलो सुओ तस्स । तत्थ य सेणयनामो मइसायरमंतिणो पुत्तो ॥ ३ ॥

दूरीकयमइपसरो पिंगलनयणो मसीकसिणदेहो । उद्दंतुरो य खुज्जो कसिण-कुरुवाण दिट्ठंतो ॥ ४ ॥

अवइण्णो दिट्ठिपहं कुमरस्सेसो अहऽन्नया कह वि । तो कुमारो नच्चावइ तं दाउं हत्थतालाओ ॥ ५ ॥

अन्नेहिं वि हासेहिं केलिपिओ तं विडंबए निच्चं । एवं विनडिज्जंता विचित्तभंगेहिं कुमरेण ॥ ६ ॥

निव्वेयमुवगओ सो कुमरस्स य किं पि काउमसमत्थो । गिण्हइ तावसदिक्खं तव्वेलमभिग्गहं च इमं ॥ ७ ॥

मासंते कायव्वं पारणयं तत्थ वेगगेहाओ । न हु गंतव्वं बीए नियत्तियव्वं अलाभे वि ॥ ८ ॥

कल्लालकुंभियाए मज्झगएणं निदाहमासे वि । चिट्ठेयव्वं ति मए तहेव सव्वं इमो कुणइ ॥ ९ ॥

एवं दुःखावहेभ्यो नमोऽस्तु विषयेभ्य एतेभ्यः पापेभ्यः । येषां कृते जनन्यपि खलु व्यवस्यति पुत्रेऽपि पापमिदम् ॥ ६९ ॥

यान्तु क्षयं शीघ्रमिमे विषया अथवा विशन्तु पातालम् । येषां कृते जनन्यपि खलु व्यवस्यति पुत्रेऽपि पापमिदम् ॥ ७० ॥

निपततु च निरालम्बं गिरिशिखरादिमा विषयवाञ्छा । यस्याःकृते जनन्यपि खलु व्यवस्यति पुत्रेऽपि पापमिदम् ॥ ७१ ॥

॥ चुलण्याख्यानकं समाप्तमिति ॥ ११५ ॥

कोणिकाख्यानकम् ॥ ११६ ॥

मेरुरिव नाभीभूतं प्रत्यन्तपुरं समस्ति विस्तीर्णम् । गगनमिव कविविराजितमभिनवं भोगिभवनमिव ॥ १ ॥

तत्रास्ति नृपः निःशेषशत्रुसन्दोहसञ्जनितान्तः । जितशत्रुः सकलकलाकलापलक्षणकलितदेहः ॥ २ ॥

निःशेषगुणनिवासो नाम्ना सुमङ्गलः सुतस्तस्य । तत्र च सेनकनामा मतिसागरमन्त्रिणः पुत्रः ॥ ३ ॥

दूरीकृतमतिप्रसरः पिङ्गलनयनो मषीकृष्णदेहः । उद्दन्तुरश्च कुब्जः कृष्ण-कुरुपाणां दृष्टान्तः ॥ ४ ॥

अवतीर्णो दृष्टिपथं कुमारस्यैषोऽथान्यदा कथमपि । तदा कुमारो नर्तयति तं दत्वा हस्ततालाः ॥ ५ ॥

अन्यैरपि हास्यैः केलिप्रियस्तं विडम्बयति नित्यम् । एवं विनट्यमानो विचित्रभङ्गैः कुमारेण ॥ ६ ॥

निर्वेदमुपगतः स कुमारस्य च किमपि कर्तुमसमर्थः । गृह्णाति तापसदिक्षां तद्वेलमभिग्रहं चेदम् ॥ ७ ॥

मासान्ते कर्त्तव्यं पारणकं तत्र वैकगृहात् । न हु गन्तव्यं द्वितीये निवर्त्तितव्यमलाभेऽपि ॥ ८ ॥

कल्यपालकुम्भिकाया मध्यगतेन निदाघमासेऽपि । स्थातव्यमिति मया तथैव सर्वमयं करोति ॥ ९ ॥

पंचत्तं संपत्ते जणए जाओ सुमंगलो राया । कल्लालकुंभियगयं तं दट्ठुमहऽन्नाया कह वि ॥ १० ॥
को एसो ? इय पुच्छइ तो सन्निहिएहिं सव्वमवि कहियं । तयणु दया संपन्ना रन्नो तो तत्थ आगंतु ॥ ११ ॥
भणिओ पणामपुव्वं जं पुव्विं विनडिओ तुमं भद्द ! । तं सव्वं सहियव्वं अवरं च तए इमं कज्जं ॥ १२ ॥
काऊण गुरुपसायं पारणए मह गिहम्मि भोत्तव्वं । रन्नो निब्बंधेणं तत्तो अब्भुवगयं तेण ॥ १३ ॥
संपत्ते पारणए स तवस्सी जाव निवगिहं पत्तो । संपन्नं ताव सरीरकारणं नरवरिंदस्स ॥ १४ ॥
तो दारवालिएहिं पडिसिद्धो कुंभियाए पविसित्तुं । तह चेव खिवइ मासं बीयं पि हु सेणगतवस्सी ॥ १५ ॥
रोगविवज्जियदेहो नरनाहो वि हु दिणेहिं संजाओ । परियाणिय तव्वइयरमापुट्ठे परियणजणम्मि ॥ १६ ॥
तो लज्जाजुत्तमणो तस्स समीवे पुणो वि गंतूण । अत्ताणं निंदेउं भोयणकज्जे पुणो भणइ ॥ १७ ॥
तह कह वि महुरवयणेणऽब्भुवगच्छाविओ स भूवइणा । जह बीए पारणए सो पत्तो तग्गिहे जाव ॥ १८ ॥
अपडुसरीरं रन्नो केणइ रोगेण ताव संजायं । दट्ठुं च जणं वक्खित्तमाणसं पडिनियत्तेउं ॥ १९ ॥
तह चेव कुंभियाए मज्झगओ खिवइ तइयमासं पि । उल्लाघेणं रन्ना विलक्खचित्तेण तो गंतुं ॥ २० ॥
पाएसु निवडिऊणं पुणो पुणो खामिऊण बहुवेलं । मन्नाविओ य पारणयमइनिबंधेण पुण वेसो ॥ २१ ॥
नरवइभवणम्मि गओ तत्तो सो जाव तइयवेलं पि । ताव नरनाहदेहे दाहजरो वट्टए अहियं ॥ २२ ॥
तह कह वि जहा सव्वो परियणलोगो दुहाउलीभूओ । निब्भच्छिऊण बाढं पडिहारेहिं तओ एसो ॥ २३ ॥

पञ्चत्वं सम्प्राप्ते जनके जातः सुमङ्गलो राजा । कल्यपालकुम्भिगतं तं दृष्ट्वाऽथान्यदा कथमपि ॥ १० ॥
क एषः ? इति पृच्छति ततः सन्निहितैः सर्वमपि कथितम् । तदनु दया सम्पन्ना राज्ञस्ततस्तत्रागत्य ॥ ११ ॥
भणितः प्रणामपूर्वं यत्पूर्वं विनटितस्त्वं भद्र ! । तत्सर्वं सोढव्यमपरं च त्वयेदं कार्यम् ॥ १२ ॥
कृत्वा गुरुप्रसादं पारणके मम गृहे भोक्तव्यम् । राज्ञो निर्बन्धेन ततोऽभ्युपगतं तेन ॥ १३ ॥
सम्प्राप्ते पारणे स तपस्वी यावन्नृपगृहं प्राप्तः । संपन्नं तावच्छरीरकारणं नरवरेन्द्रस्य ॥ १४ ॥
ततो द्वारपालैः प्रतिषिद्धः कुम्भिकायां प्रविश्य । तथा चैव क्षिपति मासं द्वितीयमपि हु सेनकतपस्वी ॥ १५ ॥
रोगविवर्जितदेहो नरनाथोऽपि हु दिनैः सञ्जातः । परिज्ञाय तद्व्यतीकरमापृष्टे परिजनजने ॥ १६ ॥
ततो लज्जायुक्तमनास्तस्य समीपे पुनरपि गत्वा । आत्मानं निन्दित्वा भोजनकार्ये पुन र्भणति ॥ १७ ॥
तथा कथमपि मधुरवचनेनाभ्युपगमितः स भूपतिना । यथा द्वितीये पारणके स प्राप्तस्तद्गृहे यावत् ॥ १८ ॥
अपटुशरीरं राज्ञः केनचिद्रोगेण तावत्सञ्जातम् । दृष्ट्वा च जनं व्याक्षिप्तमानसं प्रतिनिर्वत्य ॥ १९ ॥
तथा चैव कुम्भिकाया मध्यगतः क्षिपति तृतीयमासमपि । रोगमुक्तेन राज्ञा विलक्षचितेन ततो गत्वा ॥ २० ॥
पादयो र्निपत्य पुनः पुनः क्षामयित्वा बहुवेलम् । मानितश्च पारणकमतिनिबन्धेन पुनर्वैषः ॥ २१ ॥
नरपतिभवने गतस्ततः स यावत्तृतीयवेलमपि । तावन्नरनाथदेहे दाहज्वरो वर्ततेऽधिकम् ॥ २२ ॥
तथा कथमपि यथा सर्वः परिजनलोको दुःखाकूलीभूतः । निर्भर्त्स्यात्यन्तं प्रतिहारैस्तत एषः ॥ २३ ॥

भणिऊणमिमं वयणं गयलक्खण ! तुह कए पहू अम्ह । वेलं वेलमणत्थं पत्तो एयारिसमणिट्ठं ॥ २४ ॥

मा पुणरवि एज्ज तुम गेहम्मि दसद्धियाउं[1] दाऊण । सीसे धेत्तूण गले घराओ निस्सारिओ तेहिं ॥ २५ ॥

सो वि पुणो सट्ठाणे गंतूणं कोवकलियसयलंगो । चिंतइ एएण जहा कुमारभावम्मि नरवइणा ॥ २६ ॥

तह कह वि विनडिओ हं जहा मए तावसं वयं गहियं । ता अज्ज वि न हु तुट्ठो इन्हिं विनडइ जमेवं ति ॥ २७ ॥

जइ पुण सच्चं एसो निमंतए नियगिहम्मि भत्तीए । ता भणइ किं न मंतिप्पभिइजणं एत्थ कज्जम्मि ॥ २८ ॥

कोववसारुणदेहो फुरंतहोट्ठो खलंतवयणकमो । परिगलियसेयजल बिंदुजालओ तवगुणेहिं समं ॥ २९ ॥

परिचत्तगुणग्गामो समयं सत्थत्थजणियबोहेण । मलिणीकयनियचित्तो सद्धिं बुद्धिप्पवंचेण ॥ ३० ॥

अवहत्थियमज्जाओ गुरूण सद्धिं सधम्मुबुद्धीए । समयं कुलक्कमेणं दूरं परिहरियपरलोओ ॥ ३१ ॥

विलसंतकोवतिमिरावलुत्तनयणो समं समग्गेण । नरनाहं पइ तत्तो स नियाणं काउमाढत्तो ॥ ३२ ॥

तो जइ चिन्नस्स मए तवस्स सामत्थमत्थि एत्थेव । ता होज्जमिमस्स विणासकारणं परभवम्मि अहं ॥ ३३ ॥

इय मरिउं सनियाणो संजाओ वाणमंतरेसु सुरो । एएण विरागेणं (स) पत्थिवो वि हु तवस्सिवयं ॥ ३४ ॥

धेत्तूण तयं पालिय पंचत्तं पाविऊण संजाओ । तत्थेव वंतरत्ते सो वि य पढमं चवित्तु तओ ॥ ३५ ॥

उववन्नो रायगिहे विक्खाओ सेणिओ महीनाहो । मत्तपरपक्खगयघडवियारणुड्डुमरजयसिंहो ॥ ३६ ॥

भणित्वेदं वचनं गतलक्षण ! तव कृते प्रभुरस्माकम् । वेलां वेलामनर्थं प्राप्त ईदृशमनिष्टम् ॥ २४ ॥

मा पुनरप्यायास्त्वं गृहं पञ्चटक्करान् दत्वा । शीर्षे गृहीत्वा गले गृहान्निःसारितस्तैः ॥ २५ ॥

सोऽपि पुनः स्वस्थाने गत्वा कोपकलितसकलाङ्गः । चिन्तयत्येतेन यथा कुमारभावे नरपतिना ॥ २६ ॥

तथा कथमपि विनाटितोऽहं यथा मया तापसं व्रतं गृहीतम् । ततोऽद्यापि न हु तुष्ट इदानीं विनाटयति यदेवमिति ॥ २७ ॥

यदि पुनः सत्यमेष निमन्त्रयति निजगृहे भक्त्या । ततो भणति किं न मन्त्रिप्रभृतिजनमत्र कार्ये ॥ २८ ॥

कोपवशारुणदेहः स्फुरदौष्ठः स्खलद्वचनक्रमः । परिगलितस्वेदजलबिन्दुजालस्तपोगुणैः समम् ॥ २९ ॥

परित्यक्तगुणग्रामः समकं शास्त्रार्थजनितबोधेन । मलिनीकृतनिजचित्तः सार्द्धं बुद्धिप्रपञ्चेन ॥ ३० ॥

अपहस्तितमर्यादो गुरुणां सार्द्धं सद्धर्मबुद्ध्या । समकं कुलक्रमेण दूरं परिहृतपरलोकः ॥ ३१ ॥

विलसत्कोपतिमिरावलुप्तनयनः समं समग्रेण । नरनाथं प्रति ततः स निदानं कर्तुमारब्धः ॥ ३२ ॥

ततो यदि चीर्णस्य मया तपसः सामर्थ्यमस्त्यत्रैव । तदा भविष्याम्येतस्य विनाशकारणं परभवेऽहम् ॥ ३३ ॥

इति मृत्वा सनिदानः सञ्जातो वानव्यन्तरेषु सुरः । एतेन विरागेण [स]पार्थिवोऽपि हु तपस्विव्रतम् ॥ ३४ ॥

गृहीत्वा तकं पालयित्वा पञ्चत्वं प्राप्य सञ्जातः । तत्रैव व्यन्तरत्वे सोऽपि च प्रथमं च्युत्वा ततः ॥ ३५ ॥

उत्पन्नो राजगृहे विख्यातः श्रेणिको महीनाथः । मत्तपरपक्षगजघटविदारणोत्कृष्टजयसिंहः ॥ ३६ ॥

---

१. "पंच टक्कर"

सेणगजीवो (सो) चेल्लणाए अइवल्लहाए गब्भम्मि । पुत्तत्तेणुप्पन्नो तत्तो तस्साणुभावेण ॥ ३७ ॥
चिंतेइ इमं देवी नयणेहिं वि जइ न दीसए राया । अन्नं च चित्तमज्झे सया पओसं समुव्वहइ ॥ ३८ ॥
गब्भाणुभावदोसो इय जाणिय चेल्लणाए देवीए । पाडेऊणाऽऽढत्तो बहुसाडण-पाडणाईहिं ॥ ३९ ॥
न य पडइ तह वि एसो देवीए इमो य दोहलो जाओ । उयरं वियारिऊणं मंसं भक्खेमि जइ रन्नो ॥ ४० ॥
तो सा विसायपरिकलियमाणसा विलविऊणमइबहुसो । जंपइ हा देव ! तए किं दिन्नो मज्झ दइयस्स ॥ ४१ ॥
अच्चंतपरमसत्तू ? जो मज्झ वि एरिसं जणइ कुमइं । ता कुमरेण वि अलमेत्थ मज्झ गब्भट्ठिओ जो उ ॥ ४२ ॥
चिंतवइ मज्झ मणवल्लहम्मि एसो अणिट्ठमेवं ति । अणुरायनिब्भरंचियदेहे सब्भावसहियम्मि ॥ ४३ ॥
एवं रोयंती सा गमेइ कालं न दोहलं कहइ । अह रन्ना निब्बंधेण पुच्छिया कहिउमाढत्ता ॥ ४४ ॥
नियसहिमुहेण सव्वं पि तयणु चित्ते विसायसहिओ व । अवलंबिय वीरत्तं नरनाहो जंपिउं लग्गो ॥ ४५ ॥
केत्तियमेत्तं दइए ? एयं मंभीसिउं तयं राया । सव्वमभयस्स साहइ तो सो बुद्धिप्पवंचेण ॥ ४६ ॥
देविं निवेसिऊणं नियगिहवायायणम्मि भूमितले । निवइं पुण सयणिज्जे संठविउमुयरउवरिम्मि ॥ ४७ ॥
संधितु ससयचम्मेण विविहमंसं विकत्तिऊण तयं । वियरिज्जइ देवीए तत्तो किर रायमंसं ति ॥ ४८ ॥
जं वेलं निवमेसा चिंतइ तो निंदए नियं चरियं । गब्भाणुभावओ पुण इच्छइ सव्वं पि भक्खेउं ॥ ४९ ॥
संपुन्नो दोहलओ तीसे पुत्तो कमेण संजाओ । उज्झावइ निव्विन्ना असोगवणियाए तं मज्झे ॥ ५० ॥

सेनकजीवः [स] चेल्लणाया अतिवल्लभाया गर्भे । पुत्रत्वेनोत्पन्नस्ततस्तस्यानुभावेन ॥ ३७ ॥
चिन्तयतीदं देवी नयनैरपि यदि न दृश्यते राजा । अन्यच्च चित्तमध्ये सदा प्रद्वेषं समुद्वहति ॥ ३८ ॥
गर्भानुभावदोष इति ज्ञात्वा चेल्लणया देव्या । पातयितुमारब्धो बहुशाटन-पाटनादिभिः ॥ ३९ ॥
न च पतति तथाप्येष देव्या अयं च दोहदो जातः । उदरं विदार्य मांसं भक्षयामि यदि राज्ञः ॥ ४० ॥
ततः सा विषादपरिकलितमानसा विलप्यातिबहुशः । जल्पति हा देव ! त्वया किं दत्तो मम दयितस्य ॥ ४१ ॥
अत्यन्तपरमशत्रुः ? यो ममापीदृशां जनयति कुमतिम् । ततः कुमारेणाप्यलमत्र मम गर्भस्थितो यस्तु ॥ ४२ ॥
चिन्तयति मम मनोवल्लभे एषोऽनिष्ठमेवमिति । अनुरागनिर्भराञ्चितदेहे स्वभावसहिते ॥ ४३ ॥
एवं रुदन्ती सा गमयति कालं न दोहदं कथयति । अथ राज्ञा निर्बन्धेन पृष्टा कथयितुमारब्धा ॥ ४४ ॥
निजसखीमुखेन सर्वमपि तदनु चित्ते विषादसहितोऽपि । अवलम्ब्य वीरत्वं नरनाथो जल्पितुं लग्नः ॥ ४५ ॥
कियन्मात्रं दयिते ! ? एतन्माभीः तकं राजा । सर्वमभयस्य कथयति तदा स बुद्धिप्रपञ्चेन ॥ ४६ ॥
देविं निवेश्य निजगृहवातायने भूमितले । नृपतिं पुनः शयनीये संस्थाप्योदरोपरि ॥ ४७ ॥
सन्धित्वा शशकचर्मणा विविधमांसं विकर्त्य तकंत् । वितर्यतै देव्यास्ततः किल राजमांसमिति ॥ ४८ ॥
यद्वेलं नृपमेषा चिन्तयति तदा निन्दति निज चरित्रम् । गर्भानुभावात्पुनरिच्छति सर्वमपि भक्षितुम् ॥ ४९ ॥
संपूर्णो दोहदस्तस्याः पुत्रः क्रमेण सञ्जातः । उज्झायति निर्विण्णाऽशोकवनिकायास्तं मध्ये ॥ ५० ॥

विद्धा तत्थ य बालस्स अंगुली तंबचूडपिच्छेण । नाऊण वइयरमिमं निवो वि निब्भच्छए देवी ॥ ५१ ॥
कीस तए पढमसुओ परिचत्तो दुल्लहो अपुन्नेहिं ? । आणाविय नियपुत्तं समप्पए धाइवग्गस्स ॥ ५२ ॥
नामं असोगचंदो त्ति तयणु विहियं निवेण सुमुहुत्ते । सुकुमारत्तेणं तस्स अंगुली कूणिया जाया ॥ ५३ ॥
पच्छा कुमरेहिं कूणिओ त्ति बीयं पि से कयं नामं । परिगलइ पूय-रुहिरं तयंगुली पत्थिवो तयणु ॥ ५४ ॥
सुयनेहमोहियमणो तह वि तयं नियमुहम्मि पक्खिवइ । तो थक्कइ रोयंतो बालो इहरा उ सो रुयइ ॥ ५५ ॥
एवं सो वड्ढंतो देहेण समं कलाकलावेण । तरुणीयणमणहरणं संपत्तो जोव्वणारंभं ॥ ५६ ॥
एत्तो य चेल्लणाए हल्ल-विहल्ल त्ति दो सुया जाया । सव्वेसि कुमाराणं उज्जाणगयाण कीलत्थं ॥ ५७ ॥
पेसइ असोगचंदस्स चेल्लणा भोयगे गुडेण कए । इयरेसि खंड-सक्करनिम्मविए कोणिओ तत्तो ॥ ५८ ॥
जम्मंतरवइरवसा पओसमुव्वहइ सेणियनिवम्मि । जह एसो च्चिय पेसवइ मज्झ गुडभोयगे एए ॥ ५९ ॥
एत्तो अभयकुमारम्मि गहियदिक्खम्मि सामिपासम्मि । चिंतइ राया रज्जं दायव्वमसोगचंदस्स ॥ ६० ॥
उत्तावलेण तेण वि कालाईहिं सवक्कबंधूहिं । पइरिक्के होऊणं समयं आलोचियं एयं ॥ ६१ ॥
काऊण जहा एयं रज्जं एक्कारसेसु भागेसु । गिन्हामो कुमरेहि वि पडिस्सुयं होउ एवं ति ॥ ६२ ॥
अन्नदिणे अत्थाणे बंधित्तुमसोगचंदकुमरेण । पक्खित्तो गोत्तीए तत्तो दुग्गाए नियजणओ ॥ ६३ ॥
पुव्वन्ह-पच्छिमन्हे कसघायसयं च देइ पइदिवसं । पाणीय-भोयणं पि हु निवारए तस्स सो कुमरो ॥ ६४ ॥

विद्धा तत्र बालस्याङ्गुली ताम्रचूडपक्षेण । ज्ञात्वा व्यतीकरमिमं नृपोऽपि निर्भर्त्स्यति देवीम् ॥ ५१ ॥
कथं त्वया प्रथमसुतः परित्यक्तो दुर्लभोऽपुण्यैः ? । आनाय्य निजपुत्रं समर्पयति धात्रिवर्गस्य ॥ ५२ ॥
नामाशोकचन्द्र इति तदनु विहितं नृपेण सुमुहूर्ते । सुकुमारत्वेन तस्याङ्गुली कूणिता जाता ॥ ५३ ॥
पश्चात् कुमारैः कुणिक इति द्वितीयमपि तस्य कृतं नाम । परिगलति पूत-रुधिरं तदङ्गुलिः पार्थिवस्तदनु ॥ ५४ ॥
सुतस्नेहमोहितमनास्तथापि च तकं निजमुखे प्रक्षिपति । ततस्तिष्ठति रुदन् बाल इतरथा तु स रोदिति ॥ ५५ ॥
एवं स वर्धमानो देहेन समं कलाकलापेन । तरुणीजनमनोहरणं सम्प्राप्तो यौवनारम्भम् ॥ ५६ ॥
इतश्च चेल्लणाया हल्ल-विहल्लाविति द्वौ सुतौ जातौ । सर्वेषां कुमाराणामुद्यानगतानां क्रीडनार्थम् ॥ ५७ ॥
प्रेषत्यशोकचन्द्रस्य चेल्लणा मोदकान्गुडेन कृतान् । इतरेषां खण्ड-शर्करानिर्मितान्कोणिकस्ततः ॥ ५८ ॥
जन्मान्तरवैरवशात्प्रद्वेषमुद्वहति श्रेणिकनृपे । यथैष चैव प्रेषयति मम गुडमोदकानेतान् ॥ ५९ ॥
इतोऽभयकुमारे गृहीतदिक्षे स्वामिपार्श्वे । चिन्तयति राजा राज्यं दातव्यमशोकचन्द्रस्य ॥ ६० ॥
शीघ्रतया तेनापि कालादिभिः सपत्नीबन्धुभिः । प्रतिरिक्तेसि भूत्वा समकमालोचितमेतत् ॥ ६१ ॥
कृत्वा यथैतद्राज्यमेकादशसु भागेषु । गृह्णीमः कुमारैरपि प्रतिश्रुतं भवत्वेवमिति ॥ ६२ ॥
अन्यदिन आस्थाने बद्ध्वाऽशोकचन्द्रकुमारेण । प्रक्षिप्तो गोत्र्यां ततो दुर्गायां निजजनकः ॥ ६३ ॥
पूर्वाह्ण-पश्चिमाह्नि कशघातशतं च ददाति प्रतिदिवसम् । पानीय-भोजनमपि हु निवारयति तस्य स कुमारः ॥ ६४ ॥

ता चेल्लणा वि मइराभरिएसुं गोविऊण केसेसु । कुम्मासे देइ निवस्स धोविउं तह य वाले य ॥ ६५ ॥
पाए(इ) सुरं सो वि तीए पभावेण वेयइ न किं पि । कसधायाई एवं चिट्ठंतो चिंतए तत्थ ॥ ६६ ॥
संसारविलसियमिणं दुलक्खमज्झं अईव पेच्छ अहो ! कज्जम्मि जेसि किज्जंति देवयाराहणाईणि ॥ ६७ ॥
जायाणं पुण जायाण कारविज्जंति उच्छवाईया । काऊण कुकम्माइं कीरइ परिपोसणं जेसिं ॥ ६८ ॥
दुक्खेणं पाढिज्जंति जे य विविहावराहजायाणि । जेसि खमिज्जंति तहा परिचेट्ठाओ विहिज्जंति ॥ ६९ ॥
किज्जंति सुहियचित्ता जे य मणोभिमयवत्थमाईहिं । अप्पाणमसुत्थमणं काऊणमसुत्थकाले वि ॥ ७० ॥
आसा-मणोरहेहिं विद्धिं नीयाण जेसि करणिज्जे । तं नत्थि जं न दुक्खं सहिज्जए मोहमूढेहिं ॥ ७१ ॥
परिणामो तेसिमिमो जं नियजणयम्मि मोहमइयम्मि । आबालकालपरिजणियविविह उवयारनियरे वि ॥ ७२ ॥
वच्छल्लकारणे वि हु निक्कारणमेरिसं ववइसंति । अच्चंतं परिकुविय व्व दुज्जणा सज्जणजणम्मि ॥ ७३ ॥
अहवा न हु एएसिं दोसो अन्नस्स नेय कस्सावि । पुत्ताइमूढहिययस्स केवलं अप्पणो चेव ॥ ७४ ॥
लद्धूण दुरियदंदोलिमोसणं पोसणं सिवसुहाणं । सिरिवीरजिणेसरपायपंकयं जं न पव्वइओ ॥ ७५ ॥
ते धन्ना मज्झ सुया मेहकुमारो अभयकुमारो य । तह नंदिसेणकुमरो अन्ने वि हु नायपरमत्था ॥ ७६ ॥
परिहरिऊणमसारं संसारं परिभवाऽऽवइनिवासं । जे सिवसुहबद्धमणा निक्खंता वीरपासम्मि ॥ ७७ ॥
बालेसु वि पव्वज्जं पडिवज्जंतेसु परिणयवओ वि । पुत्ताइमोहमोहियमणवित्ती विसयसुहगिद्धो ॥ ७८ ॥

ततश्चेल्लणापि मदिराभृतेषु गोपयित्वा केशेषु । कुल्माषान्ददाति नृपस्य धावयित्वा तथा च बालांश्च ॥ ६५ ॥
पाययति सुरां सोऽपि च तस्याः प्रभावेन वेदयति न किमपि । कशघातादिरेवं तिष्ठंश्चिन्तयति तत्र ॥ ६६ ॥
संसारविलसितमिदं दुर्लक्ष्यमध्यमतीवं पश्याहो ! । कार्ये येषां क्रियन्ते देवताराधनादिनि ॥ ६७ ॥
जातानां पुन र्जातानां कार्यन्त उत्सवादिकाः । कृत्वा कुकर्माणि क्रियते परिपोषणं येषाम् ॥ ६८ ॥
दुःखेन पाठयन्ते ये च विविधापराधजातानि । येषां क्षाम्यन्ते तथा परिचेष्टा विधीयन्ते ॥ ६९ ॥
क्रियन्ते सुखितचित्ता ये च मनोभिमतवस्त्रादिभिः । आत्मानमसुस्थमनः कर्तुमसुस्थकालेऽपि ॥ ७० ॥
आशा-मनोरथै र्वृद्धिं नीतानां येषां करणीये । तन्नास्ति यन्न दुःखं सह्यते मोहमूढैः ॥ ७१ ॥
परिणामस्तेषामयं यन्निजजनके मोहमतिके । आबालकालपरिजनितविविधोपकारनिकरेऽपि ॥ ७२ ॥
वात्सल्यकारणेऽपि हु निष्कारणमीदृशं व्यवस्यन्ति । अत्यन्तं परिकुपिता इव दुर्जनाः सज्जनजने ॥ ७३ ॥
अथवा न खल्वेतेषां दोषोऽन्यस्य नैव कस्यापि । पुत्रादिमूढहृदयस्य केवलमात्मनश्चैव ॥ ७४ ॥
लब्ध्वा दुरितदन्दोलिमोषणं पोषणं शिवसुखानाम् । श्रीवीरजिनेश्वरपादपङ्कजं यन्न प्रव्रजितः ॥ ७५ ॥
ते धन्या मम सुता मेघकुमारोऽभयकुमारश्च । नन्दिषेणकुमारोऽन्येऽपि खलु ज्ञातपरमार्थाः ॥ ७६ ॥
परिहृत्यासारं संसारं परिभवापत्तिनिवासम् । ये शिवसुखबद्धमनसो निष्क्रान्ता वीरपार्श्वे ॥ ७७ ॥
बालेष्वपि प्रव्रज्यां प्रतिपद्यमानेषु परिणतवयसोऽपि । पुत्रादिमोहमोहितमनोवृत्ती विषयसुखगृद्धः ॥ ७८ ॥

जमिह ठिओ निहियमणो नारयपहसज्जरज्जकज्जम्मि । तस्स फलं सविसेसं तुमए रे जीव ! संपत्तं ॥ ७९ ॥
ता अप्पाणं सयमेव निक्खिवंतो अणत्थसत्थम्मि । सुमरंतो जिणवयणं कीस मुहा कुप्पसि परस्स ? ॥ ८० ॥
एवं परिभावंतस्स तस्स सेणियनिवस्स जिणवयणं । साहुस्स व गुत्तिगयस्स कोइ कालो वइक्कंतो ॥ ८१ ॥
एत्तो य कोणियनिवो उदाइनामं सुयं निउच्छंगे । संठाविउमुवविट्ठो भोयणकज्जे तओ तस्स ॥ ८२ ॥
भुंजंतस्स य थालोवरिम्मि विहियं सुएण पासवणं । मुत्तनिरोहभएणं रन्ना वि न चालिओ एसो ॥ ८३ ॥
भुत्तं मुत्तविमिस्सं उस्सारेऊण तं निरवसेसं । सुयनेहतरलियमणो तो पुच्छइ चेल्लणं एवं ॥ ८४ ॥
किं एरिसो सिणेहो अम्मो ! दीसइ जयम्मि अवरस्स । तो रुयमाणी साहइ केत्तियमेत्तो इमो पाव ! ॥ ८५ ॥
जेत्तियमेत्तो नेहो आसि तमासज्ज तुज्झ जणयस्स । सो आह कहं ? तो कहइ चेल्लणा अंगुलीचरियं ॥ ८६ ॥
जइ एत्तिओ सिणेहो मह उवरि पिउस्स कूणिओ भणइ । ता कीस मज्झ गुलमोयगे इमो अंब ! पेसंतो ॥ ८७ ॥
सा आह जहा गब्भप्पभिइ तुमं मरणहेउओ जाओ ! जणयस्स जहा दोहलयपूरणं तेण तुज्झ कयं ॥ ८८ ॥
जह उज्झिओ य संजायमेत्तओ च्चिय असोगवणियाए । सुयनेहमोहिएणं आणिय जह पोसिओ रन्ना ॥ ८९ ॥
तह भूसिओ य तुमयं मणवंछियवत्थ-भूसणाईहिं । गुलमोयए य जे उण अहयं ते तुज्झ पेसंती ॥ ९० ॥
तुमए पुण उवयारं कुणमाणेणं पिउस्स एरिसयं । पाविट्ठेणं विहियं गिहकोइलनायसमरूवं ॥ ९१ ॥
तो पच्चागयचित्तो पसंतवइरो असोगचंदनिवो । चिंतेइ जहा अज्जं नियले भंजेमि जणयस्स ॥ ९२ ॥

यदिह स्थितो निहितमना नारकपथसज्जराज्यकार्ये । तस्य फलं सविशेषं त्वया रे जीव ! सम्प्राप्तम् ॥ ७९ ॥
तत आत्मानं स्वयमेव निक्षिपन्ननर्थसार्थे । स्मरन् जिनवचनं कथं मुधा कुप्यसि परस्मै ? ॥ ८० ॥
एवं परिभावयतस्तस्य श्रेणिकनृपस्य जिनवचनम् । साधोरिव गुप्तिगतस्य कोऽपि कालो व्यतीक्रान्तः ॥ ८१ ॥
इतश्च कोणिकनृप उदायीनामं सुतं निजोत्सङ्गम् । संस्थाप्योपविष्टो भोजनकार्ये ततस्तस्य ॥ ८२ ॥
भुञ्जमानस्य च स्थालोपरि विहितं सुतेन प्रश्रवणम् । मूत्रनिरोधभयेन राज्ञापि न चालित एषः ॥ ८३ ॥
भुक्तं मूत्रविमिश्रमुत्सार्य तं निरवशेषम् । सुतस्नेहतरलितमनास्ततः पृच्छति चेल्लणामेवम् ॥ ८४ ॥
किमिदृशः स्नेहोऽम्मो ! दृश्यते जगत्यपरस्य । ततो रुदन्ती कथयति कियन्मात्रोऽयं पाप ! ? ॥ ८५ ॥
यावन्मात्रः स्नेह आसीत्त्वामासाद्य तव जनकस्य । स आह कथं ? तदा कथयति चेल्लणाङ्गुलिचरित्रम् ॥ ८६ ॥
यद्येतावान्स्नेहो ममोपरि पितुः कूणिको भणति । ततः कथं मम गुडमोदकानयमम्ब ! प्रेषितवान् ॥ ८७ ॥
साऽऽह यथा गर्भप्रभृतिस्त्वं मरणहेतुको जातः । जनकस्य यथा दोहदपूरणं तेन तव कृतम् ॥ ८८ ॥
यथोज्झितश्च सञ्जातमात्रश्चैवाशोकवनिकायाम् । सुतस्नेहमोहितेनानीय यथा पोषितो राज्ञा ॥ ८९ ॥
तथा भूषितश्च त्वं मनोवाञ्छितवस्त्र-भूषणादिभिः । गुडमोदकांश्च यान्पुनरहं तांस्तव प्रेषितवती ॥ ९० ॥
त्वया पुनरुपकारं कुर्वतः पितुरीदृशम् । पापिष्ठेन विहितं गृहकोकिलज्ञातसमरुपम् ॥ ९१ ॥
ततः प्रत्यागतचित्तः प्रशान्तवैरोऽशोकचन्द्रनृपः । चिन्तयति यथाद्य निगडान्भनज्मि जनकस्य ॥ ९२ ॥

तो नियलभंजणत्थं चलिओ धेत्तूण लोहमयदंडं । वेगेणाऽऽगच्छंतो दिट्ठो सो दारपालेहिं ॥ ९३ ॥
तो तेहिं अक्खियं सेणियस्स वेगेण कूणिओ एइ । करकलियलोहदंडो जं काही तं न याणामो ॥ ९४ ॥
इंतं तं दट्ठूणं अइरोद्दं सेणिओ विचिंतेइ । दीसइ अवरसरूवो पाविट्ठो कूणिओ अज्जं ॥ ९५ ॥
तो जावऽज्ज वि एसो मारइ केणावि न हु कुमारेण । इय चिंतिय तालउडं भक्खित्तु विसं मओ तत्तो ॥ ९६ ॥
चुलसीइसहस्साऊ रयणपहापढमपत्थडे जाओ । नेरइओ उव्वट्टिय पढमो तित्थंकरो होही ॥ ९७ ॥
पच्छायावपरिगओ तयवत्थं पेच्छिउं कुणइ राया । विविहपलावे पिइमरणसोयसंतत्तमणभवणो ॥ ९८ ॥
हा ताय ! सुचाय ! महापसाय ! संपत्तपरमजसवाय ! । हा ताय ! विवायविसिट्ठनाय ! हा रायगिहराय ! ॥ ९९ ॥
हा ताय ! जिणेसरवीरभत्त ! हा ताय ! वसणपरिचत्त ! हा ताय ! पयंडपयावविजियदुव्वाररिउविसर ! ॥१००॥
हा खाइगसुहसम्मत्तरयणनिम्महियभावदोगच्च ! । हा भुवणभवणभूसणभारहसंभवियतित्थयर ! १०१ ॥
हा ताय ! तयणवच्छल ! हा निम्मलकुलपसूय ! वररूय ! । हा ताय ! कुलंगारयसुएण संपत्तदुहमरण ! ॥१०२॥
एवं कोणियराया दुस्सहपिउसोगकलियसव्वंगो । अचयंतो वसिउं तत्थ चंपनयरिं निवेसेइ ॥ १०३ ॥
कालेण विगयसोगो साहियतिक्खंडसयलमहिवालो । पालइ असोगचंदो रज्जं चउरंगबलकलिओ ॥ १०४ ॥
दट्ठूणमन्नया रिद्धिमप्पणो चक्कवट्टिणो सरिसं । ता किं चक्की अहयं ? गंतुं पुच्छेमि वीरजिणं ॥ १०५ ॥
सव्वलबलसमुदएणं विणिग्गओ पणमिउं महावीरं । पुच्छइ भयवं चक्की अहयं किं वा ? न व ? त्ति तओ ॥१०६॥

ततो निगडभञ्जनार्थं चलितो गृहीत्वा लोहमयदण्डम् । वेगेनागच्छन् दृष्टः स द्वारपालैः ॥ ९३ ॥
तदा तैराख्यातं श्रेणिकस्य वेगेन कूणिक एति । करकलितलोहदण्डो यत्करिष्यति तन्न जानीमः ॥ ९४ ॥
आयन्तं तं दृष्ट्वाऽतिरौद्रं श्रेणिको विचिन्तयति । दृश्यतेऽपरस्वरूपः पापिष्ठः कूणिकोऽद्य ॥ ९५ ॥
ततो यावदद्याप्येष मारयति केनापि न हु कुमारेण । इति चिन्तयित्वा तालपूटं भक्षित्वा विषं मृतस्ततः ॥ ९६ ॥
चतुरशीतिसहस्रायू रत्नप्रभाप्रथमप्रस्तरे जातः । नैरयिक उद्वर्त्य प्रथमस्तीर्थकरो भविष्यति ॥ ९७ ॥
पश्चात्तापपरिगतस्तदवस्थं दृष्ट्वा करोति राजा । विविधप्रलापान् पितृमरणशोकसंतप्तमनोभवनः ॥ ९८ ॥
हा तात ! सुत्याग ! महाप्रसाद ! सम्प्राप्तपरमयशोवाद ! । हा तात ! विवादविशिष्टज्ञात ! हा राजगृहराज ! ॥ ९९ ॥
हा तात ! जिनेश्वरवीरभक्त ! हा तात ! व्यसनपरित्यक्त ! । हा तात ! प्रचण्डप्रतापविजितदुर्वाररिपुसमूह ! ॥ १०० ॥
हा क्षायिकशुभसम्यक्त्वरत्ननिर्मथितभावदौर्गत्य ! । हा भुवनभवनभूषणभारतसंभविततीर्थकर ! ॥ १०१ ॥
हा तात ! तनयवत्सल ! हा निर्मलकुलप्रसूत ! वररुप ! । हा तात ! कुलाङ्गारसुतेन सम्प्राप्तदुःखमरण ! ॥ १०२ ॥
एवं कोणिकराजा दुस्सहपितृशोककलितसर्वाङ्गः । अपारयन् वसितुं तत्र चम्पानगरिं निवेशयति ॥ १०३ ॥
कालेन विगतशोकः साधितत्रिखण्डसकलमहीपालः । पालयत्यशोकचन्द्रो राज्यं चतुरङ्गबलकलितः ॥ १०४ ॥
दृष्ट्वान्यदार्द्धिमात्मन श्चक्रवर्तिनः सदृशाम् । ततः किं चक्र्यहं ? गत्वा पृच्छामि वीरजिनम् ॥ १०५ ॥
सर्वबलसमुदायेन विनिर्गतः प्रणम्य महावीरम् । पृच्छति भगवंश्चक्र्यहं किं वा नवेति ? ततः ॥ १०६ ॥

जयसामिणा वि जंपियमिह सव्वे चक्किणो वइक्कंता । पभणइ पुणो वि राया मरिऊणं कत्थ वच्चिस्सं ? ॥ १०७ ॥
छट्ठीए पुढवीए जिणेण भणिए न जामिकिं सामि ! । सत्तमियं ? भणइ जिणो चक्कहरा तत्थ गच्छंति ॥ १०८ ॥
तो सो अचक्किभावं असद्दहंतो करित्तु रयणाणि । लोहमइयाणि पत्तो तिमिसगुहं साहियतिखंडो ॥ १०९ ॥
आराहियकयमालो अट्ठमभत्तेण हणइ दंडेण । जाव गुहाए कवाडे तो कयमालेणिमं भणिओ ॥ ११० ॥
वोलीणा सव्वे वि हु चक्कहरा ता तुमं नियत्तेसु । तह वि य सो न नियत्तइ काऊणं हत्थिसीसम्मि ॥ १११ ॥
मणिरयणं संचलिओ कयमालाभिमुहमह गुहावइणा । दाऊण चवेडं मारिओ गओ छट्ठपुढवीए ॥ ११२ ॥

॥ इति कोणिकाख्यानकंसमाप्तम् ॥ ११६ ॥

इदानीं शङ्खख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

सिरिमंगलम्मि देसे नयरं गुरुगोउरं पि संखउरं । सुइहारजणं पि विहारलोयसोहासमाइन्नं ॥ १ ॥
संख्याइक्कंतगुणो संखागयसत्तुदलणदुल्ललिओ । संखामलकित्तिधरो संखाभिहनरवई तत्थ ॥ २ ॥
पालेइ य पडिहयभडउब्भडचरडाइवज्जियं रज्जं । वित्थिन्नऽत्थाणत्थो अहऽन्नया सो महीनाहो ॥ ३ ॥
गयसेट्ठिपुत्तदत्तेण पयडपडिहारकयपवेसेण । उवणेउं रायारिहपाहुडमह पणमिओ तेण ॥ ४ ॥
संभासिओ य रन्ना उवविट्ठो आसणम्मि सप्पणयं । गयतणय ! किं चिराओ दीससि ? कुसलं सया तुज्झ ? ॥५॥
तेण वि पणामपुव्वं पयंपियं पहु ! पसायओ तुम्ह । पायाण जणच्छायापायवतुल्लाण कुसलं मे ॥ ६ ॥

जगत्स्वामिनापि जल्पितमिह सर्वे चक्रिणो व्यतिक्रान्ताः । प्रभणति पुनरपि राजा मृत्वा क्व व्रजिष्यामि ? ॥ १०७ ॥
षष्ठयां पृथिव्यां जिनेन भणिते न यामि किं स्वामिन् । सप्तम्यां ? भणति जिनश्चक्रधरास्तत्र गच्छन्ति ॥ १०८ ॥
ततः सोऽचक्रिभावमश्रद्धन् कृत्वा रत्नानि । लोहमय्यानि प्राप्तस्तिमिस्रागुहं साधितत्रिखण्डः ॥ १०९ ॥
आराधितकृतमालोऽष्टमभक्तेन हन्ति दण्डेन । यावद्गुहायाः कपाटौ तावत्कृतमालेनायं भणितः ॥ ११० ॥
व्यतीताः सर्वेऽपि हु चक्रधरास्तावत्त्वं निवर्तय । तथापि च स न निवर्त्तयति कृत्वा हस्तिशीर्षे ॥ १११ ॥
मणिरत्नं सञ्चलितः कृतमालाभिमुखमथ गुहापतिना । दत्वा चपेटां मारितो गतः षष्ठपृथिवीम् ॥ ११२ ॥

॥ इति कोणिकाख्यानकं समाप्तम् ॥ ११६ ॥

शङ्खाख्यानकम् ॥ ११७ ॥

श्रीमङ्गले देशे नगरं गुरुगोपुरमपि शङ्खपुरम् । शुचिहारजनमपि विहारलोकशोभासमाकीर्णम् ॥ १ ॥
सङ्ख्यातिक्रान्तगुणःसंख्यागतशत्रुदलनदुर्ललितः । शङ्खामलकीर्त्तिधरः शङ्खाभिधनरपतिस्तत्र ॥ २ ॥
पालयति च प्रतिहतभट्टोद्भटचरटादिवर्जितं राज्यम् । विस्तीर्णास्थानस्थोऽथान्यदा स महीनाथः ॥ ३ ॥
गजश्रेष्ठिपुत्रदत्तेन प्रकटप्रतिहारकृतप्रवेशेन । उपनीय राजार्हप्राभृतमथ प्रणमितस्तेन ॥ ४ ॥
सम्भाषितश्च राज्ञोपविष्ट आसने सप्रणयम् । गजतनय ! किंचिराद् दृश्यसे ? कुशलं सदा तव ? ॥ ५ ॥
तेनापि प्रणामपूर्वं प्रजल्पितं प्रभो ! प्रसादात्तव । पादानां जनच्छायापादपतुल्यानां कुशलं मे ॥ ६ ॥

नाएण धणोवज्जणमेवऽम्हाणं कुलक्कमो सामि ! । तं पुण गंतुं कीरइ दिसिजत्ताए वि दुग्गाए ॥ ७ ॥
अवरं च अपुव्वाणं देसाणं होइ दंसणं देव ! । संपज्जइ अच्चब्भुयकोऊहलदंसणं बहुसो ॥ ८ ॥
ता देव ! देवसाले विसालसालोवगूढनयरम्मि । दविणज्जणकज्जे हं बहुसत्थजुओ गओ हुंतो ॥ ९ ॥
भणियं च भूमिवइणा चित्तचमक्कारकारयं कहसु । तत्थ तए जं किंचि वि सच्चवियं चारु अच्छरियं ॥ १० ॥
दत्तेणुत्तं पहु ! देवसालमच्छरियनियरपरिकिन्नं । बहुहयमाहप्पो वि हु जत्थ जणो अहयमाहप्पो ॥ ११ ॥
अवरं पि हु अच्छरियं पेच्छउ सामी सयं पि तं जेण । न य सक्को सक्को वि हु कहिउं जे किं पुण मणुस्सो ? ॥ १२ ॥
इय जंपिऊण दत्तो पयत्तपच्छायणाणि अवणेउं । उवणेइ चित्तफलयं निवस्स तं गिण्हिउं सो वि ॥ १३ ॥
नियइ य सरूवरेहोवहसियतियसिंदसुंदरिं कुमरिं । एसा देवि त्ति विचिंतिऊण पणओ निवो तीए ॥ १४ ॥
आउच्छिओ य दत्तो का एसा देवया ? भणइ सो वि । न हु देव ! देवया किंतु माणुसी एत्थ आलिहिया ॥ १५ ॥
तं सोउं नरनाहो निज्झाइय अंगचंगयं तीए । बालग्गाओ नहग्गं जाव समुल्लविउमारद्धो ॥ १६ ॥
किं दत्त ! माणुसीओ एवंरूवाओ कत्थइ हवंति ? ईसिप्पहासपुव्वं पयंपियं तयणु दत्तेण ॥ १७ ॥
सा का वि सरीरलयालीला रूवं पि तीए तं किं पि । जस्स लवो वि न नज्जइ लिहिउं निउणेहिं वि सुरेहिं ॥ १८ ॥
परमेत्थ सुमरणत्थं रूवलवो सामिसाल ! आलिहिओ । तो विम्हएण भणियं रन्ना मह कहसु का एसा ? ॥ १९ ॥
भइणी मम त्ति दत्तेण पभणिए भणइ भूवई भद्द ! । जइ तुह भइणी ता देवसालनयरे कहं दिट्ठा ? ॥ २० ॥

न्यायेन धनोपार्जनमेवास्माकं कुलक्रमः स्वामिन् ! । तत्पुन र्गत्वा क्रियते दिग्यात्रयापि दुर्गया ॥ ७ ॥
अपरं चापूर्वाणां देशानां भवति दर्शनं देव ! । सम्पद्यतेऽत्यद्भुतकौतूहलदर्शनं बहुशः ॥ ८ ॥
ततो देव ! देवशाले विशालशालोपगूढनगरे । द्रविणार्जनकार्येऽहं बहुसार्थयुक्तो गतोऽभवम् ॥ ९ ॥
भणितं च भूमिपतिना चित्तचमत्कारकारकं कथय । तत्र त्वया यत्किञ्चिदपि दृष्टं चार्वाश्चर्यम् ॥ १० ॥
दत्तेनोक्तं प्रभो! देवशालमाश्चर्यनिकरपरिकीर्णम् । बहुहयमाहात्म्योऽपि हु यत्र जनोऽहतमाहात्म्यः ॥ ११ ॥
अपरमपि खल्वाश्चर्यं पश्यतु स्वामिन् ! स्वयमपि त्वं येन । न च शक्तः शक्रोऽपि हु कथयितुं ये किं पुन र्मनुष्यः ? ॥१२॥
इति जल्पित्वा दत्तः प्रयत्तप्रच्छादनान्यपनीय । उपनयति चित्रफलकं नृपस्य तद्गृहीत्वा सोऽपि ॥ १३ ॥
पश्यति च स्वरुपरेखोपहसितत्रिदशेन्द्रसुन्दरिं कुमारिम् । एषा देवीति विचिन्त्य प्रणतो नृपस्तदा ॥ १४ ॥
आपृष्ठश्च दत्तः कैषा देवता ? भणति सोऽपि । न हु देव ! देवता किन्तु मानुष्यत्रालिखिता ॥ १५ ॥
तत् श्रुत्वा नरनाथो निर्ध्यायाङ्गचङ्गं तस्याः । वालाग्रान्नखाग्रं यावत्समुल्लपितुमारब्धः ॥ १६ ॥
किं दत्त ! मानुष्य एवंरुपाः कुत्रचिद्भवन्ति ? । ईषत्प्रहासपूर्वं प्रजल्पितं तदनु दत्तेन ॥ १७ ॥
सा कापि शरीरलतालीलारुपमपि तस्यास्तत्किमपि । यस्य लवोऽपि न ज्ञायते लिखितुं निपुणैरपि सुरैः ॥ १८ ॥
परमत्र स्मरणार्थं रुपलवः स्वामिन् ! आलिखितः । ततो विस्मयेन भणितं राज्ञा मम कथय कैषा ? ॥ १९ ॥
भगिनी ममेति दत्तेन प्रभणिते भणति भूपति र्भद्र ! । यदि तव भगिनी तदा देवशालनगरे कथं दृष्टा ॥ २० ॥

तेणुत्तं परमत्थं निसुणसु पहु ! देसदंसणत्थमहं । दविणज्जणकज्जेण य विणिग्गओ जणयमड्डाए ॥ २१ ॥
पउरपयाणयलंघियगामा-ऽऽगर-नगरकिन्नबहुदेसो । पत्तो य गुरुअरन्नं अब्भासे देवसालस्स ॥ २२ ॥
भीमम्मि तम्मि सन्नद्धभडयणो तरलतुरयमारूढो । गच्छामि पलोयंते चउद्दिसं भिल्लसंकाए ॥ २३ ॥
अह तत्थ मए दिट्ठो निच्चेट्ठो निवडिओ महीवट्ठे । रूवस्सी पच्चासन्नमयतुरंगो नरो एगो ॥ २४ ॥
कंठंतपत्तपाणो नाओ सित्तो य सिसिरनीरेण । उवलद्धचेयणो तयणु पाइओ सीयलं सलिलं ॥ २५ ॥
छुहिओ त्ति सीहकेसरयमोयगे भोइउं समुल्लविओ । सुपुरिस ! कत्तो आगंतुमित्थ पत्तो महावसणं ॥ २६ ॥
तेणुत्तमहं हरिओ हएण सिरिदेवनंदिदेसाओ । इह संपत्तो तुब्भे वि पत्थिया कत्थ ? मह कहह ॥ २७ ॥
भणियं मए वि तद्देसभूसणे देवसालनयरम्मि । गच्छिस्सामो अम्हे ता दोन्ह वि सोहणो सत्थो ॥ २८ ॥
तुब्भे तरलतुरंगमहरणुब्भूयप्पयासपरिसंता । अल्लियह तो सुहासणमम्हं तो सो समारूढो ॥ २९ ॥
सप्पुरिसगुणुक्कित्तणकहाहिं दोन्हं पि हरियहिययाण । लंघियकेत्तियमेत्तारन्नाण रवी गओ अत्थं ॥ ३० ॥
आवासिओ य सत्थो तत्थ वि सव्वा वि वोलिया रयणी । नासियतमपब्भारे जाए अरुणुग्गमेसहसा ॥ ३१ ॥
दिट्ठं पभूयसेन्नं खुहिओ मह भडयणो वि सन्नद्धो । मा भाहि त्ति भणंतो ता पत्तो आसवारेगो ॥ ३२ ॥
तेणुत्तं हयहरियं पुरिसं पेच्छिउमिमं बलं पत्तं । घुट्ठं च बंदिविंदेण जयउ जयसेणकुमरो त्ति ॥ ३३ ॥
तो विजयभूवई वि य पत्तो विन्नायकुमरवुत्तंतो । कुमरेण वि सप्पणयं पणओ भूमिलियभालेण ॥ ३४ ॥

तेनोक्तं परमार्थं निशृणु प्रभो ! देश दर्शनार्थमहम् । द्रविणार्जनकार्येण च विनिर्गतो जनकबलात् ॥ २१ ॥
प्रचूरप्रयाणकलङ्घितग्रामाऽऽकर-नगरकीर्णबहुदेशः । प्राप्तश्च गुर्वरण्यमभ्यासे देवशालस्य ॥ २२ ॥
भीमे तस्मिन् सन्नद्धभटजनस्तरलतुरगमारुढः । गच्छामि प्रलोकयंश्चतुर्दिशं भिल्लशङ्कया ॥ २३ ॥
अथ तत्र मया दृष्टो निश्चेष्टो निपतितो महीपृष्टे । रुपस्वी प्रत्यासन्नमृततुरङ्गो नर एकः ॥ २४ ॥
कण्ठान्तप्राप्तप्राणो ज्ञातः सिक्तश्च शिशिरनीरेण । उपलब्धचेतनस्तदनु पायितः शीतलं सलिलम् ॥ २५ ॥
क्षुधित इति सिंहकेशरमोदकान् भोजित्वा समुल्लपितः । सत्पुरुष ! कुत आगत्यात्र प्राप्तो महाव्यसनम् ॥ २६ ॥
तेनोक्तमहं हृतोहयेन श्रीदेवनन्दिदेशात् । इह सम्प्राप्तो यूयमपि प्रस्थिताः क्व ? मम कथयत ॥ २७ ॥
भणितं मयापि तद्देशभूषणे देवशालनगरे । गमिष्यामो वयं ततो द्वयोरपि शोभनः सार्थः ॥ २८ ॥
यूयं तरलतुरङ्गमनोहरणोद्भूतप्रवासपरिश्रान्ताः । आलीनत ततः सुखासनमस्माकं तदा स समारुढः ॥ २९ ॥
सत्पुरुषगुणोत्कीर्तनकथाभि र्द्वयोरपि हृतहृदययोः । लङ्घितकियन्मात्रारण्यो रवि र्गतोऽस्तम् ॥ ३० ॥
आवासितश्च सार्थस्तत्रापि सर्वापि व्युत्क्रान्ता रजनी । नाशिततमः प्राग्भारे जातेऽरुणोद्गमे सहसा ॥ ३१ ॥
दृष्टं प्रभूतसैन्यं क्षुभितो मम भटजनोऽपि सन्नद्धः । मा बिभेहीति भणन् तावत्प्राप्तोऽश्ववार एकः ॥ ३२ ॥
तेनोक्तं हयहृतं पुरुषं दृष्टुमिमं बलं प्राप्तम् । घृष्टं च बन्दिवृन्देन जयतु जयसेनकुमार इति ॥ ३३ ॥
ततो विजयभूपतिरपि च प्राप्तो विज्ञातकुमारवृतान्तः । कुमारेणापि सप्रणयं प्रणतो भूमिलितभालेन ॥ ३४ ॥

आउच्छिओ नरिंदेण वच्छ ! कह तं समागओ रन्नं ? सो भणइ देव ! दुट्ठेणतेण तुरएण हं हरिओ ॥ ३५ ॥
आणीओ य अरन्ने इमम्मि परिभमिरसीह-सद्दूले । तो ताय ! मए मुक्का वग्गा गुरुमग्गसमिएण ॥ ३६ ॥
परिसंठिओ तुरंगो तो मुक्को सो मए समुत्तरिउं । पाणेहिं वि परिचत्तो मन्ने दुट्ठो त्ति कलिऊण ॥ ३७ ॥
गिम्हखरतरणितावियतणुणो जाया अईव मह तन्हा । अंधारिज्जंतमिणं भुवणमहं पेच्छिउं लग्गो ॥ ३८ ॥
तयणंतरं न किं पि वि विन्नायं जा इमेण आगंतुं । जीवाविओ अकारणसुबंधुणा पुरिसरयणेण ॥ ३९ ॥
तं सोउं समकालं पलोइओ हं निवेण सबलेण । पणमिय मए वि राया सविणयमेयारिसं भणिओ ॥ ४० ॥
मज्झ न जीवीयदाणे सत्ती थेवा वि विज्जए सामि ! । किन्तु तुह पायपउमप्पभावओ जीविओ कुमरो ॥ ४१ ॥
तो पमुइएण पुहईसरेण आलिंगिऊण हं भणिओ । तं मज्झ पढमपुत्तो जयसेणो पच्छिमो वच्छ ! ॥ ४२ ॥
नीओ य नियथनयरे समप्पिओ मज्झ परमपासाओ । नियकुमरनिव्विसेसा ठिई वि विहिया समग्गा वि ॥ ४३ ॥
तह कह वि रायकुमरेहि रंजियं मह मणं विणोएहिं । न जहा सुमरइ जणणी-जणय-सदेसाण मणयं पि ॥ ४४ ॥
तन्निवइअग्गमहिसीसिरिदेवीकुच्छिकमलसरहंसी । रमणीययावयंसी अवयंसीकयसरलनयणा ॥ ४५ ॥
अत्थि सुसुवन्नवन्ना कन्ना लायन्नपुन्नसव्वंगा । कुसला कलाकलावे कलावई नाम कामगिहं ॥ ४६ ॥
पायं गवेसिओ वि हु न पाविओ कोइ तीए तुल्लवरो । तच्चिंतासंतावियमणेण राएण हं भणिओ ॥ ४७ ॥
वच्छ ! कहिं पि निहालसु नियभइणीसमुचियं वरं किं पि । तो रूवलवो तीए मए इमो देव ! आलिहिओ ॥ ४८ ॥

आपृष्टो नरेन्द्रेण वत्स ! कथं त्वं समागतोऽरण्यम् ? । स भणति देव ! दुष्टेन तेन तुरगेणाहं हृतः ॥ ३५ ॥
आनीतश्चारण्य एतस्मिन् परिभ्रमत्सिंह-शार्दुले । ततस्तात ! मया मुक्ता वल्गा गुरुमार्गश्रान्तेन ॥ ३६ ॥
परिसंस्थितस्तुरङ्गस्ततो मुक्तः स मया समुत्तीर्य । प्राणैरपि परित्यक्तो मन्ये दुष्ट इति कलित्वा ॥ ३७ ॥
ग्रीष्मखरतरणितापिततनो र्जातातीव मम तृष्णा । अन्धार्यमाणं इदम् भुवनमहं द्रष्टुं लग्नः ॥ ३८ ॥
तदनन्तरं न किमपि विज्ञातं यावदनेनागत्य । जीवितोऽकारणसुबन्धुना पुरुषरत्नेन ॥ ३९ ॥
तत्श्रुत्वा समकालं प्रलोकितोऽहं नृपेण सबलेन । प्रणम्य मयापि राजा सविनयमेतादृशं भणितः ॥ ४० ॥
मम न जीवितदाने शक्तिः स्तोकापि विद्यते स्वामिन् ! । किन्तु तव पादपद्मप्रभावाज्जीवितः कुमारः ॥ ४१ ॥
ततः प्रमुदितेन पृथिवीश्वरेणालिङ्ग्याहं भणितः । त्वं मम प्रथमपुत्रो जयसेनः पश्चिमो वत्स ! ॥ ४२ ॥
नीतश्च निजकनगरे समर्पितो मम परमप्रासादः । निजकुमारनिर्विशेषा स्थितिरपि विहिता समग्रापि ॥ ४३ ॥
तथा कथमपि राजकुमारै रञ्जितं मम मनो विनोदैः । न यथा स्मरति जननी-जनक-स्वदेशानां मनागपि ॥ ४४ ॥
तन्नृपत्यग्रमहिषीश्रीदेवीकुक्षिकमलसरोहंसी । रमणीयतावतंसी अवतंसीकृतसरलनयना ॥ ४५ ॥
अस्ति सुसुवर्णवर्णा कन्या लावण्यपूर्णसर्वाङ्गा । कुशला कलाकलापे कलावती नामा कामगृहम् ॥ ४६ ॥
प्रायं गवेषितोऽपि हु न प्राप्तः कोपि तस्यास्तुल्यवरः । तच्चिन्तासन्तापितमनसा राज्ञाऽहं भणितः ॥ ४७ ॥
वत्स ! कुत्रापि निभालय निजभगिनिसमुचितं वरं किमपि । ततोरुपलवस्तस्या मयायं देव ! आलिखितः ॥ ४८ ॥

नरवइणाऽणुन्नाओ कमेण पहु ! तुह सयासमल्लीणो । जम्हा उत्तमरयणाण ठाणमिह देव ! तं चेव ॥ ४९ ॥
आयन्निऊण एयं महीवई चिंतिउं समारद्धो । किह संगमो भविस्सइ मह सममेयाए ? न मुणेमि ॥ ५० ॥
एत्थंतरम्मि मज्झन्हसूयगो सुरगिहेसु संखरवो । उच्छलिओ तह एयं पढियं निवकालकहगेण ॥ ५१ ॥
उल्लसियतेयपसरो सूरो जणमत्थणं कमइ एसो । तेयगुणब्भहियाणं किमसज्झं जीवलोगम्मि ? ॥ ५२ ॥
अत्थाणाओ समुट्ठिय न्हाओ पणओ य देवयाण निवो । सुरसं पि तीए विरहे भुत्तो विरसं व आहारं ॥ ५३ ॥
पुणरवि वासरसेसो अत्थाणत्थेण राइणा गमिओ । विन्नतो बीयदिणे ससंभमं चारपुरिसेण ॥ ५४ ॥
पडिहयपडिवक्खस्स वि सन्नद्धा चाउरंगिणी सेणा । देव ! तुह देसमज्झे पविसइ वज्जंतआउज्जा ॥ ५५ ॥
तं सोऊण रणंगणवेसरहसुच्छलंतरोमंचो । सन्नज्झह त्ति आइसइ नरवई नियसामंते ॥ ५६ ॥
ताडाविया य सहसा भयंकरा कायराण रणमेरी । पहरिसिया रणरसिया नयरे हल्लोहलो जाओ ॥ ५७ ॥
एत्थंतरम्मि दत्तो पत्तो पहिओ व्व तत्थ पहसंतो । भणइ य किमयंडे विड्डुरिल्लओ पहु ! रणारंभो ॥ ५८ ॥
नणु तं रमणीरयणं सयंवरं तुह समेइ सयमेव । जयसेणकुमारो वि हु सो एसो नरसिरोरयणं ॥ ५९ ॥
तं सोउममयसित्तो व्व नरवई विगयविरहविसवेगो । आभरणमंगलग्गं वियरइ से कणयजीहं च ॥ ६० ॥
भणइ य दत्तय ! किह इह समागया सा ? तओ भणइ दत्तो । हरिणि व्व देव ! तुह पुन्नवागुरायड्ढिया पत्ता ॥ ६१ ॥
तो मइसायरमंती पयंपए देव ! एस सप्पुरिसो । जम्हा एएण कओ पच्छन्नो तुम्ह उवयारो ॥ ६२ ॥

नरपतिनानुज्ञातः क्रमेण प्रभो ! तव सकाशमालीनः । यस्मादुत्तमरत्नानां स्थानमिह देव ! त्वं चैव ॥ ४९ ॥
आकर्ण्यैतन्महीपतिश्चिन्तयितुं समारब्धः । कथं सङ्गमो भविष्यति मम सममनया ? न मुणामि ॥ ५० ॥
अत्रान्तरे मध्याह्नसूचकः सुरगृहेषु शङ्खरवः । उच्छलितस्तथैतत्पठितं नृपकालकथकेन ॥ ५१ ॥
उल्लसिततेजःप्रसरः सूर्यो जनमस्तकं क्रमत्येषः । तेजोगुणाभ्यधिकानां किमसाध्यं जीवलोके ? ॥ ५२ ॥
आस्थानात्समुत्थाय स्नातः प्रणतश्च देवतान् नृपः । सुरसमपि तस्या विरहे भुक्तो विरसमिवाहारम् ॥ ५३ ॥
पुनरपि वासरशेष आस्थानस्थेन राज्ञा गमितः । विज्ञप्तो द्वितीयदिने ससम्भ्रमं चारपुरुषेण ॥ ५४ ॥
प्रतिहतप्रतिपक्षस्यापि सन्नद्धा चतुरङ्गिणी सेना । देव ! तव देशमध्ये प्रविशति वाद्यदातोद्याः ॥ ५५ ॥
तत् श्रुत्वा रणाङ्गणप्रवेशरभसोच्छलद्रोमाञ्चः । सन्नद्धतेत्यादिशति नरपति र्निजसामन्तान् ॥ ५६ ॥
तडिता च सहसा भयंकरा कातराणां रणभेरी । प्रहृष्टा रणरसिका नगरे कोलाहलो जातः ॥ ५७ ॥
अत्रान्तरे दत्तः प्राप्तः पथिक इव तत्र प्रहसन् । भणति च किमकाण्डे रौद्रवान् प्रभो ! रणारम्भः ॥ ५८ ॥
ननु तद्रमणीयरत्नं स्वयंवरं तव समेति स्वयमेव । जयसेनकुमारोऽपि खलु स एष नरशिरोरत्नम् ॥ ५९ ॥
तत्श्रुत्वामृतसिक्त इव नरपति र्विगतविरहविषवेगः । आभरणमङ्गलग्नं वितरति तस्य कनकजीव्हां च ॥ ६० ॥
भणति च दत्तक ! कथमिह समागता सा ? ततो भणति दत्तः । हरिणीव देव ! तव पुण्यवागुराकृष्टा प्राप्ता ॥ ६१ ॥
ततो मतिसागरमन्त्रिः प्रजल्पति देव ! एष सत्पुरुषः । यस्मादेतेन कृतः प्रच्छन्नस्तवोपकारः ॥ ६२ ॥

तुम्हाण गुणग्गहणं तीए पुरो कयमणेण संभविही । होही इमा परोक्खाणुरायरत्ता तुमम्मि पहू ॥ ६३ ॥
तीए निबंधं नाउं अम्मा-पियरेहिं पेसिया भविही । तो एसो सिग्घयरं संपत्तो सामि ! तुह पासे ॥ ६४ ॥
तो संलत्तं दत्तेण देव ! मंती जहत्थअभिहाणो । जो अस्सुयसव्वं पि हु जाणइ एवं नियमईए ॥ ६५ ॥
सन्नज्झमाणनियबलनिवारणं काउमह महीनाहो । आइसइ नयरसोहं पमोयपरिपूरिओ संतो ॥ ६६ ॥
विहिया य नयरसोहा नयरे नायरजणेण सव्वेण । मंचाइमंचविरइयतलियातोरणमणहरिल्ला ॥ ६७ ॥
आइट्ठो मइसायरमंती तेसिं पवेसणनिमित्तं । तेण वि महरिहरिद्धीए तीए विहिओ पुरपवेसो ॥ ६८ ॥
आवासत्थं तिस्सा समप्पियं सत्तभूमियं भवणं । सम्माणिओ य तीए लोगो उचियप्पयाणेण ॥ ६९ ॥
जयसेणकुमारो वि हु पणओ गंतुं सहाए नरवइणो । पुट्ठा य कुसलवत्ता परोप्परं रायकुमरेहिं ॥ ७० ॥
रायकुमारा-ऽमच्चाइएसु सव्वेसु सुहनिविट्ठेसु । अवराप्परसम्माणुच्छलंतपरमप्पमोएसु ॥ ७१ ॥
एत्थंतरम्मि वज्जरइ कुमर-मंती फुरंतरायदित्ती । एत्तो य तत्थ पत्तेण देव ! दत्तेण तह कह वि ॥ ७२ ॥
तुम्हाण गुणग्गहणं विहियं जह रायपमुहपउराण । ओयरइ माणसाओ टंकुकिन्नं व न कया वि ॥ ७३ ॥
तुह मुत्ताहलनिम्मलगुणावलीधरणहारिहियएण । रन्ना संदिट्ठं तुज्झ गउरवं किं वयं कुणिमो ? ॥ ७४ ॥
तत्तो य हिययदइया समग्गगुणरयणमालिया कुमरी । तुह समुचिय त्ति काऊण पेसिया गुरुसिणेहे ॥ ७५ ॥
अणुराओ न हु जाओ इमाए अवरेसु रायकुमरेसु । अहवा मोत्तूण रविं वंछइ किं कमलिणी अन्नं ? ॥ ७६ ॥

युष्माकं गुणग्रहणं तस्याः पुरः कृतमनेन संभविष्यति । भविष्यतीमा परोक्षानुरागरक्ता त्वयि प्रभो ! ॥ ६३ ॥
तस्या निर्बन्धं ज्ञात्वाम्मा-पितृभ्यां प्रेषिता भविष्यति । तत एष शीघ्रतरं संप्राप्तः स्वामिन् ! तव पार्श्वे ॥ ६४ ॥
ततः संलप्तं दत्तेन देव ! मन्त्री यथार्थाभिधानः । योऽश्रुतसर्वमपि हु जानात्येवं निजमत्या ॥ ६५ ॥
सन्नह्यमाननिजबलनिवारणं कृत्वाथ महीनाथः । आदिशति नगरशोभां प्रमोदपरिपूरितस्सन् ॥ ६६ ॥
विहिता च नगरशोभा नगरे नागरजनेन सर्वेण । मञ्चातिमञ्चविरचिततलिकातोरणमनोहरा ॥ ६७ ॥
आदिष्टो मतिसागरमन्त्री तेषां प्रवेशननिमित्तम् । तेनापि महार्हर्द्धया तस्या विहितः पुरप्रवेशः ॥ ६८ ॥
आवासार्थं तस्याः समर्पितं सप्तभूमिकं भवनम् । सन्मानितश्च तदा लोक उचितप्रदानेन ॥ ६९ ॥
जयसेनकुमारोऽपि हु प्रणतो गत्वा सभायां नरपतेः । पृष्टा च कुशलवार्ता परस्परं राजकुमारैः ॥ ७० ॥
राजकुमारा-ऽमात्यादिकेषु सर्वेषु सुखनिविष्टेषु । परस्परसन्मानोच्छलत्परमप्रमोदेषु ॥ ७१ ॥
अत्रान्तरे कथयति कुमार-मन्त्री स्फुरद्राजदिप्तिः । इतश्च तत्र प्राप्तेन देव ! दत्तेन तथा कथमपि ॥ ७२ ॥
युष्माकं गुणग्रहणं विहितं यथा राजप्रमुखपौराणाम् । अवतरति मानसात् टङ्कोत्कीर्णमिव न कदापि ॥ ७३ ॥
तव मुक्ताफलनिर्मलगुणावलीधरणहारिहृदयेन । राज्ञा सन्दिष्टं तव गौरवं किं वयं कुर्महे ? ॥ ७४ ॥
ततश्च हृदयदयिता समग्रगुणरत्नमालिका कुमारी । तव समुचितेति कृत्वा प्रेषिता गुरुस्नेहेन ॥ ७५ ॥
अनुरागो न खलु जातोऽस्या अपरेषु राजकुमारेषु । अथवा मुक्त्वा रविं वाञ्छति किं कमलिन्यन्यम् ? ॥ ७६ ॥

तो भणइ संखाराया पेच्छ अहो ! मज्झ निग्गुणस्सावि । नरनाहविजयसेणस्स पक्खवाओ किमवि अहिओ ॥७७॥
जइ जाओ राओ हं लहुओ वि हु ता कहं गुणी जाओ ? । अहवा उत्तमपुरिसा नियंति दोसं पि गुणरूवं ॥ ७८ ॥
जइ मज्झमुवरिहुत्तो एवं नेहो मणे परिप्फुरइ । ता तस्स तायतुल्लस वयणमम्हेहिं कायव्वं ॥ ७९ ॥
तो सव्वे वि य संतुट्ठमाणसा ते गया सठाणेसु । अवरोप्परपीइपरव्वसाण ताणं वयइ कालो ॥ ८० ॥
अह अन्नया य सुपसत्थतिहि-मुहुत्तम्मि लग्गदिवसम्मि । पारद्धो रायउले वीवाहमहूसवो रन्ना ॥ ८१ ॥
गंभीरमद्दलारवविमिस्सजयतूरगहिरनिग्धोसे । अविहवविलयागिज्जंतमंगलारवसमुप्पन्ने ॥ ८२ ॥
बहुबंदिवंदवज्जरियजयजयारावभरियभुवणयले । मणहररमणीयणनट्ट (थट्ट) तुट्टंतहारोहे ॥ ८३ ॥
वंछाइरित्तवियरिज्जमाणवरदाणरंजियजणोहे । वीवाहकज्जउज्जुयकंबियकरभमिरसामंते ॥ ८४ ॥
एवंविहम्मि लग्गस्स वासरे पमुइएण परिणीया । अणुरायरसियहियया राएण कलावई कुमरी ॥ ८५ ॥
वित्ते वीवाहमहूसवम्मि सव्वंगचंगिमजुयाए । तीए सह विसयसोक्खं भुंजइ सो वज्जियावज्जो ॥ ८६ ॥
जयसेणकुमारेणं समं पवड्ढंतपीइपब्भारो । नाणाविणोयवक्खित्तचित्तो गमइ कालं ॥ ८७ ॥
अह अन्नया कुमारो भूमिलियसिरो निवं नमिय भणइ । दुम्मोयं मणयं पि हु तुह पहु ! पयपंकयं मज्झ ॥ ८८ ॥
किंतु जणयाणुरोहाओ होहिही नियपुरम्मि गमणं मे । ता कय बहुप्पसाया तुह पाया मं विमुंचंतु ॥ ८९ ॥
अवरं च देव ! देवी कलवई तह सुहेण धरियव्वा । सुविणे वि सरइ न जहा नियजणणी-जयण-बंधूणं ॥ ९० ॥

ततो भणति शङ्ख राजा पश्याहो ! मम निर्गुणस्यापि । नरनाथविजयसेनस्य पक्षपातः किमप्यधिकः ? ॥ ७७ ॥
यदि जातो रागोऽहं लघुकोऽपि हु ततः कथं गुणी जातः ? । अथवोत्तमपुरुषा पश्यन्ति दोषमपि गुणरुपम् ॥ ७८ ॥
यदि ममोपरीभूत एवं स्नेहो मनसि परिस्फुरति । ततस्तस्य ताततुल्यस्य वचनमस्माभिः कर्त्तव्यम् ॥ ७९ ॥
ततः सर्वेऽपि च सन्तुष्टमानसास्ते गताः स्वस्थानेषु । परस्परप्रीतिपरवशानां तेषां व्रजति कालः ॥ ८० ॥
अथान्यदा च सुप्रशस्ततिथि-मुहूर्ते लग्नदिवसे । प्रारब्धो राजकुले विवाहमहोत्सवो राज्ञा ॥ ८१ ॥
गम्भीरमर्दलारवविमिश्रजयतूर्यगम्भीरनिर्घोषे । अविधवावनितागीयमानमङ्गलारवसमुत्पन्ने ॥ ८२ ॥
बहुबन्दिवृन्दवाद्यज्जयजयारावभृतभुवनतले । मनोहररमणीजनसमूहत्रुटद्धारौघे ॥ ८३ ॥
वाञ्छातिरिक्तवितीर्यमाणवरदानरञ्जितजनौघे । विवाहकार्योद्यतकम्बिककरभ्रमत्सामन्ते ॥ ८४ ॥
एवंविधे लग्नस्य वासरे प्रमुदितेन परिणीता । अनुरागरसिकहृदया राज्ञा कलावती कुमारी ॥ ८५ ॥
वृत्ते विवाहमहोत्सवे सर्वाङ्गचङ्गिमायुतया । तया सह विषयसौख्यं भुनक्ति स वर्जितावद्यः ॥ ८६ ॥
जयसेनकुमारेण समं प्रवर्धमानप्रीतिप्राग्भारः । नानाविनोदव्याक्षिप्तचितो गमयति कालम् ॥ ८७ ॥
अथान्यदा कुमारो भूमिलितशिरा नृपं नत्वा भणति । दुर्मोचं मनागपि हु तव प्रभो ! पदपङ्कजं मम ॥ ८८ ॥
किन्तु जनानुरोधाद्भविष्यति निजपुरे गमनं मे । ततः कृतबहुप्रासादास्तव पादा मां विमुञ्चन्तु ॥ ८९ ॥
अपरं च देव ! देवी कलावती तथा सुखेन धर्तव्या । स्वप्नेऽपि स्मरति न यथा निजजननी-जनक-बन्धूनाम् ॥ ९० ॥

एवं ति जंपिऊणं निवेण सुपसत्थवासरे कुमरो । वोलावेउं सम्माणिऊण संपेसिओ सबलो ॥ ९१ ॥
देवीकलावईए तह कह वि हु रंजिओ महाराया । जह सव्वहा वि जाओ तच्चित्तो तम्मओ चेव ॥ ९२ ॥
संभासणाइएहिं तीए समग्गो सउत्तिलोगो वि । तह तोसविओ न जहा तव्विरहे चिट्ठइ खणं पि ॥ ९३ ॥
दासी-दासप्पमुहो परिवारो वियरणाइया तीए । आवज्जिओ तहा जह आणं सीसेणमुव्वहइ ॥ ९४ ॥
अह अन्नया य रयणीतुरीयपहरावसेससमयम्मि । सयणीयगया देवी कलावई नियइ सुमिणम्मि ॥ ९५ ॥
विप्फुरियविविहमणिरयणकिरणविरइयसुभत्तिदिसिचित्तं । कप्पूरमिस्सचंदणथवक्कचच्चक्कियावयवं ॥ ९६ ॥
खीरोयनीरभरियं भमरावलिकलियकमलपिहियमुहं । अंकम्मि पुन्नकलसं तवणीयविणिम्मियं रम्मं ॥ ९७ ॥
सुविणावसाणओ च्चिय पडिबुद्धा बंधुरस्सरं रन्नो । कहइ जहा देव ! मए सुमिणो एयारिसो दिट्ठो ॥ ९८ ॥
तो पुहइवई पसरियपमोयपरिपूरिओ पयंपेइ । तुह पिययमे ! भविस्सइ पुत्तो मह कुलगयणचंदो ॥ ९९ ॥
एवं होउ त्ति पयंपिऊण गब्भं सुहं समुव्वहइ । देवी हिययइच्छियपुन्नपरमनिस्सेसदोहलया ॥ १०० ॥
नाऊण पसवसमयं अम्मा-पियरेहिं पेसिया नियया । पडिजग्गया तओ ते पत्ता य कमेण तम्मि पुरे ॥ १०१ ॥
गयसेट्ठिगिहे आवासिया य ते दत्तपरिचयवसेणं । भवियव्वयाए दिट्ठा कलावई तेहिं पढमं पि ॥ १०२ ॥
सागयकिच्चं काउं परोप्परं पुच्छिया कुसलवत्ता । कहिओ तेहिं पि कलावईए जणयाइसंभासो ॥ १०३ ॥
जणयप्पउत्तिसवणुच्छलंतरोमंचकं चुयंगीए । हरिसेण समं तीए अच्छिजुयं वियसियं सहसा ॥ १०४ ॥

एवमिति जल्पित्वा नृपेण सुप्रशस्तवासरे कुमारः । आकार्य सन्मान्य संप्रेषितः सबलः ॥ ९१ ॥
देवीकलावत्या तथा कथमपि हु रञ्जितो महाराजा । यथा सर्वथापि जातस्तच्चित्तस्तन्मयश्चैव ॥ ९२ ॥
सम्भाषणादिकैस्तया समग्रः सपत्नीलोकोऽपि । तथा तोषयितो न यथा तद्विरहे तिष्ठति क्षणमपि ॥ ९३ ॥
दासी-दासप्रमुखः परिवारो वितरणादिना तया । आवर्जितस्तथा यथाज्ञां शीर्षेणोद्वहति ॥ ९४ ॥
अथान्यदा च रजनीतूर्यप्रहरावशेषसमये । शयनीयगता देवी कलावती पश्यति स्वप्ने ॥ ९५ ॥
विस्फुरितविविधमणिरत्नकिरणविरचितसुभक्तिदिक्चित्रम् । कर्पूरमिश्रचन्दनसमूहचर्चितावयवम् ॥ ९६ ॥
क्षीरोदनीरभृतं भ्रमरावलिकलितकमलपिहितमुखम् । अङ्के पूर्णकलशं तपनीयविनिर्मितं रम्यम् ॥ ९७ ॥
स्वप्नावशानाच्चैव प्रतिबुद्धा बन्धुरस्वरं राज्ञः । कथयति यथा देव ! मया स्वप्न एतादृशो दृष्टः ॥ ९८ ॥
ततः पृथिवीपतिः प्रसरितप्रमोदपरिपूरितः प्रजल्पति । तव प्रियतमे ! भविष्यति पुत्रो मम कुलगगनचन्द्रः ॥ ९९ ॥
एवं भवत्वितिप्रजल्प्य गर्भं सुखं समुद्वहति । देवी हृदये च्छितपुण्यपरमनिःशेषदोहदा ॥ १०० ॥
ज्ञात्वा प्रसवसमयमम्मा-पितृभ्यां प्रेषिता निजकाः । प्रतिजागृतास्ततस्ते प्राप्ताश्च क्रमेण तस्मिन्पुरे ॥ १०१ ॥
गजश्रेष्ठिगृह आवासिताश्च ते दत्तपरिचयवशेन । भवितव्यतया दृष्टा कलावती तैः प्रथममपि ॥ १०२ ॥
स्वागतकृत्यं कृत्वा परस्परं पृष्टाः कुशलवार्ता । कथितस्तैरपि कलावत्या जनकादिसम्भाषः ॥ १०३ ॥
जनकप्रवृत्तिश्रवणोच्छलद्रोमाञ्चकञ्चुकिताङ्ग्याः । हर्षेण समं तस्या अक्षियुग्मं विकसितं सहसा ॥ १०४ ॥

---

१. चअंचियंगीए रं० ।

तो तेहिं समुवणीयं कुंकुम-कप्पूर-चंदणाईयं । भोगंगं तह वत्थाणि तीए पट्टउलयाईणि ॥ १०५ ॥

अवरं च अंगयजुयं जडियं झलकंतरयणनियरेण । कुमरेण सिणेहेणं पेसियमेयं नरिंदकए ॥ १०६ ॥

पुव्वप्परूढपणएण जाइयं आसि दत्तएणावि । नियपियमानिमित्तं तस्स विदिन्नं न कुमरेण ॥ १०७ ॥

तं धेत्तुं तीयुत्तं अहमवि रन्नो समप्पइस्सामि । सम्माणिऊण तीए विसज्जिया ते गयाऽऽवासे ॥ १०८ ॥

अंगयजुयलं विप्फुरियरणकिरिणावलीहिं दिप्पंतं । नियभुयजुयले परिहियमसेससहियणजुत्ताए ॥ १०९ ॥

एत्थंतरम्मि रायाऽवरोहमज्झे समागओ सुणइ । हसियरवं किं एवं ? ति चिट्ठए जाव सवियक्को ॥ ११० ॥

ता जालगवक्खेणं भुयासु अंगयजुयं नियइ तीसे । निसुणइ य वज्जरंतिं देविं एवं सहीण पुरो ॥ १११ ॥

पियसहि ! अंगयसंगा सुहारसेणेव सित्तमंगं मे । अहवा इमेसि दंसणमेत्तेण वि सो मए दिट्ठो ॥ ११२ ॥

तन्नामग्गहणेण वि मज्झ मणं किमवि वियसियं इन्हि । संसग्गाओ इमेसिं सो चेव य मज्झ परिसत्तो ॥ ११३ ॥

पेच्छह अच्छरियमिणं मणप्पियस्सावि दत्तयस्स इमं । दिन्नं न मग्गियं पि हु तं सोउं सहियणेणुत्तं ॥ ११४ ॥

सामिणि ! तस्स जहा तं मणप्पिया सव्वहा तहा नऽन्नो । तो तस्स नेव दिन्नं ता इह अत्थे किमच्छरियं ? ॥ ११५ ॥

नामग्गहणविहूणाणि तासि वयणाणि निसुणिउं राया । कुवियप्पवसवियंभियईसाविसविहुरसव्वंगो ॥ ११६ ॥

चिंतइ विसन्नचित्तो इमीए अवरो मणिप्पिओ कोइ । जस्स गुणग्गहणमिमं करेइ सहिययणपच्चक्खं ॥ ११७ ॥

अहयं तु कवडनेहप्पवंचओ मोहिऊणमच्चत्थं । अवियाणियपरमत्थो वसीकओ पावकम्माए ॥ ११८ ॥

ततस्तैः समुपनीतं कुङ्कुम-कर्पूर-चन्दनादिकम् । भोगाङ्गं तथा वस्त्राणि तस्याः पट्टकुलकादिनि ॥ १०५ ॥

अपरं चाङ्गदयुग्मं खचितं दीप्तरत्ननिकरेण । कुमारेण स्नेहेन प्रेषितमेतन्नरेन्द्रकृते ॥ १०६ ॥

पूर्वप्ररुढप्रणयेन याचितमासीदत्तकेनापि । निजप्रियतमानिमित्तं तस्य वितीर्णं न कुमारेण ॥ १०७ ॥

तद्गृहीत्वा तयोक्तमहमपि राज्ञः समर्पयिष्यामि । सन्मान्य तया विसर्जितास्ते गता आवासे ॥ १०८ ॥

अङ्गदयुगलं विस्फुरितरत्नकिरणावलिभि दिप्यमानं । निजभुजयुगले परिहितमशेषसखीजनयुक्तया ॥ १०९ ॥

अत्रान्तरे राजान्तःपुरमध्ये समागतः शृणोति । हर्षितरवं किमेतदिति तिष्ठति यावत् सवितर्कः ॥ ११० ॥

ततो जालगवाक्षेण भुजयोरङ्गदयुग्मं पश्यति तस्याः । निश्रुणोति च कथयन्तीं देवीमेवं सख्युः पुरः ॥ १११ ॥

प्रियसखि ! अङ्गदसंगात् सुखारसेनैव सिक्तमङ्गं मे । अथवैतयो दर्शनमात्रेणापि स मया दृष्टः ॥ ११२ ॥

तन्नामग्रहणेनापि मम मनः किमपि विकसितमिदानीम् । संसर्गादेतयोः स चैव च मम परिष्वक्तः ॥ ११३ ॥

पश्यताश्चर्यमिदं मनःप्रियस्यापि दत्तकस्येदम् । दत्तं न मार्गितमपि हु तत् श्रुत्वा सखीजनेनोक्तम् ॥ ११४ ॥

स्वामिनि ! तस्य यथा त्वं मनः प्रिया सर्वथा तथा नान्यः । ततस्तस्मै नैव दत्तं तत इहार्थे किमाश्चर्यम् ? ॥ ११५ ॥

नामग्रहणविहीनानि तानि वचनानि निश्रुत्य राजा । कुविकल्पवशविजृम्भितेर्ष्याविषविधुरसर्वाङ्गः ॥ ११६ ॥

चिन्तयति विषण्णचित्तोऽस्या अपरो मनप्रियः कोऽपि । यस्य गुणग्रहणमिमं करोति सखिकजनप्रत्यक्षम् ॥ ११७ ॥

अहं तु कपटस्नेहप्रपञ्चान्मोहित्वात्यर्थम् । अविज्ञातपरमार्थो वशीकृतः पापकर्मया ॥ ११८ ॥

ता तालहलं व इमाए सीसमिन्हिं पि खग्गदंडेण । पाडेमि वल्लहं वा हणिउं वियरेमि भूयाण ॥ ११९ ॥
एवं हिययब्भंतरपलित्तकोवानलाउलो राया । किंकायव्वविमूढो विसन्नहियओ विचिंतेइ ॥ १२० ॥
नूणं न होइ नारी सीलवई जं कलावईए वि । उत्तमकुलुब्भवाए वि जायमेवंविहसरूवं ॥ १२१ ॥
इय कुवियप्पवियंभणपरव्वसो नरवई पडिनियत्तो । अइवाहइ कहकहमवि वाससहस्सं व दिणसेसं ॥ १२२ ॥
तम्मि समयम्मि रन्ना पच्छन्नं वाहरित्तु भणियाओ । मायंगीओ कं पि हु पडिवज्जियं तं गयाउ गिहे ॥ १२३ ॥
पयईय वि निक्करुणो निक्करुणो नाम सारही रन्ना । भणिओ भद्दय ! रयणीविरामसमयम्मि पच्छन्नं ॥ १२४ ॥
देवी कलावई मे मोत्तव्वा अमुगगुरुअरन्नम्मि । आएसो त्ति भणित्ता निक्करुणो रयणिविरमम्मि ॥ १२५ ॥
पउणीकाऊण रहं रहंगचिक्कारगहिरनिग्घोसं । पत्तो कलावईए भवणे तं भणइ पयपणओ ॥ १२६ ॥
देवि ! समारुहसु रहे राया वि करिंदमारुहेऊण । पत्तो कुसुमुज्जाणे तुम्हाऽऽणयणेऽहमाइट्ठो ॥ १२७ ॥
तं सोउं सत्थमणा रहमारूढा कलावई देवी । निक्करुणेण वि पवमाणगामिणो पेरिया तुरया ॥ १२८ ॥
निक्करुण ! कत्थ राय ? त्ति तीए भणिए स आह एसेस । एवं समुल्लवन्ताणि ताणि पत्ताणि रन्नम्मि ॥ १२९ ॥
एएण वंचिया हं ति चिंतिउं भणइ गग्गयगिरं सा । हा पाव ! वंचिऊणं किमिहाऽऽणीया तए ? कहसु ॥ १३० ॥
न मए किमवि विरूवं विहियं ता किं तएऽवहरिया हं ? । इय सोउं निक्करुणो करुणारसपूरियसरीरो ॥ १३१ ॥
अंसुजलुल्लियनयणो कयंजली तक्कमे नमेऊण । पभणइ सामिणि ! कम्मं पि मज्झ नामस्स समरूवं ॥ १३२ ॥

ततस्तालफलमिवास्याः शीर्षमिदानीमपि खड्गदण्डेन । पातयामि वल्लभं वा हत्वा वितरामि भूतानाम् ॥ ११९ ॥
एवं हृदयाभ्यन्तरप्रदिप्तकोपानलाकूलो राजा । किंकर्त्तव्यविमूढो विषण्णहृदयो विचिन्तयति ॥ १२० ॥
नूनं न भवति नारी शीलवती यत्कलावत्या अपि । उत्तमकुलोद्भवाया अपि जातमेवंविधस्वरुपम् ॥ १२१ ॥
इति कुविकल्पविजृम्भणपरवशो नरपतिः प्रतिनिवृत्तः । अतिवाहयति कथंकथमपि वर्षसहस्रमिव दिनशेषम् ॥ १२२ ॥
तस्मिन् समये राज्ञा प्रच्छन्नं व्याहृत्य भणिताः । मातङ्ग्यःकिमपि हु प्रतिपद्य तं गता गृहे ॥ १२३ ॥
प्रकृत्यापि निष्करुणो निष्करुणो नाम सारथी राज्ञा । भणितो भद्रक ! रजनीविरामसमये प्रच्छन्नम् ॥ १२४ ॥
देवी कलावती मे मोक्तव्यामुकगुर्वरण्ये । आदेश इति भणित्वा निष्करुणो रजनिविरामे ॥ १२५ ॥
प्रगुणीकृत्वा रथं रथाङ्गचित्कारगम्भीरनिर्घोषम् । प्राप्तः कलावत्या भवने ता भणति पदप्रणतः ॥ १२६ ॥
देवि ! समारुह रथं राजापि करीन्द्रमारुहय । प्राप्तः कुसुमोद्याने तवाऽऽनयनेऽहमादिष्टः ॥ १२७ ॥
तत् श्रुत्वा स्वस्थमना रथमारुढा कलावती देवी । निष्करुणेनापि पवमानगामिनः प्रेरितास्तुरगाः ॥ १२८ ॥
निष्करुण ! क्व राजा ? इति तया भणिते स आहाशेषम् । एवं समुल्लपन्तौ तौ प्राप्तावरण्ये ॥ १२९ ॥
एतेन वञ्चिताहमिति चिन्तयित्वा भणति गद्गद्गिरं सा । हा पाप ! वञ्चित्वा किमिहाऽऽनीता त्वया ? कथय ॥ १३० ॥
न मया किमपि विरुपं विहितं ततः किं त्वयापहृताऽहम् ? । इति श्रुत्वा निष्करुणः करुणारसपूरितशरीरः ॥ १३१ ॥
अश्रुजलार्द्रितनयनः कृताञ्जलिस्तत्क्रमौ नत्वा । प्रभणति स्वामिनि ! कर्मापि मम नाम्नः समरुपम् ॥ १३२ ॥

मा होज्ज मज्झ सरिसो पुरिसो निब्भग्गसेहरो पावो । जो एवंविहकम्मे निओइओ हयपयावयणा ॥ १३३ ॥
चयइ सिणिद्धं पि जणं कुणइ अकज्जं पि हणइ जणयं पि ।
किं किं न कुणइ सामिणि ! परव्वसो सेवयवराओ ? ॥ १३४ ॥
सव्वाण वि पावाणं सिरोमणित्तं सया समुव्वहइ । सेवापरव्वसत्तं नराण जेणेरिसं भणियं ॥ १३५ ॥
सोच्छ्वासं मरणं निरग्निं दहनं, निःशृङ्खलं बन्धनं, निष्पङ्कं मलिनं, विनैव नरकं सैषा महायातना ।
सेवासञ्जनितं जनस्य सुधियो धिक् पारवश्यं यतः, पञ्चानां सविशेषमेतदपरं षष्ठं महापातकम् ॥ १३६ ॥
ता ओयरिय रहाओ उवविससु तले विसालसालस्स । आणत्तमिमं रन्ना न अन्नहा कीरए एयं ॥ १३७ ॥
तं सोयं सोयामणिपहारपहय व्व जाव ओयरइ । रहरयणाओ मुच्छाए निवडिया ता महीवीढे ॥ १३८ ॥
निक्करुणो रुयमाणो रहरयणं गिण्हिउं गओ नयरे । वणपवणवीइयंगी सचेयणा सा वि संजाया ॥ १३९ ॥
चिट्ठइ जाव सकरुणं रुयमाणी मन्नुपूरियसरीरा । ता पत्ताओ मायंगिणीओ नरवइनिउत्ताओ ॥ १४० ॥
भिउडीभीमनिडालाओ तडिलयातरलकत्तियकराओ । निब्भच्छिउं पयत्ताओ ताओ फरुसक्खरगिराहिं ॥ १४१ ॥
आ पाविट्ठे ! दुट्ठे ! रायसिरिं माणिउं न याणासि । अणुरतस्स वि पडिकूलवत्तिणि ! होसि जं रन्नो ॥ १४२ ॥
ता उवमुंजसु दुव्विलसियस्स फलमिइ पयंपिउं ताहिं । रयणाभरणविराइयभुयजुयलं छिंदियं तीए ॥ १४३ ॥
सद्धिं भुयजुयलेणं देवी पडिया महीए मुच्छाए । कह कहमपि चेयन्नं लहिऊणं विलविउं लग्गा ॥ १४४ ॥
हा हा निद्दय ! हयविहि ! विहियं किं एरिसं तए मज्झ । गुरुदुक्खमयंडे वि हु विणावराहेण दीणाए ? ॥ १४५ ॥

मा भवेन्मम सदृशः पुरुषो निर्भाग्यशेखरः पापः । य एवंविधकर्मणि नियोजितो हतप्रजापतिना ॥ १३३ ॥
त्यजति स्निग्धमपि जनं करोत्यकार्यमपि हन्ति जनकमपि ।
किं किं न करोति स्वामिनि ! परवशः सेवकवराकः ? ॥ १३४ ॥
सर्वेषामपि पापानां शिरोमणित्वं सदा समुद्वहति । सेवापरवशत्वं नराणां येनेदृशं भणितम् ॥ १३५ ॥
ततोऽवतीर्यरथादुपविश तले विशालशालस्य । आज्ञप्तमिदं राज्ञा नान्यथा क्रियत एतत् ॥ १३७ ॥
तत् श्रुत्वा सौदामिनिप्रहारप्रहतेव यावदवतरति । रथरत्नान्मूर्च्छया निपतिता तावन्महीपीठे ॥ १३८ ॥
निष्करुणो रुदन्रथरत्नं गृहीत्वा गतो नगरे । वनपवनवीज्ञिताङ्गी सचेतना सापि सञ्जाता ॥ १३९ ॥
तिष्ठति यावत्सकरुणं रुदन्ती मन्युपूरितशरीरा । तावत्प्राप्ता मातङ्गीन्यो नरपतिनियुक्ताः ॥ १४० ॥
भृकुटिभीमनिडालास्तडिल्लतातरलकर्त्रिककराः । निर्भर्त्स्यं प्रयतास्ताः परुषाक्षरगीर्भिः ॥ १४१ ॥
आ पापिष्ठे ! दुष्टे ! राजश्रियं मानयितुं न जानासि । अनुरक्तस्यापि प्रतिकूलवर्त्तिनि ! भवसि यद्राज्ञः ॥ १४२ ॥
तत उपभुङ्क्ष्व दुर्विलसितस्य फलमिति प्रजल्प्य ताभिः । रत्नाभरणविराजितभुजयुगलं छित्वा तस्याः ॥ १४३ ॥
सार्द्धं भुजयुगलेन देवी पतिता मह्यां मूर्च्छया । कथं कथमपि चैतन्यं लब्ध्वा विलपितुं लग्ना ॥ १४४ ॥
हा हा निर्दय ! हतविधे ! विहितं किमीदृशं त्वया मम । गुरुदुःखमकाण्डेऽपि हु विनापराधेन दीनायाः ? ॥ १४५ ॥

हा अज्जउत्त ? जुत्तं न तुज्झ उत्तमकुलप्पसूयस्स । दाउं दारुणदुक्खं दोसमदंसिय दयानिहिणो ॥ १४६ ॥
गुरुदोसदूसियाण वि अपरिक्खियकारिणो न सप्पुरिसा । ते मह निद्दोसाए वि किं तए एरिसं विहियं ? ॥ १४७ ॥
मह उवरि आसि नेहो सामि ! सयाऽनन्नसरिसओ तुज्झ । संजायं तस्स इमं पज्जवसाणं पभणियं च ॥ १४८ ॥
ताण गुणग्गहणाणं ताणुक्कठाणं ताण भणियाण । ताण रमियाण पिययम ! अवसाणं एरिसं जायं ॥ १४९ ॥
अहवा मह पुव्वक्कयकम्माणं परिणई इमा जाया । न हु अत्थि एत्थ कस्स वि दोसो थेवो वि हु परस्स ॥ १५० ॥
इय एवं अत्ताणं संधीरंतीए तीए संभरियं । नियजणय-जणणि-बंधूण तयणु पुण विलविउं लग्गा ॥ १५१ ॥
हा ताय ! ममं तायसु उच्छलियतरच्छ-अच्छभल्लिम्मि । रन्ने नाहर-रुरु-रोज्झमुक्कवोक्कारवरउद्दे ॥ १५२ ॥
आ अंब ! संवरालीकरालकंतारमज्झयारम्मि । नियदुहियं सुहियं कुण काउं पुव्वं व उच्छंगे ॥ १५३ ॥
हा भाय ! भाय ! भीमाडवीए भीयाए देसु मंभीसं । जम्हा जगे पसिद्धं भइणाए वच्छलो भाया ॥ १५४ ॥
तह तीए तत्थ रुन्नं सरिउं पिय-जणय-जणणि-बंधूणं । जह जायाणि पसूण वि मणाणि विप्फुरियकरुणाणि ॥१५५॥
भुयजुयविकत्तणुब्भवपीडाविहुरियसमग्गअंगाए । उयरम्मि तीए जायं सूलं संचलियगब्भाए ॥ १५६ ॥
नाऊण पसवसमयं पत्ता पत्तलतरूण गुम्मम्मि । गुरुवेयणाए विवसा उत्तमपुत्तं पसूया सा ॥ १५७ ॥
नियइ य नियमक्कमकमलजुयलमज्झम्मि फुरियतणुकिरिणं । पुत्तं उत्तमलक्खणसमन्नियं अमरकुमरं व ॥ १५८ ॥
तत्तो चित्तब्भंतरभवंतपरिओस-गुरुविसायजुया । जंपइ पुत्तय ! कल्लाणसंजुओ होसु दीहाऊ ॥ १५९ ॥

हा आर्यपुत्र ! युक्तं न तवोत्तमकुलप्रसूतस्य । दातुं दारुणदुःखं दोषमदर्शयित्वा दयानिधेः ॥ १४६ ॥
गुरुदोषदुषितानामप्यपरीक्षितकारिणो न सत्पुरुषाः । ते मम निर्दोषाया अपि किं त्वयेदृशं विहितम् ? ॥ १४७ ॥
ममोपर्यासीत् स्नेहः स्वामिन् ! सदाऽनन्यसदृशस्तव । सञ्जातं तस्येदं पर्यवसानं प्रभणितं च ॥ १४८ ॥
तेषां गुणग्रहणानां तेषामुत्कण्ठानां तेषां भणितानाम् । तेषां रन्तानां प्रियतम ! अवसानमीदृशं जातम् ॥ १४९ ॥
अथवा मम पूर्वकृतकर्माणां परिणतिरिमा जाता । न खल्वस्त्यत्र कस्यापि दोषः स्तोकोऽपि हु परस्य ॥ १५० ॥
इत्येवमात्मानं सन्धीरन्त्या तया स्मृतम् । निजजनक-जननी-बन्धूनां तदनु पुनर्विलपितुं लग्ना ॥ १५१ ॥
हा तात ! मां त्रायस्वोच्छलिततरक्षर्क्षभल्ले । अरण्ये नाहर-रुरु-रोझमुक्तपुत्कारवरौद्रे ॥ १५२ ॥
हा अम्ब! संवरालीकरालकान्तारमध्ये । निजदुहितरं सुखितां कुरु कृत्वा पूर्वमिवोत्सङ्गे ॥ १५३ ॥
हा भ्रात ! भ्रात ! भीमाटव्यां भीतायां देहि माभीः । यस्माज्जने प्रसिद्धं भगिन्या वत्सलो भ्राता ॥ १५४ ॥
तथा तथा तत्र रुदितं स्मृत्वा प्रिय-जनक-जननी-बन्धूनाम् । यथा जातानि पशूनामपि मनांसि विस्फुरितकरुणानि ॥१५५॥
भुजयुगविकर्तनोद्भवपीडाविधुरितसमग्राङ्गायाः । उदरे तस्या जातं शूलं सञ्चलितगर्भायाः ॥ १५६ ॥
ज्ञात्वा प्रसवसमयं प्राप्ता पत्रालतरुणां गुल्मे । गुरुवेदनया विवशोत्तमपुत्रं प्रसूता सा ॥ १५७ ॥
पश्यति च निजकक्रमकमलयुगलमध्ये स्फुरिततनुकिरणम् । पुत्रमुत्तमलक्षणसमन्वितममरकुमारमिव ॥ १५८ ॥
ततश्चित्ताभ्यन्तरभवत्परितोष-गुरुविषादयुता । जल्पति पुत्रक ! कल्याणसंयुक्तो भव दीर्घायुः ॥ १५९ ॥

किर तुज्झ जम्मदिवसे वद्धावणयं गुरुं करिस्सामि । इय चिंतियं पि संजायमन्नहापुत्त ! उत्तं च ॥ १६० ॥
अन्नह परिचिंतिज्जइ सहरिसकंदुज्जुएण हियएण । परिणमइ अन्नह च्चिय कज्जारंभो विहिवसेण ॥ १६१ ॥
पाणिविहूणा पुत्तय ! परिचेट्ठुं मंदभाइणी अहयं । तुह किह करेमि संपइ ? इय विलवंतीए देवीए ॥ १६२ ॥
पुत्तो चडप्फडंतो तरंगिणीकूलसम्मुहो ढुलिओ । धरिओ य तीए चलणेसु झत्ति एवं भणंतीए ॥ १६३ ॥
हा हा निक्करुण ! कयंत ! किं न तुट्ठो सि एत्तियदुहेण । जं हरसि पुत्तरयणं पि दीणयवणाए मह इण्हिं ? ॥ १६४ ॥
पणइयणकरुणकरणे पणया हं तुह तरंगिणीतिलए ! । भयवइ ! पवित्तनीरे ! तीरे तुह हीरए कुमरो ! ॥ १६५ ॥
ता देवि ! दयं काऊण कुणसु कुमरस्स रक्खणं इन्हिं । जम्हा तुम्हाणं सरणमागया दीणवयणा हं ॥ १६६ ॥
जइ जयइ जए सीलं रयणीयरकिरणनियररमणीयं । परिपालियं मए वि हु तं जइ सुविसुद्धहिययाए ॥ १६७ ॥
ता दिव्वनाणनयणे ! कुण प्पसायं नइप्पयइसच्छे ! । जह पालिज्जह बालो नवरंभागब्भसुकुमारो ॥ १६८ ॥
इय दीणरुयणसवणुच्छलंतकरुणाए सिंधुदेवीए । सा कमलनालकोमलभुयालया निम्मिया सहसा ॥ १६९ ॥
तो तीए तक्खणं चिय सोयपिसाओपलाइऊण गओ । मंतस्स व भुयजुयलस्स दंसणे हिट्ठहियियाए ॥ १७० ॥
धेत्तूण तयं कंकेल्लिपल्लवारत्तपाणिजुयलेण । अंकम्मि कुणइ नवकमलमउलसुकुमालयं बालं ॥ १७१ ॥
अग्धाइऊण सीसे पयंपए जाय ! तुज्झ मुहससिणो । ओयारणणं किज्जामि भणिय कारेइ थणपाणं ॥ १७२ ॥
पुणरवि चित्तब्भंतरभवंतसंपुन्नमन्नुसंभारा। अइकरुणं रुयमाणी पयंपिउं एवमारद्धा ॥ १७३ ॥

किल तव जन्मदिवसे वर्धापनकं गुरुं करिष्यामि । इति चिन्तितमपि सञ्जातमन्यथा पुत्र ! उक्तं च ॥ १६० ॥
अन्यथा परिचिन्त्यते सहर्षकन्दूद्यतेन हृदयेन । परिणमत्यन्यथा चैव कार्यारम्भो विधिवशेन ॥ १६१ ॥
पाणिविहीना पुत्रक ! परिचेष्टं मन्दभागिन्यहम् । तव कथं करोमि सम्प्रतिः ? इति विलपन्त्याः देव्याः ॥ १६२ ॥
पुत्रो व्याकुलयंस्तरंगिणीकूलसंमुखो लुठितः । धृतश्च तया चरणयोः शीघ्रमेवं भणन्त्या ॥ १६३ ॥
हा हा निष्करुण ! कृतान्त ! किं न तुष्टोऽसि एतावद्दुःखेन । यद्धरसि पुत्ररत्नमपि दीनवदनाया ममेदानीम् ? ॥ १६४ ॥
प्रणतिजनकरुणाकरणे प्रणताहं तव तरङ्गीणीतिलके ! । भगवति ! पवित्रनीरे ! तीरे तव ह्रियते कुमारः ॥ १६५ ॥
ततो देवि ! दयां कृत्वा कुरु कुमारस्य रक्षणमिदानीम् । यस्माद्युस्माकं शरणमागता दीनवदनाहम् ॥ १६६ ॥
यदि जयति जगति शीलं रजनीकरकिरणनिकररमणीयम् । परिपालितं मयापि हु तं यदि सुविशुद्धहृदयया ॥ १६७ ॥
ततो दिव्यज्ञाननयने ! कुरु प्रसादं नदीप्रकृतिस्वच्छे ! । यदि पालयेद्बालो नवरम्भागर्भसुकुमालः ॥ १६८ ॥
इति दीनरुदनश्रवणोच्छलत्करुणया सिन्धुदेव्या । सा कमलनालकोमलभुजालता निर्मिता सहसा ॥ १६९ ॥
ततस्तस्यास्तत्क्षणं चैव शोकपिशाचःपलायित्वा गतः । मन्त्रस्येव भुजयुगलस्य दर्शने हृष्टहृदयायाः ॥ १७० ॥
गृहीत्वा तकं कंकेलिपल्लवारक्तपाणियुगलेन । अङ्के करोति नवकमलमुकुलसुकुमालकं बालम् ॥ १७१ ॥
आघ्राय शीर्षे प्रजल्पति जात ! तव मुखशशिनः । अवतारणं कूर्याम् भणित्वा कारयति स्तनपानम् ॥ १७२ ॥
पुनरपि चित्ताभ्यन्तरभवत्संपूर्णमन्युसम्भारा । अतिकरुणं रुदन्ती प्रजल्पितुमेवमारब्धा ॥ १७३ ॥

जायाऽहमकयसुकया कहमणुचियकंदमूलफलवित्ती । काउं काहं तुह देहवद्धणं वच्छय ! अपत्थां ॥ १७४ ॥

धन्नाउ बालकाले वि कलियबंभव्वयाओ समणीओ । विप्फुरिओ जाण मणे मणयं पि न पेम्मपरिणामो ॥ १७५ ॥

जइ किर अहमवि हुंता समणी बालत्तेण वि सुहचित्ता । ता पिययमपेम्मबिडंबणं इमं नेय पावेंता ॥ १७६ ॥

इय एवं दीणसरं रुयमाणी तं वणं भमंतेण । कंद-फल-मूलकज्जे सा दिट्ठा तत्थ कुलवइणा ॥ १७७ ॥

मंभीसिऊण भणिया वच्छे ! आगच्छ आसमपयम्मि । तो सा तेण समेया तवस्सिआसमपयं पत्ता ॥ १७८ ॥

भणिया य पुत्ति ! उत्तिमवंसुप्पत्तिं कहेइ तुह देहो । दंसंतो सुहलक्खणनियरं झस-कुलिसपमुहमिमो ॥ १७९ ॥

ता कहसु काऽसि तं ? इय पयंपिया जायमन्नुसंभारा । संधीरिया य तावसवइणा इय कोमलगिराहिं ॥ १८० ॥

मुंचसु विसायमिणमो वच्छे ! सच्छंदयाए दुल्ललिओ । जह पडिहाइ तहेव य विलसइ एसो हयकयंतो ॥ १८१ ॥

जो होइ सया सुहिओ वियरइ दुहमइसएण तस्सेव । जो पुण दुहसंभारेण पूरिओ कुणइ तं सुहियं ॥ १८२ ॥

जो होइ धणाहिवई दरिद्दचूडामणिं तयं कुणइ । जो पुण दोगच्चदुही सुहयइ तं दविणदाणेण ॥ १८३ ॥

जो विलसिरसोहग्गो दोहग्गं देइ दुस्सहं तस्स । दोहग्गजुयं तह जणइ होइ जह सयलजणइट्ठो ॥ १८४ ॥

जेसिमकित्तिमपेम्मं तेसि तं विहाडेइ । संघडइ विहडियं पि हु केसिं पि तयं महापावो ॥ १८५ ॥

ता एवंविहविहिविलसियम्मि भद्दे ! कहं कुणसि सोयं ? । धीरत्तणमवलंबिय सोयपिसायं परिच्चयसु ॥ १८६ ॥

एत्थ ठिया परिपालसु पुत्तं गुरु-देवजणियबहुमाणा । जा पुव्वभवोवज्जियसुकयं सविहीभवइ भद्दे ! ॥ १८७ ॥

जाताहमकृतसुकृता कथमनुचितकन्दमूलफलवृत्तिम् । कृत्वा करिष्ये तव देहवर्धनं वत्सक ! अपथ्याम् ॥ १७४ ॥

धन्या बालकालेऽपि कलितब्रह्मव्रताः श्रमण्यः । विस्फुरितो यासां मनसि मनागपि न प्रेमपरिणामः ॥ १७५ ॥

यदि किलाहमप्यभवं श्रमणी बालत्वेऽपि शुभचित्ता । तदा प्रियतमप्रेमविडम्बनमिदं नैवाप्राप्नवम् ॥ १७६ ॥

इत्येवं दीनस्वरं रुदन्तीं तं वनं भ्रमता । कन्द-फल-मूलकार्ये सा दृष्टा तत्र कुलपतिना ॥ १७७ ॥

मा भैषी र्भणिता वत्से ! आगच्छाश्रमपदे । ततः सा तेन समेता तपस्व्याश्रमपदं प्राप्ता ॥ १७८ ॥

भणिता च पुत्रि ! उत्तमवंशोत्पत्तिं कथयति तव देहः । दर्शयन् शुभलक्षणनिकरं झष-कुलिशप्रमुखमयम् ॥ १७९ ॥

ततः कथयः काऽसित्वम् ? इति प्रजल्पिता जातमन्युसम्भारा । सन्धीरिता च तापसपतिनेति कोमलगीर्भिः ॥ १८० ॥

मुञ्च विषादमयं वत्से ! स्वच्छन्दतया दुर्ललितः । यथा प्रतिभाति तथैव च विलसत्येषो हतकृतान्तः ॥ १८१ ॥

यो भवति सदा सुखितो वितरति दुःखमतिशयेन तस्यैव । यः पुन दुःखसम्भारेण पूरितः करोति तं सुखितम् ॥ १८२ ॥

यो भवति धनाधिपति र्दरिद्रचूडामणिस्तकं करोति । यः पुन दौर्गत्यदुःखी सुखयति तं द्रविणदानेन ॥ १८३ ॥

यो विलसत्सौभाग्यो दौर्भाग्यं ददाति दुःसहं तस्य । दौर्भाग्ययुतं तथा जनयति भवति यथा सकलजनेष्टः ॥ १८४ ॥

येषामकृत्रिमप्रेम परस्परं तेषां तद्विघटयति । संघटयति विघटितमपि हु केषामपि तकं महापापः ॥ १८५ ॥

तत एवंविधविधिविलसिते भद्रे ! कथं करोषि शोकम् ? । धीरत्वमवलम्ब्य शोकपिशाचं परित्यज ॥ १८६ ॥

अत्र स्थिता परिपालय पुत्रं गुरु-देवजनितबहुमाना । यावत्पूर्वभवोपार्जितसुकृतं सविधीभवति भद्रे ! ॥ १८७ ॥

एवमणुसासिया सा कुलवइणा जायजीवियव्वासा । पुत्तं परिपालंती तत्थ ठिया ईसिअवसोया ॥ १८८ ॥
एत्तो मायंगीओ सह केऊरेहिं तीए भुयजुयलं । दंसंति रुहिरधारारुणियाभरणं नरिंदस्स ॥ १८९ ॥
जा नरवई निरूवइ केऊरजुयं करे कलेऊण । जयसेणकुमरनामं ता तत्थुक्किरियं नियइ ॥ १९० ॥
तं पेच्छिउं नरिंदो धसक्किओ वज्जधायपहओ व्व । तन्निच्छयाय वाहरिय पुच्छए झत्ति गयसेट्ठिं ॥ १९१ ॥
किं देवसालनयराओ आगओ कोइ ? भणइ सेट्ठी वि । संतीह देव ! देवीमुयावणे आगया पुरिसा ॥ १९२ ॥
नवरं नऽज्ज वि पावंति तुम्ह पयपउमदंसणं देव ! । तो ते वि समाहूया संपत्ता रायपयपुरओ ॥ १९३ ॥
भणिया य भो किमेयं केऊरजुयं ? ति तयणु ते बेंति । सामिय ! ममुल्लमणिमयमंगयजुयमिममइप्पवरं ॥ १९४ ॥
जयसेणकुमारेणं तुम्हं पाणप्पियाए पेसवियं । मुक्कं समइक्कंते दिणम्मि देवीगिहे आसि ॥ १९५ ॥
इय एवमुल्लवंताण ताण सहस त्ति संखनरनाहो । मुच्छामीलियनयणो पडिओ सीहासणुच्छंगे ॥ १९६ ॥
जललवविमिस्सवीयणवीइओ किच्छपत्तचेयन्नो । निस्सेसजणसमक्खं अत्ताणं निंदिउं लग्गो ॥ १९७ ॥
अहह ? महापावो हं अहह ! अणज्जो अहो ! सुनिक्करुणो । जं सुद्धसीलकलिया कलावई पाविया मरणं ॥ १९८ ॥
तो मंति-मंडलेसर-सामंता आयरेण पुच्छंति । सामि ! किमेयमयंडे ? राया वि कहेउमारद्धो ॥ १९९ ॥
भो ! नियएणं दुव्विलसिएण संताविओ अईवाहं । जेण तणं व न गणिओ नेहजुओ वि हु विजयराया ॥ २०० ॥
जयसेणकुमारस्स वि नेहतरू वड्ढिओ वि मणठाणे । पक्खित्तो उक्खणिउं आमूलाओ वि पेच्छ मए ॥ २०१ ॥

एवमनुशास्तिा सा कुलपतिना जातजीवितव्याशा । पुत्रं परिपालयन्ती तत्र स्थितेषदपशोका ॥ १८८ ॥
इतो मातङ्ग्यः सह केयूरैस्तस्या भुजयुगलम् । दर्शयन्ति रुधिरधारारुणिताभरणं नरेन्द्रस्य ॥ १८९ ॥
यावन्नरपति निर्रुपयति केयूरयुग्मं करे कलित्वा । जयसेनकुमारनाम तावत्तत्रोत्किरितं पश्यति ॥ १९० ॥
तं दृष्ट्वा नरेन्द्रो क्षुब्धो वज्रधातप्रहत इव । तन्निश्चयाय व्याहृत्य पृच्छति झटिति गजश्रेष्ठिनम् ॥ १९१ ॥
किं देवशालनगरादागतः कोऽपि ? भणति श्रेष्ठ्यपि । सन्तीह देव ! देवीमोचयने आगताः पुरुषाः ॥ १९२ ॥
नवरं नाद्यापि प्राप्नुवन्ति तव पदपद्मदर्शनं देव ! । ततस्तेऽपि समाहूताः सम्प्राप्ता राजपदपुरः ॥ १९३ ॥
भणिताश्च भो किमेतत् केयूरयुग्ममिति ? तदनु ते ब्रुवन्ति । स्वामिन् ! अमूल्यमणिमयमङ्गदयुग्ममिदमतिप्रवरम् ॥ १९४ ॥
जयसेनकुमारेण युष्मत्प्राणप्रियायाः प्रेषितम् । मुक्तं समतिक्रान्ते दिने देवीगृहे आसीत् ॥ १९५ ॥
इत्येवमुल्लपतां तेषां सहसेति शङ्खनरनाथः । मूर्च्छामिलितनयनः पतितः सिंहासनोत्सङ्गे ॥ १९६ ॥
जललवविमिश्रव्यंजनकवीझितः कृच्छ्रप्राप्तचैतन्यः । निःशेषजनसमक्षमात्मानं निन्दितुं लग्नः ॥ १९७ ॥
अहह ? महापापोऽहमहह ! अनार्योऽहो ! सुनिष्करुणः । यच्छुद्धशीलकलिता कलावती प्राप्ता मरणम् ॥ १९८ ॥
ततो मन्त्रि-मण्डलेश्वर-सामन्ता आदरेण पृच्छन्ति । स्वामिन् ! किमेतदकाण्डे ? राजापि कथयितुमारब्धः ॥ १९९ ॥
भो ! निजकेन दुर्विलसितेन सन्तापितोऽतीवाहम् । येन तृणमिव न गणितः स्नेहयुतोऽपि हु विजयराजा ॥ २०० ॥
जयसेनकुमारस्यापि स्नेहतरु र्वर्धितोऽपि मनःस्थाने । प्रक्षिप्त उत्खन्यामूलादपि पश्य मया ॥ २०१ ॥

थीरयणदाणगयपुत्तदत्तमेत्ती गया वि गरुयत्तं । सव्वा वि य पम्हुसियाऽकयन्नुणा पेच्छ पावेण ॥ २०२ ॥
पणओ कलावईए वऽणन्नसरिसो गओ वि गरुयत्तं । एगपए च्चिय चत्तो अपरिक्खियकज्जकरणेण ॥ २०३ ॥
अभयकरकिरणनिम्मलकुले मसीकुच्चओ मए दिन्नो । वित्थारिओ य सनरा-ऽमरा-ऽसुरे तिहुयणे अयसो ॥ २०४ ॥
जं सुद्धसीलकलिया वि नट्ठसील त्ति कप्पिऊण मए । संपत्तपसवसमया पवेसिया हयकयंतमुहे ॥ २०५ ॥
न य मज्झ अत्थि सुद्धी थीवज्झाकारिणो विणा जलणं । ता कुणह मह निमित्तं कट्ठचियं जेण पविसामि ॥ २०६ ॥
इय नरवरिंदवज्जरियवयणसमगुच्छलंतगुरुसोओ । अत्थाणजणोऽन्नोन्नं वयणाणि पलोइउं लग्गो ॥ २०७ ॥
तो समकालं हा हा ! हं ह ! त्ति उम्मुक्कपुक्कधाहोहो । सोउं नरिंदवयणं नयरजणो कंदिउं लग्गो ॥ २०८ ॥
हा उचियकरणदक्खे ! हा ससहरसेयसीलकयरक्खे ! । दे देवि ! देसु दंसणमेवं पलवंति कंचुइणो ॥ २०९ ॥
हा सामिणि ! दीणाओऽणुकंपणीयाओ संपयं अम्हे । जायाओ तं विणा इय रुयंति दासीओ सयलाओ ॥ २१० ॥
हा ! दइएण न सुन्दरमणुट्ठियं निट्ठुरेण जं तुज्झ । जणियमइदुट्ठकट्ठं ति रायदइयाओ रोयंति ॥ २११ ॥
हा निव्वियारनयणे ! हा मिउवयणे ! हहा पसमसयणे[1] ! हा हा ! तं कत्थ गय ? त्ति मंतिवग्गो वि पलवेइ ॥ २१२ ॥
हा ! को दाही निययंगलग्गमाभरणमइसुतुट्ठो वि । मज्झ देवीए विण ? त्ति कंदए बंदिविंदं पि ॥ २१३ ॥
हा हा रमणीयणवयणमंडणे ! खंडणे ! अकज्जाण । कत्थ गया सि ? त्ति रुयंति पुरपुरंधीओ मिलियाओ ॥ २१४ ॥
एवं सबाल-विद्धप्पमुक्कपोक्कम्मि पुरजणे सयले । पभणइ राया मंतीण सम्मुहं करुणसद्देण ॥ २१५ ॥

स्त्रीरत्नदानगजपुत्रदत्तमैत्री गतापि गुरुकत्वम् । सर्वापि च प्रमृष्टाऽकृतज्ञेन पश्य पापेन ॥ २०२ ॥
प्रणतः कलावत्या वानन्यसदृशो गतोऽपि गुरुकत्वम् । एकपदे चैव त्यक्तोऽपरीक्षितकार्यकरणेन ॥ २०३ ॥
अमृतकरकिरणनिर्मलकुले मषीकुर्चको मया दत्तः । विस्तारितश्च सनरा-ऽमरा-ऽसुरे त्रिभुवने अयशः ॥ २०४ ॥
यत् शुद्धशीलकलितापि नष्टशीलेति कल्पित्वा मया । सम्प्राप्तप्रसवसमया प्रवेशिता हतकृतान्तमुखे ॥ २०५ ॥
न च ममास्ति शुद्धिः स्त्रीहत्याकारिणो विना ज्वलनम् । ततः कुरुत मम निमित्तं काष्टचित्तां येन प्रविशामि ॥ २०६ ॥
इति नरवरेन्द्रकथितवचनसमकोच्छलद्गुरुशोकः । आस्थानजनोऽन्योन्यं वदनानि प्रलोकितुं लग्नः ॥ २०७ ॥
ततः समकालं हा हा ! हं ह ! इत्युन्मुक्तपुत्कृतचित्कारौघः । श्रुत्वा नरेन्द्रवचनं नगरजनः क्रन्दितुं लग्नः ॥ २०८ ॥
हा उचितकरणदक्षे ! हा शशधरश्वेतशीलकृतरक्षे ! । हे देवि ! देहि दर्शनमेवं प्रलपन्ति कञ्चुकिनः ॥ २०९ ॥
हा स्वामिनि ! दीना अनुकम्पनीयाः साम्प्रतं वयम् । जातास्त्वां विनेति रुदन्ति दास्यः सकलाः ॥ २१० ॥
हा ! दयितेन न सुन्दरमनुष्ठितं निष्ठुरेण यत्तव । जनितमतिदुष्टकष्टमिति राजदयिता रुदन्ति ॥ २११ ॥
हा निर्विकारनयने ! हा मृदुवचने ! हाहा प्रशमसदने ! । हा हा ! त्वं क्व गतेति ? मन्त्रिवर्गोऽपि प्रलपति ॥ २१२ ॥
हा ! को दास्यति निजाङ्गलग्नमाभरणमतिसुतुष्टोऽपि । मम देव्या विनेति ? क्रन्दति बन्दिवृन्दमपि ॥ २१३ ॥
हा हा रमणीजनवदनमण्डपे ! खण्डने ! अकार्याणाम् । क्व गतासि ? इति रुदन्ति पुःपुरन्ध्र्यः मिलिताः ॥ २१४ ॥
एवं सबाल-वृद्धप्रमुक्तपुत्कृते पुर्जने सकले । प्रभणति राजा मन्त्रीणां सम्मुखं करुणशब्देन ॥ २१५ ॥

---

१. प्रशमसदने ! ।

जाव न तडत्ति फुट्टइ मह हिययं ता झड त्ति कट्ठेहिं । कुणह चियं न वियाणह किं दुस्सहवेयणं मज्झ ? ॥ २१६ ॥
तत्तो मंतिप्पमुहा पउरा पगलंतअंसुजलनयणा । सविणयमाबद्धकरंजलीजुया विन्नविंति निवं ॥ २१७ ॥
किं सामि ! समारद्धं मयमारणमम्ह देविदुहियाण ? । जं वंछसि पविसेउं पज्जलियचियानले घोरे ॥ २१८ ॥
तुम्हारिसा वि धीरा जइ सोयपरव्वसा भविस्संति । ता पाययप्पयाए कारहिययाए को दोसो ? ॥ २१९ ॥
अवरं च तइ जियंते सबाल-विद्धो वि जियइ पुरलोगो । मरइ मरंते पुण निच्छएण देवे दएक्करसे ॥ २२० ॥
ता दुक्खियपयापालओ वि होऊण सामि ! किह कुणसि । लोगस्स विणीयस्स वि कमागयस्सावि खयमेवं ? ॥ २२१ ॥
पुज्जंतु मा इयाणिं मणोरहा तुह रिवूण सव्वाण । ता काऊण पसायं परिपालसु पहु ! पयं पउरं ॥ २२२ ॥
एवं सविणय-सप्पणयवयणनिउणेहिं पभणिओ वि तहा । मरणेक्कबद्धबुद्धी समुट्ठिओ संखनरनाहो ॥ २२३ ॥
अणुगम्मंतो गुरुसोयरत्तनेत्तेहिं नयरलोएहिं । नियमंदिराओ चलिओ चलणेहिमरइयसिंगारो ॥ २२४ ॥
अब्भत्थिऊण कह कह वि तुरयमारोविओ अमच्चेहिं । परिहरियछत्त-चिंधाइरायलंकारसंदोहो ॥ २२५ ॥
वज्जियजयआउज्जो वारियचारणगणत्थवणकज्जो । निस्सद्दबंदिविंदो अहक्कपाइक्कचक्कजुओ ॥ २२६ ॥
पेच्छिज्जंतो पगलंतअंसुजालाहिं नयरबालाहिं । वारिज्जंतो आबद्धपाणिपउमाहिं थेरीहिं ॥ २२७ ॥
पत्तो य नंदणुज्जाणपरिसरे तो विसन्नवयणेसु । मंतीसु रायरक्खानिमित्तमप्पत्तबुद्धीसु ॥ २२८ ॥
गयसेट्ठिणा सविणयं भणियं इह सामि ! नंदणुज्जाणे । फलिहमणिरयणनिम्मियजिणिंदवरमंदिरं अत्थि ॥ २२९ ॥

यावन्न तडेति स्फुटति मम हृदयं ततो झटिति काष्ठैः । कुरुत चिता न विजानीत किं दुःसहवेदनां मम ? ॥ २१६ ॥
ततो मन्त्रिप्रमुखाः पौराः प्रगलदश्रुजलनयनाः । सविनयमाबद्धकराञ्जलियुक्ता विज्ञपयन्ति नृपम् ॥ २१७ ॥
किं स्वामिन् ! समारब्धं मृतमारणमस्माकं देविदुःखितानाम् ? । यद्वाञ्छसि प्रविष्टुं प्रज्वलितचितानले घोरे ॥ २१८ ॥
युष्मादृशा अपि धीरा यदि शोकपरवशा भविष्यन्ति । ततः प्राकृतप्रजायाः कातरहृदयायाः को दोषः ? ॥ २१९ ॥
अपरं च त्वयि जीवति सबाल-वृद्धोऽपि जीवति पुर्लोकः । म्रियमाणे म्रियते पुन निश्चयेन देवे दयैकरसे ॥ २२० ॥
ततो दुःखितप्रजापालकोऽपि भूत्वा स्वामिन् ! कथं करोषि । लोकस्य विनीतस्यापि क्रमागतस्यापि क्षयमेवम् ? ॥ २२१ ॥
पूर्यन्तु मेदानीं मनोरथास्तव रिपूणां सर्वेषाम् । ततः कृत्वा प्रसादं परिपालय प्रभो ! प्रजां प्रचुरां ॥ २२२ ॥
एवं सविनय-सप्रणयवचननिपुणैः प्रभणितोऽपि तथा । मरणैकबद्धबुद्धिः समुत्थितः शङ्खनरनाथः ॥ २२३ ॥
अनुगच्छन् गुरुशोकरक्तनेत्रै र्नगरलोकैः । निजमन्दिराच्चलितश्चरणैररचितशृङ्गारः ॥ २२४ ॥
अभ्यर्थ्य कथं कथमपि तुरगमारोपितोऽमात्यैः । परिहृतच्छत्र-चिह्नादिराजालङ्कारसन्दोहः ॥ २२५ ॥
वाद्यज्जयातोद्यो वारितचारणास्तवनकार्यः । निःशब्दबन्दिवृन्दोऽस्थितपादातिचक्रयुतः ॥ २२६ ॥
प्रेक्ष्यमाणः प्रगलदश्रुजालाभि र्नगरबालाभिः । वार्यमाण आबद्धपाणिपद्माभिः स्थविराभिः ॥ २२७ ॥
प्राप्तश्च नन्दनोद्यानपरिसरे ततो विषण्णवदनेषु । मन्त्रिषु राजरक्षानिमित्तमप्राप्तबुद्धिषु ॥ २२८ ॥
गजश्रेष्ठिना सविनयं भणितमिह स्वामिन् ! नन्दनोद्याने । स्फटिकमणिरत्ननिर्मितजिनेन्द्रवरमन्दिरमस्ति ॥ २२९ ॥

अवरं च अमियतेओ सूरी तत्थाऽऽगओ अमियतेओ । ता देव ! देवपूयं कुणसु तहा गुरुकमे नमसु ॥ २३० ॥
पच्छा जमभिप्पेयं करेज्ज तं इय पयंपिओ राया । एवं ति भणिय जिणनाहमंदिरुद्देसमणुपत्तो ॥ २३१ ॥
ओयरिय तुरंगाओ पत्तो अब्भंतरे जिणहरस्स । न्हविय विलेविय पूइय पणमिय पडिमं सुभत्तीए ॥ २३२ ॥
तत्तो गुरूण चरणे नमिऊणं तत्पुरो समुवविट्ठो । दुहिओ इमो त्ति चिन्तिय पारद्धा देसणा तेहिं ॥ २३३ ॥
भो नरवरिंद ! जर-मरण-रोय-सोयाउलम्मि संसारे । परियट्टंताण जियाण माणुसं जम्मं ॥ २३४ ॥
तं पि हु आरियखेत्ताइसयलसामग्गिसंगयं लद्धुं । कायव्वा धम्ममई भवकारागारनिद्दलणी ॥ २३५ ॥
जम्हा जीयं जलबिंदुचंचलं गत्तरा सिरी सयला । खणभंगुरा विलासा विणस्सरं तारतारुन्नं ॥ २३६ ॥
अथिरं पियम्मि पेम्मं चवलं लीलाललामलायन्नं । न चिरट्ठाई सयणाण संगमो सव्वजीवाणं ॥ २३७ ॥
एवंविहे असारे संसारे नरवरिंद ! न हु जुत्ता । मरणमई परियाणियसारा-ऽसाराण तुम्हाणं ॥ २३८ ॥
ता मुंच मरणबुद्धिं धम्मम्मि पुणो समुज्जमं कुणसु । जम्हा नऽन्नो सरणं जियाण मोत्तूण जिणधम्मं ॥ २३९ ॥
इय निंसुणिउं नरिंदो पयंपए सुट्ठु सव्वहा धम्मो । परमच्चंतं हियए खुडुक्कए मह मयच्छिदुहं ॥ २४० ॥
तेण न सक्को खणमपि पाणे धरिउं कलावईविरहे । ता मरणसमयजोग्गं जमणुट्ठाणं तयं कहह ॥ २४१ ॥
इय तेणुत्ता गुरुणओ भणंति नरनाह ! बुज्झ मा मुज्झ । रुहिरेण धोइयं न हु सुज्झइ रुहिरारुणं वत्थं ॥ २४२ ॥
तह दुक्खं पि न फिट्टइ मरणदुहेणं नरिंद ! नियमेण । अहिययरं पुण जायइ जम्हा अन्नाणकट्ठं तं ॥ २४३ ॥

अपरं चामिततेजाः सूरिस्तत्राऽऽगतोऽमिततेजाः । ततो देव ! देवपूजां कुरुष्व तथा गुरुक्रमान्नम ॥ २३० ॥
पश्चाद्यदभिप्रेतं कुर्यास्त्वमिति प्रजल्पितो राजा । एवमिति भणित्वा जिननाथमन्दिरोद्देशमनुप्राप्तः ॥ २३१ ॥
अवतीर्य तुरङ्गात्प्राप्तोऽभ्यन्तरे जिनगृहस्य । स्नापयित्वा विलेप्य पूजयित्वा प्रणम्य प्रतिमां सुभक्त्या ॥ २३२ ॥
ततो गुरुणां चरणे नत्वा तत्पुरः समुपविष्टः । दुःखितोऽयमिति चिन्तयित्वा प्रारब्धा देशना तैः ॥ २३३ ॥
भो नरवरेन्द्र ! जरा-मरण-रोग-शोकाकूले संसारे । पर्यटताम् जीवानां दुर्लभं मनुष्यं जन्म ॥ २३४ ॥
तदपि खल्वार्यक्षेत्रादिसकलसामग्रीसंगतं लब्ध्वा । कर्तव्या धर्ममति र्भवकारागारनिर्दलनी ॥ २३५ ॥
यस्माज्जीवं जलबिन्दुचञ्चलं गत्वरा श्रीः सकला । क्षणभङ्गुरा विलासा विनश्वरं तारतारुण्यम् ॥ २३६ ॥
अस्थिरं प्रिये प्रेम चपलं लीलाललामलावण्यम् । न चिरस्थायी स्वजनानां सङ्गमः सर्वजीवानाम् ॥ २३७ ॥
एवंविधेऽसारे संसारे नरवरेन्द्र ! न खलु युक्ता । मरणमतिः परिजानितसारा-ऽसाराणां युष्माकम् ॥ २३८ ॥
ततो मुञ्च मरणबुद्धिं धर्मे पुनः समुद्यमं कुरु । यस्मान्नान्यः शरणं जीवानां मुक्त्वा जिनधर्मम् ॥ २३९ ॥
इति निःश्रुत्य नरेन्द्रः प्रजल्पति सुष्ठुः सर्वथा धर्मः । परमत्यन्तं हृदये शल्यति मम मृगाक्षिदुःखम् ॥ २४० ॥
तेन न शक्तः क्षणमपि प्राणान् धर्तुं कलावतीविरहे । ततो मरणसमययोग्यं यदनुष्ठानं तकं कथयत ॥ २४१ ॥
इति तेनोक्ता गुरवो भणन्ति नरनाथ ! बुध्यस्व मा मुह्य । रुधिरेण धौतं न खलु शुध्यति रुधिरारुणं वस्त्रम् ॥ २४२ ॥
तथा दुःखमपि न स्फिटति मरणदुःखेन नरेन्द्र ! नियमेन । अधिकतरं पुन र्जायते यस्मादज्ञानकष्टं तत् ॥ २४३ ॥

ता कुणसु जिणवरिंदप्पयासियं धम्ममुत्तमं राय ! । जह न कयाइ वि जायइ इट्ठविओगाइदुहनियरो ॥ २४४ ॥
अवरं च दिव्वदिट्ठीए नज्जए तुह भविस्सए जोगो । सह पिययमाए सव्वंगसुंदरावयनिरुयाए ॥ २४५ ॥
इयसूरिवयणसिसिर(यर) वारिधाराहि रायहिययम्मि । गुरुसोयदावपायवपसरो सव्वो वि विज्झाओ ॥ २४६ ॥
सुत्तो य तत्थ रयणीए सुविणयं नियइ पच्छिमे जामे । किर केणइ एकफला कप्पद्दुलया दुहा छिन्ना ॥ २४७ ॥
पडिया महीए तत्तो लग्गा तत्थ वि तहा गया विद्धि । जाया य पुणो अहियं हिययहरा सयललोयसस्स ॥ २४८ ॥
तत्तो पहायपडहप्पकिट्ठपडहयसरेण पडिबुद्धो । सूरीण कहइ सुविणं पहिट्ठहियओ जहादिट्ठं ॥ २४९ ॥
परियाणियसुविणत्था गुरुणो रन्नो कहंति नरनाह ! । छिन्ना जा कप्पलया सा तुज्झ कलावई देवी ॥ २५० ॥
एगफला जं तं पुत्तसंजुया जं पुणो वि पारूढा । तं तुह मिलिही अज्जेव जायसंपुन्नसव्वंगा ॥ २५१ ॥
तुम्हाण पायपउमप्पसायओ होउ एवमिइ भणिउं । राया पहरिसवसपुलइयंगओ वंदिऊण गुरुं ॥ २५२ ॥
नियपासायं पत्तो तत्तो दत्तं भणेइ वाहरिउं । दत्तय ! एवमकज्जं कयं मए मूढमइएण ॥ २५३ ॥
पच्छा मरणपइन्ना विहिया ता जइ कलावई जियइ । ता जीविज्जइ अह नो मरणं चिय हवइ मह सरणं ॥ २५४ ॥
ता पवणजवणवाहं रहं समारुहिय रन्नमज्झाओ । जइ जियइ ता तमाणेज्ज अह न तो तं मयं मुणसु ॥ २५५ ॥
एवं वुत्तो दत्तो पत्तो रन्नं रहं समारुहिउं । निउणं निरिक्खयंतेण तेण ते तावसा दिट्ठा ॥ २५६ ॥
पुट्ठा य कहह भयवं ! कत्थइ तुब्भेहिं गुव्विणी रमणी । सच्चविया इह रन्ने परिब्भमंती ? तओ ते वि ॥ २५७ ॥

ततः कुरुष्व जिनवरेन्द्रप्रकाशितं धर्ममुत्तमं राजन् ! । यथा न कदाचिदपि जायत इष्टवियोगादिदुःखनिकरः ॥२४४॥
अपरं च दिव्यदृष्टया ज्ञायते तव भविष्यति योगः । सह प्रियतमायाः सर्वाङ्गसुन्दरावयवनिरुजायाः ॥ २४५ ॥
इति सूरिवचनशिशिर[तर]वारिधाराभी राजहृदये । गुरुशोकदावप्रतापप्रसरः सर्वोऽपि विध्यातः ॥ २४६ ॥
सुप्तश्च तत्र रजन्यां स्वप्नं पश्यति पश्चिमे यामे । किल केनचिदेकफला कल्पद्रुलता द्विधा छिन्ना ॥ २४७ ॥
पतिता मह्यां ततो लग्ना तत्रापि तथा गता वृद्धिम् । जाता च पुनरधिकं हृदयहरा सकललोकस्य ॥ २४८ ॥
ततः प्रभातपटहप्रकृष्टपटहकस्वरेण प्रतिबुद्धः । सूरीणां कथयति स्वप्नं प्रहृष्टहृदयो यथादृष्टम् ॥ २४९ ॥
परिजानितस्वप्नार्था गुरवो राज्ञः कथयन्ति नरनाथ ! । छिन्ना या कल्पलता सा तव कलावती देवी ॥ २५० ॥
एकफला यत्तत्पुत्रसंयुक्ता यत्पुनरपि प्ररुढा । तत्तव मिलिष्यत्यद्यैव जातसंपूर्णसर्वाङ्गा ॥ २५१ ॥
युष्माकं पादपद्मप्रसादाद्भवत्वेवमिति भणित्वा । राजा प्रहर्षवशपुलकिताङ्गो वन्दित्वा गुरुम् ॥ २५२ ॥
निजप्रासादं प्राप्तस्ततो दत्तं भणति व्याहृत्य । दत्तक ! एवमकार्यं कृतं मया मूढमतिकेन ॥ २५३ ॥
पश्चान्मरणप्रतिज्ञा विहिता ततो यदि कलावती जीवति । ततो जीव्यतेऽथ नो मरणं चैव भवति मम शरणम् ॥ २५४ ॥
ततः पवनजवनवाहं रथं समारुहयारण्यमध्यात् । यदि जीवति तदा तामानयाथ न तदा तां मृतां मुण ॥ २५५ ॥
एवमुक्तो दत्तः प्राप्तोऽरण्यं रथं समारुह्य । निपुणं निरीक्षमाणेन तेन ते तापसा दृष्टाः ॥ २५६ ॥
पृष्टाश्च कथयत भगवन् ! क्वचिद्युष्मद्भि र्गुर्विणी रमणी । दृष्टेहारण्ये परिभ्रमन्ती ? ततस्तेऽपि ॥ २५७ ॥

जंपंति किं न मुंचइ इमाए उवरिं नरेसरो रोसं ? । अज्ज वि वंछइ किं पि हु काउं अइदारुणं दुक्खं ? ॥ २५८ ॥

तेसि वयणाओ तीए अत्थित्तं चिंतिउं भणइ दत्तो । भयवं ! नेय सकोवो किंतु ससोगो निवो अम्हं ॥ २५९ ॥

ता जइ कलावई जियइ जियइ राया वि नऽन्नहा भयवं ! । काही पाणच्चायं पविसिय पज्जलियजलणम्मि ॥ २६० ॥

एवंवुत्तेहिं स तावसेहिं करुणेक्करसियहियएहिं । कुलवइपासे नीओ दत्तो पणओ य सो तस्स ॥ २६१ ॥

कुलवइणा वि कलावइवुत्तंतो साहिओ असेसो वि । नीहरिया देवी वि य तव स्सिणीलोयमज्झाओ ॥ २६२ ॥

दत्तं दट्टुं मन्नुइयमाणसा पलविउं समारद्धा । संधीरिया य दत्तेण निहुयनिहुयं रुयंतेण ॥ २६३ ॥

आसासिया य सामिणि ! खेयं मा कुणसु सुणसु मह वयणं । विहिविलसियस्स नासो न होइ अथिरम्मि संसारे ॥ २६४ ॥

ता धीरत्तणमवलंबिऊण सोगावयासमवि मुंच । जम्हा बहुएण वि सोइएण न य फिट्टए दुक्खं ॥ २६५ ॥

जाणामि दारुणं तुह एयं दुक्खस्स कारणं जायं । एएण निमित्तेणं णंतगुणं दुक्खिओ देवो ॥ २६६ ॥

इण्हिं इमेण दुव्विलसिएण संतत्तचित्तवित्ती सो । अज्ज न जइ तं पेच्छइ निसाए ता पविसए जलणे ॥ २६७ ॥

जाणामि तुज्झ माणं जेणाऽऽगंतुं न तरसि तं तत्थ । ता देवि ! दयं कुण रायरक्खणे मज्झ वयणेण ॥ २६८ ॥

काउं पसायमारुहसु रहवरे जेण तत्थ गच्छामो । कालविलंबो जुत्तो न होइ एवंठिए कज्जे ॥ २६९ ॥

निवनिच्छयं वियाणिय कुलवइमाउच्छिउं पणमिऊण । आरूढा रहरयणे पत्ता य कमेण संखउरे ॥ २७० ॥

दट्टुं देविं अक्खयसमग्गअंगं पहरिसिओ वि निवो । तं पेच्छिउमचयंतो लज्जाए अहोमुहो जाओ ॥ २७१ ॥

जल्पन्ति किं न मुञ्चत्येतस्या उपरि नरेश्वरो रोषम् ? । अद्यापि वाञ्छति किमपि हु कर्तुमतिदारुणं दुःखम् ? ॥ २५८ ॥

तेषां वचनात्तस्या अस्तित्वं चिन्तयित्वा भणति दत्तः । भगवन् ! नैव सकोपः किन्तु सशोको नृपोऽस्माकम् ॥ २५९ ॥

ततो यदि कलावती जीवति जीवति राजापि नान्यथा भगवन् ! । करिष्यति प्राणत्यागं प्रविश्य प्रज्वलितज्वलने ॥ २६० ॥

एवमुक्तैः स तापसैः करुणैकरसितहृदयैः । कुलपतिपार्श्वे नीतो दत्तः प्रणतश्च स तस्य ॥ २६१ ॥

कुलपतिनापि कलावतीवृत्तान्तः कथितोऽशेषोऽपि । निःसृता देव्यपि च तपस्विनीलोकमध्यात् ॥ २६२ ॥

दत्तं दृष्ट्वा मन्युयितमानसा प्रलपितुं समारब्धा । सन्धीरिता च दत्तेन निभृतनिभृतं रुदता ॥ २६३ ॥

आश्वासिता च स्वामिनि ! खेदं मा कुरु शृणु मम वचनम् । विधिविलसितस्य नाशो न भवत्यस्थिरे संसारे ॥ २६४ ॥

ततो धीरत्वमवलम्ब्य शोकावकाशमपि मुञ्च । यस्माद्बहुकेनापि शोचितेन न च स्फेटति दुःखम् ॥ २६५ ॥

जानामि दारुणं तवैतद् दुःखस्य कारणं जातम् । एतेन निमित्तेनानन्तगुणं दुःखितो देवः ॥ २६६ ॥

इदानीमनेन दुर्विलसितेन संतप्तचित्तवृत्ती सः । अद्य न यदि त्वां प्रेक्षते निशायां तदा प्रविशति जवलने ॥ २६७ ॥

जानामि तव मानं येनाऽऽगंतुं न शक्नोषि त्वं तत्र । ततो देवि ! दयां कुरु राजरक्षणे मम वचनेन ॥ २६८ ॥

कृत्वा प्रसादमारोह रथवरं येन तत्र गच्छामः । कालविलम्बो युक्तो न भवत्येवंस्थिते कार्ये ॥ २६९ ॥

नृपनिश्चयं विज्ञाय कुलपतिमापृच्छ्य प्रणम्य । आरुढा रथरत्नं प्राप्ता च क्रमेण शङ्खपुरे ॥ २७० ॥

दृष्ट्वा देवीमक्षयसमग्राङ्गां प्रहर्षितोऽपि नृपः । तां द्रष्टुमपारयन् लज्जयाऽधोमुखो जातः ॥ २७१ ॥

पारद्धं लोएणं वद्धावणयं पुरे समग्गम्मि । बद्धा चंदणमालाउ पइगिहं चूयपत्तेहिं ॥ २७२ ॥
तत्तो वद्धावणए वित्ते पत्ते पओससमयम्मि । खणमत्थाणे उवविसिय हरिसियासेससामंते ॥ २७३ ॥
उट्ठित्तु तओ राया कलावईवासभवणमणुपत्तो । संभासइ तं संजायमन्नुपरिपूरियसरीरं ॥ २७४ ॥
देवि ! महापावेणं मए महादुक्खदारुणे वसणे । पक्खित्ता निद्दोसा वि खमसु ता एगमवराहं ॥ २७५ ॥
दंसंतो नियवयणं धणियं लज्जामि तुह अहन्नो हं । ता पसयच्छि ! पसायं काउं खेयं परिच्चयसु ॥ २७६ ॥
तीए विलक्खवयणं नमिऊण निवं सगग्गयं भणियं । सामि ! न कस्सइ दोसो मोत्तुं मह कम्मपरिणामं ॥ २७७ ॥
परिकप्पिऊण दोसं जमहं निस्सारिया तयं कहसु । तो अंगयाइओ से वुत्तंतो साहिओ रन्ना ॥ २७८ ॥
तीए वि नियओ रन्नो निवेइओ तं निसामिउं राया । पभणइ पिए ! न होही मज्झ समो निग्घिणो भुवणे ॥ २७९ ॥
जो निम्मलसीलाए वि तुज्झ आणेइ एरिसं वसणं । ता खमियव्वं तुमए एयं सुपसन्नहिययाए ॥ २८० ॥
जइ गुरुणो न कहंता ता तुह संगमसुहं न मे हुतं । तो देवीए पुट्ठे सिट्ठो गुरुवइयरो रन्ना ॥ २८१ ॥
दंसेयव्वा मज्झ वि गोसे गुरुणो कलावईभणिए । संगयमिमं ति रन्ना पमुइयहियएण पडिवन्नं ॥ २८२ ॥
एवं सिणेहनिब्भरकहाहिं नीया तमस्सिणी तेहिं । नियकिरणहरियतिमिरे समुग्गए सहसरस्सिम्मि ॥ २८३ ॥
विहियप्पभायकिच्चो राया आरुहिय पट्टदोघट्टे । सबलो कलत्तजुत्तो पत्तो सूरीण सविहिम्मि ॥ २८४ ॥
दोन्नि वि सूरीण कमे नमिय निविट्ठाणि उचियठाणम्मि । तेहिं वि महुरसरेणं पसंसियं सीलमाहप्पं ॥ २८५ ॥

प्रारब्धं लोकेन वर्धापनकं पुरे समग्रे । बद्धा चन्दनमाला प्रतिगृहं चूतपत्रैः ॥ २७२ ॥
ततो वर्धापनके वृत्ते प्राप्ते प्रदोषसमये । क्षणमास्थाने उपविश्य हर्षिताशेषसामन्ते ॥ २७३ ॥
उत्थाय ततो राजा कलावतीवासभवनमनुप्राप्तः । सम्भाषते तां सञ्जातमन्युपरिपूरितशरीराम् ॥ २७४ ॥
देवि ! महापापेन मया महादुःखदारुणे व्यसने । प्रक्षिप्ता निर्दोषापि क्षमस्व तत एकमपराधम् ॥ २७५ ॥
दर्शयन्निजवदनमत्यन्तं लज्जे तवाधन्योऽहम् । ततः प्रसन्नाक्षि ! प्रसादं कृत्वा खेदं परित्यज ॥ २७६ ॥
तया विलक्षवदनं नत्वा नृपं सगद्गदं भणितम् । स्वामिन् ! न कस्यचिद्दोषो मुक्त्वा मम कर्मपरिणामम् ॥ २७७ ॥
परिकल्प्य दोषं यदहं निस्सारिता तकं कथय । ततोऽङ्गदादिकस्तस्या वृत्तान्तः कथितो राज्ञा ॥ २७८ ॥
तयापि निजको राज्ञे निवेदितस्तन्निशम्य राजा । प्रभणति प्रिये ! न भविष्यति मम समो निर्घृणो भुवने ॥ २७९ ॥
यो निर्मलशीलाया अपि तवानयतीदृशं व्यसनम् । ततः क्षन्तव्यं त्वयैतत् सुप्रसन्नहृदयया ॥ २८० ॥
यदि गुरवो नाकथयिष्यन् तदा तव संगमसुखं न मेऽभविष्यत् । ततो देव्या पृष्टे शिष्टो गुरुव्यतीकरो राज्ञा ॥ २८१ ॥
दर्शितव्या ममापि प्रत्युषे गुरवः कलावतीभणिते । संगतमिदमिति राज्ञा प्रमुदितहृदयेन प्रतिपन्नम् ॥ २८२ ॥
एवं स्नेहनिर्भरकथाभि र्नीता तमस्विनी ताभ्याम् । निजकिरणहृततिमिरे समुद्गते सहस्ररश्मिनि ॥ २८३ ॥
विहितप्रभातकृत्यो राजाऽऽरुह्य पट्टहस्तिनम् । सबलः कलत्रयुक्तः प्राप्तः सूरीणां सविधौ ॥ २८४ ॥
द्वावपि सूरीणां क्रमान्नत्वा निविष्ठावुचितस्थाने । तैरपि मधुरस्वरेण प्रशंसितं शीलमाहात्म्यम् ॥ २८५ ॥

सीलं सत्ताण अखंडमंडणं खंडणं च दुक्खाण । सीलं सोहग्गकरं विवईणुत्तासगं सीलं ॥ २८६ ॥

किं बहुणा सव्वाण वि नर-अमरा-ऽसुरसुहाण संजणणं । सीलं ता पालिज्जउ तमखंडं भव्वसत्तेहिं ॥ २८७ ॥

इय मुणिवइसद्देसणमायन्निय निव-नरिंदपत्तीणं । संजायगंठिभेयाण होइ सम्मत्तवररयणं ॥ २८८ ॥

तो पडिवन्नो दोहिं व सावयधम्मो दुवालसविहो वि । गहियं च बंभचेरं जावज्जीवं विरागाओ ॥ २८९ ॥

तो गंतुं नियनयरे सुयजम्ममहो पवत्तिओ तेहिं । बारसमदिणे नामं दिन्नं कुमरस्स सुमुहुत्ते ॥ २९० ॥

सुमिणम्मि पुन्नकलसो दिट्ठो गब्भागयम्मि एयम्मि । तेणेस पुन्नकलसो त्ति नाम निव्वत्तियं रन्ना ॥ २९१ ॥

जिणमंदिरेसु जत्ताओ कारयंतस्स गरुयरिद्धीए । सुस्सूसंतस्स गुरूण चरणजुयलं सुभत्तीए ॥ २९२ ॥

साहम्मियवच्छल्लुज्जयस्स सज्झाय-नियमनिरयस्स । जिणरहजत्ताउ सया पवत्तयंतस्स नियदेसे ॥ २९३ ॥

एवमणुट्ठाणपरस्स तस्स देवीए संपरिवुडस्स । सो पुन्नकलसकुमरो संपत्तो तारतारुन्नं ॥ २९४ ॥

विहरंतो गामा-ऽऽगर-नयरपकिट्ठे वसुंधरावीढे । सूरी वि अमियतेओ संपत्तो नंदणुज्जाणे ॥ २९५ ॥

राया वि सपरिवारो समागओ तस्स वंदणनिमित्तं । पणमिय तं उवविट्ठो पभणइ वक्खाणपज्जंते ॥ २९६ ॥

निरवज्जा रज्जसिरी सुइरं परिपालिया मए भयवं ! इण्हिं तु तवसिरीपालणम्मि मह विज्जए वंछा ॥ २९७ ॥

भणिओ गुरुणा जुत्तं उत्तमवंसुब्भवाण तुम्हाण । तो पणमिय गुरुचरणे पत्तो राया सपासाए ॥ २९८ ॥

अहिसिंचिय नियरज्जे पुत्तं तत्तो कलत्तसंजुत्तो । निक्खंतो नरनाहो पासे सुरीण संविग्गो ॥ २९९ ॥

शीलं सत्त्वानामखण्डमण्डनं खण्डनं च दुःखानाम् । शीलं सौभाग्यकरं विपदुत्रासकं शीलम् ॥ २८६ ॥

किं बहुना सर्वेषामपि नरा-ऽमरा-ऽसुरसुखानां संजननम् । शीलं तावत्पाल्यतां तमखण्डं भव्यसत्त्वैः ॥ २८७ ॥

इतिमुनिपतिसद्देशनामाकर्ण्य नृप-नरेन्द्रपत्न्योः । सञ्जातग्रन्थिभेदयो र्भवति सम्यक्त्ववररत्नम् ॥ २८८ ॥

ततः प्रतिपन्नो द्वाभ्यामपि श्रावकधर्मो द्वादशविधोऽपि । गृहीतं च ब्रह्मचर्यं यावज्जीवं विरागात् ॥ २८९ ॥

ततो गत्वा निजनगरे सुतजन्ममहः प्रवर्त्तितस्तैः । द्वादशमदिने नाम दत्तं कुमारस्य सुमुहूर्ते ॥ २९० ॥

स्वप्ने पूर्णकलशो दृष्टो गर्भागत एतस्मिन् । तेनैष पूर्णकलश इति नाम निर्वर्त्तितं राज्ञा ॥ २९१ ॥

जिनमन्दिरेषु यात्राः कारयतो गुरुकर्द्धया । शूश्रुषतो गुरुणां चरणयुगलं सुभक्त्या ॥ २९२ ॥

साधर्मिकवात्सल्योद्यतस्य स्वाध्याय-नियमनिरतस्य । जिनरथयात्राः सदा प्रवर्तयतो निजदेशे ॥ २९३ ॥

एवमनुष्ठानपरस्य तस्य देव्या सम्परिवृत्तस्य । स पूर्णकलशकुमारः सम्प्राप्तस्तारतारुण्यम् ॥ २९४ ॥

विहरन् ग्रामा-ऽऽकर-नगरप्रकृष्टे वसुन्धरापीठे । सूरिरप्यमिततेजाः सम्प्राप्तो नन्दनोद्याने ॥ २९५ ॥

राजापि सपरिवारः समागतस्तस्य वन्दननिमित्तम् । प्रणम्य तमुपविष्टः प्रभणति व्याख्यानपर्यन्ते ॥ २९६ ॥

निरवद्या राज्यश्रीः सुचिरं परिपालिता मया भगवन् ! । इदानीन्तु तपःश्रीपालने मम विद्यते वाञ्छा ॥ २९७ ॥

भणितो गुरुणा युक्तमुत्तमवंशोद्भवानां युष्माकम् । ततःप्रणम्य गुरुचरणान्प्राप्तो राजा स्वप्रासादे ॥ २९८ ॥

अभिषिञ्च्य निजराज्ये पुत्रं ततः कलत्रसंयुक्तः । निष्क्रान्तो नरनाथः पार्श्वे सूरीणां संविग्नः ॥ २९९ ॥

अहिगयसयलसुयत्थो तिव्वतवं कुणइ पहयमयणरिवू । मय-माण-कोह-लोहाइयाण पब्भग्गवावारो ॥ ३०० ॥

तिव्वतवचरणपवरा जाया अज्जा कलावई वि दढं । दोन्नि वि सुगई पत्ताणि ताणि सुहभावमरणेण ॥ ३०१ ॥

॥ शङ्खाख्यानं समाप्तम् ॥ ११७ ॥

इदानीं भरताख्यानकस्यावसरः । तच्च भावनाद्वारे भणितम् । अतः क्रमप्राप्तं कनककेत्वाख्यानकमाख्यायते। तच्चेदम्

तेयलिपुरम्मि नयरे नरेसरो कणगकेउनामो त्ति । पउमावइ त्ति देवी मंती तेयलिसुओ तस्स ॥ १ ॥

सो भोगलालसमणो रज्जे गिद्धो निकिंतए पुत्ते । नासा-ऽहर-कर-चरण-ऽच्छि-कन्नपभिईमंगेहिं ॥ २ ॥

तत्थ य कलादमुसियारसेट्ठिधूया मणुन्नातारुन्ना । नामेण पोट्टिला तं मग्गिय जणयं अमच्चेण ॥ ३ ॥

उव्वूढा तीए समं विसए सो भुंजए अहऽन्नदिणे । एगं कह वि कुमारं रक्खसु देवी भणइ मंतिं ॥ ४ ॥

पडिवन्ने तेण अहऽन्नया य देवीए पोट्टिलाए वि । जाओ गब्भो जह ताओ एगदिवसे पसूयाओ ॥ ५ ॥

जाओ देवीए सुओ सुवन्नसमगत्तदित्तिदिप्पंतो । धूया य पोट्टिलाए तओ अमच्चेण सिग्घं पि ॥ ६ ॥

संचारियाणि दोन्हं पि पुत्तभंडाणि ता कुमारस्स । कणगज्झओ त्ति नामं विहियं दिवसम्मि बारसमे ॥ ७ ॥

पत्तो पवड्ढमाणो कुमरो पारं कलाकलावस्स । अह अन्नया य दोहग्गभावओ पोट्टिला जाया ॥ ८ ॥

मंतिस्स अणिट्ठा तयणु सो न नामं पि गिण्हए तीए । सा वि हु सोहग्गकए अज्जाओ पज्जुवासेइ ॥ ९ ॥

अधिगतसकलसूत्रार्थस्तीव्रतपः करोति प्रहतमदनरिपुः । माया-मान-क्रोध-लोभादिकानां प्रभग्नव्यापारः ॥ ३०० ॥

तीव्रतपश्चरणप्रवरा जाताऽऽर्या कलावत्यपि दृढम् । द्वावपि सुगतिं प्राप्तौ तौ शुभभावमरणेन ॥ ३०१ ॥

॥ शङ्खाख्यानकं समाप्तम् ॥ ११७ ॥

कनककेत्वाख्यानकम् ॥ ११८ ॥

तेतलिपुरे नगरे नरेश्वरः कनककेतुनामेति । पद्मावतीति देवी मन्त्री तेतलिसुतस्तस्य ॥ १ ॥

स भोगलालसमना राज्ये गृद्धो निकृन्तति पुत्रान् । नासा-ऽधर-कर-चरणाक्षि-कर्ण प्रभृतिभिरङ्गैः ॥ २ ॥

तत्र च कलादमृषिकारश्रेष्ठिदुहिता मनोज्ञतारुण्या । नाम्ना पोट्टिला तं मार्गिता जनकममात्येन ॥ ३ ॥

उद्वोढा तया समं विषयान् स भुनक्त्यथान्यदिने । एकं कथमपि कुमारं रक्ष देवी भणति मन्त्रिणम् ॥ ४ ॥

प्रतिपन्ने तेनाथान्यदा च देव्याः पोट्टिलाया अपि । जातो गर्भोऽथ ते एकदिवसे प्रसूते ॥ ५ ॥

जातो देव्याः सुतः सुवर्णसमगात्रदीप्तिदीप्यमानः । दुहिता च पोट्टिलायास्ततोऽमात्येन शीघ्रमपि ॥ ६ ॥

सञ्चारिते द्वेऽपि पुत्रभाण्डे ततः कुमारस्य । कनकध्वज इति नाम विहितं दिवसे द्वादशमे ॥ ७ ॥

प्राप्तः प्रवर्धमानः कुमारः पारं कलाकलापस्य । अथान्यदा च दौर्भाग्यभावात् पोट्टिला जाता ॥ ८ ॥

मन्त्रिणोऽनिष्टा तदनु स न नामापि गृह्णाति तस्याः । सापि हु सौभाग्यकृत आर्याः पर्युपासति ॥ ९ ॥

पभणंति ताओ अम्हं जुज्जइ न कया वि एरिसं काउं । विहिया य ताहिं सद्धम्मदेसणा सा वि पडिबुद्धा ॥ १० ॥
निव्विन्नकामभोया मंतिं विन्नवइ तुह अणुन्नाए । काहमहं पव्वज्ज मं पडिबोहेज्ज तेणुत्ते ॥ ११ ॥
अणुमन्नियतव्वयणा सुगुरुसयासम्मि गहियपव्वज्जा । थेवेण वि कालेणं संपत्ता देवलोगम्मि ॥ १२ ॥
राया वि कणगकेऊ जाओ कालेण संकहासेसो । अनियंतो रज्जखमं कुमरमओ आउलो लोगो ॥ १३ ॥
सामंताणं पउमावईए देवीए कुमरवुत्तंतो । कहिओ तो अहिसित्तो रज्जे कणगज्झयकुमारो ॥ १४ ॥
देवीए तओ कुमरो पयंपिओ वच्छ ! तेतलिसुयस्स । सम्मं बट्टेज्जसु जेण रज्जमेयस्स भावेण ॥ १५ ॥
ठविओ सव्वट्ठाणेसु रायणा तयणु सो च्चिय अमच्चो । एत्तो य पोट्टिलाए देवो पडिबोहए मंतिं ॥ १६ ॥
भोगासत्तो जाहे नो बुज्झइ ओहिणा तओ नाउं । रूसविओ नरनाहो सुरेण एमेव य अयंडे ॥ १७ ॥
जावाऽऽगच्छइ मंती ठाइ निवो तो परम्मुहो तस्स । पणमियचरणम्मि वि तम्मि कोवमुव्वहइ नरनाहो ॥ १८ ॥
एवं सव्वजणेण वि परिभूओ तो गिहम्मि संपत्तो । नियपरियणो वि आणं न कुणइ से तयणु सो भीओ ॥ १९ ॥
ताहे सो भक्खइ तालउडविसं तह वि नो मओ जाव । छिंदइ सीसं तो तिक्खकंककरवालधाराए ॥ २० ॥
तं पि न लवमवि छिंदइ उब्बंधइ तयणु रज्जुणा सा वि । छिन्ना तो पाहाणं बंधेवि गले जले पडिओ ॥ २१ ॥
अत्थाहम्मि तम्मि वि तरेइ तो पज्जलंतजलणम्मि । झत्ति पविट्ठो तत्थ वि न डज्झए तयणु भयभीओ ॥ २२ ॥
नीहरिओ नयराओ तो पिट्ठं धाइओ गुरुगइंदो । पुरओ करालखड्डा दो पासे दुद्धराचोरा ॥ २३ ॥

प्रभणन्ति ता अस्माकं युज्यते न कदापीदृशं कर्तुम् । विहिता च ताभिः सद्धर्मदेशना सापि प्रतिबुद्धा ॥ १० ॥
निर्विण्णकामभोगा मन्त्रिं विज्ञापयति तवानुज्ञया । करिष्येऽहं प्रव्रज्यां मां प्रतिबोधयेस्तेनोक्ते ॥ ११ ॥
अंनुमानिततद्वचनात्सुगुरुसकाशे गृहीतप्रव्रज्या । स्तोकेनापि कालेन सम्प्राप्ता देवलोके ॥ १२ ॥
राजापि कनककेतु र्जातः कालेन सङ्कथाशेषः । अपश्यन् राज्यक्षमं कुमारमत आकूलो लोकः ॥ १३ ॥
सामन्तानां पद्मावत्या देव्याः कुमारवृत्तान्तः । कथितस्तदाभिषिक्तो राज्ये कनकध्वजकुमारः ॥ १४ ॥
देव्या ततः कुमारः प्रजल्पितो वत्स ! तेतलिसुतस्य । सम्यग्वर्तेथा येन राज्यमेतस्य भावेन ॥ १५ ॥
स्थापितः सर्वस्थानेषु राज्ञा तदनु स चैवामात्यः । इतश्च पोट्टिला देवः प्रतिबोधयति मन्त्रिणम् ॥ १६ ॥
भोगासक्तो यदा न बुध्यतेऽवधिना ततो ज्ञात्वा । रोषितो नरनाथः सुरेणेवमेव चाकाण्डे ॥ १७ ॥
यावदागच्छति मन्त्री तिष्ठति नृपस्तदा पराङ्मुखस्तस्य । प्रणतचरणेऽपि तस्मिन् कोपमुद्वहति नरनाथः ॥ १८ ॥
एवं सर्वजनेनापि परिभूतस्ततो गृहे सम्प्राप्तः । निजपरिजनोऽप्याज्ञां न करोति तस्य तदनु स भीतः ॥ १९ ॥
तदा स भक्षते तालपूटविषं तथापि न मृतो यावत् । छिन्दति शीर्षं ततस्तीक्ष्णकङ्ककरवालधारया ॥ २० ॥
तदपि न लवमपि छिन्दत्युद्बध्नाति तदनु रज्जूना सापि । छिन्ना ततः पाषाणं बध्वा गले जले पतितः ॥ २१ ॥
अगाधे तस्मिन्नपि तरति ततः प्रज्वलज्ज्वलने । झटिति प्रविष्टस्तत्रापि न दहति तदनु भयभीतः ॥ २२ ॥
निःसृतो नगरात्ततः पृष्टे धावितो गुरुगजेन्द्रः । पुरतः करालगर्ता द्वे पार्श्वे दुर्धरौ चौरौ ॥ २३ ॥

तो भयकंपिरकाओ पभणइ हा पोट्टिले ! महाकट्ठं । दाऊणं मह एरिसवसणाओ रक्खेसु ॥ २४ ॥

तो नियरूवं काऊण पोट्टिला तस्स संठिया पुरओ । भणियं च महाभीयस्स होइ सरणं सुपव्वज्जा ॥ २५ ॥

पडिबुद्धमणो पभणइ करेमि तं किंतु रूट्ठओ राया । ता उवसामेहि तयं न हु होइ अवन्नवाओ मे ॥ २६ ॥

देवविउव्वियमाया संहरिया तुट्ठओ तओ राया । जाओ जणो वि सव्वो अणुकूलो तस्स पुव्वं व ॥ २७ ॥

खामेऊण सपउरं सिवियं समारुहेऊण । गंतुं गुरूण पासे पव्वइओ गरुयरिद्धीए ॥ २८ ॥

चोद्दसपुव्वी जाओ अपुव्वकरणेण केवलन्नाणं । संपत्तो सो तत्तो कमेण सिद्धिं समारूढो ॥ २९ ॥

॥ कनककेत्वाख्यानकं समाप्तम् ॥ ११८ ॥

जह एएहिं विरूवं कयं सकज्जे विसंवयंतम्मि । तह अन्नो वि हु ववसइ बंधुसिणेहो मुहा तम्हा ॥ १ ॥

स्निह्यन्ति मूढमनसः स्वजनेष्वमीषां, यावन्मतं वहति तावदमी भवन्ति ।
पश्चात् स्वकार्यपरिपूरणमन्तरेण, सर्वे व्रजन्ति वध-बन्धन-वैरभावम् ॥ २ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरिचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे स्वकार्यसंवाद-बन्धुशत्रुत्वभवननिदर्शनप्रतिपादक एकोनचत्वारिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३९ ॥

ततो भयकम्पमानकायः प्रभणति हा पोट्टिले ! महाकष्टम् । दत्वा दर्शनं ममेदृशव्यसनाद्रक्षः ॥ २४ ॥

ततो निजरुपं कृत्वा पोट्टिला तस्य संस्थिता पुरतः । भणितं च महाभीतस्य भवति शरणं सुप्रव्रज्या ॥ २५ ॥

प्रतिबुद्धमनाः प्रभणति करोमि तां किन्तु रुष्टो राजा । तत उपशामय तकं न खलु भवत्यवर्णवादो मे ॥ २६ ॥

देवविकुर्वितमाया संहृता तुष्टस्ततो राजा । जातो जनोऽपि सर्वोऽनुकूलस्तस्य पूर्वमिव ॥ २७ ॥

क्षमयित्वा सपौरं नृपतिं शिबिकां समारुह्य । गत्वा गुरूणां पार्श्वे प्रव्रजितो गुरुकर्द्धया ॥ २८ ॥

चतुर्दशपूर्वी जातोऽपूर्वकरणेन केवलज्ञानम् । सम्प्राप्तःस ततः क्रमेण सिद्धिं समारुढः ॥ २९ ॥

॥ कनककेत्वाख्यानकं समाप्तम् ॥ ११८ ॥

यथैतै र्विरुपं कृतं स्वकार्ये विसंवदति ।
तथान्योऽपि खलु व्यवस्यति बन्धुस्नेहो मुधा तस्मात् ॥ १ ॥

● ● ●

[४०. धनधान्यादिविषयकशोकापार्थकताधिकारः]

प्राग् बन्धुविषयकृत्रिमस्नेह-शोककरणस्यापार्थकताऽभिहिता । साम्प्रतमपरमपि धन-धान्यादि चिन्त्यमानमनित्यम् इति तद्विषयोऽपि शोकोऽपार्थक एव इत्येतदभिधातुकाम आह-

सव्वमणिच्चं नाउं सोयट्ठाणे वि पंडियजणेहिं ।
न हु सोगो कायव्वो धम्मे च्चिय होइ जइयव्वं ॥ ४९ ॥

व्याख्या- 'सर्वं' वस्तुजातं 'अनित्यं' विनश्वरं "नाउं" ति ज्ञात्वा 'शोकस्थानेऽपि' शोकविषयेऽपि 'पण्डितजनैः' विद्वल्लोकैः 'न हु' नैव शोकः 'कर्तव्यः' विधेयः । यद्येवं तर्हि किं कर्तव्यम् ? इत्याह- "धम्मे च्चिय" त्ति धर्म एव भवति 'यतितव्यं' प्रयत्नः कर्तव्य इत्युपदेशः ॥ ४९ ॥

अपरं च शोककरणमनिष्टफलमेव इत्युपदिशन्नाह-

असुहफलो जमवस्सं रोयणमाईओ लोइओ सोओ ।
सावित्ति-मंति-समणी-राम-कुलाणंदनाएणं ॥ ५० ॥

अस्या व्याख्या- 'अशुभफलः' अनिष्टप्रयोजनः 'यद् यस्मात् कारणाद् 'अवश्यं' निश्चयेन "रोयणमाईओ" त्ति रोदनादिकः 'लौकिकः' लोकसम्बन्धी 'शोकः' पूर्वोक्तार्थः । अत्रार्थे दृष्टान्तानाह-सावित्री च-ब्राह्मणी मन्त्री च-सचिवः श्रमणी च- अरहन्नकमाता रामश्च-बलदेवः कुलानन्दश्च-राजतनयः ते तथोक्ताः, त एवं ज्ञातं-दृष्टान्तः तेनेति गाथासमासार्थः ॥ ५० ॥ व्यासार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्रापि प्रथमं तावत् सावित्र्याख्यानकमभिधीयते । तच्चेदम्-

सावत्थीए पुरीए अहेसि भिगुनाम बंभणो मइमं । सावित्ती से भज्जा सत्त सुया तीए संजाया ॥ १ ॥
ते वेय-वेयसामा-वेईसर-वेयसारनामाणो । तह वेयगब्भ-सिरिवेयमित्त तह वेयरूया य ॥ २ ॥

सावित्र्याख्यानकम् ॥ ११९ ॥

श्रावस्त्यां पुर्यासीद्भृगुनामा ब्राह्मणो मतिमान् । सावित्री तस्य भार्या सप्त सुतास्तस्याः सञ्जाताः ॥ १ ॥
ते वेद-वेदशर्मा-वेदीश्वर-वेदसारनामानः । तथा वेदगर्भ-श्रीवेदमित्रस्तथा वेदरुपा च ॥ २ ॥

धूया वि हु गायत्ती सव्वे सव्वंगवेयपारगया । एवमइक्कंते केत्तियम्मि कालम्मि सोक्खेण ॥ ३ ॥
मरणावसाणयाए अहऽन्नया सयलजीवलोगस्स । पढमो सुओ मओ तो सावित्ती सोगमणुपत्ता ॥ ४ ॥
(ग्रन्थाग्रम्-१३०००)
ऐमेव बीयदिवसे बीओ पुत्तो वि मरणमणुपत्तो । गाढयरं सावित्ती सोएणं बाहिया हियए ॥ ५ ॥
एवं तइय-चउत्थय-पंचमपुत्ता कमेण पंचत्तं । संपत्ता सावित्तीए तयणु सोयग्गहो लग्गो ॥ ६ ॥
नयरब्भंतर-रच्छामुहेसु निच्चं परिब्भमंती सा । वाहरइ दारयाणं नामेणं सव्वमवि दट्ठुं ॥ ७ ॥
पुच्छइ य सुयपउत्तिं दट्ठुमचेयण-सचेयणाइं पि । वेयारिज्जइ डिंभेहिं डंडिया खंडपावरणा ॥ ८ ॥
अह अन्नया अपच्छिमजिणेसरो तं पुरिं समणुपत्तो । तस्स प्पभावओ ईसि उवसमो तीए संजाओ ॥ ९ ॥
तीए पडिबोहसमयं नाऊणं भुवणसामिणा एगो । पट्ठाविओ रिसी अप्पिऊण अंतरपडं निययं ॥ १० ॥
भणिओ य माहणी तं पेच्छसि अमुगत्थ एरिससरूवा । सा एवं भणियव्वा भद्दे ! न हु किं परमनाणी ? ॥ ११ ॥
पुच्छसि पुत्तपउत्तिं तो संखोहं गमिस्सए एसा । लज्जिस्सइ अप्पाणं अप्पावरणं निएऊणं ॥ १२ ॥
तो तुमए दायव्वो तीए अंतरपडो इमो झत्ति । इय विहिय सा इहइं आगच्छिस्सइ तओ रिसिणा ॥ १३ ॥
तहविहिए संजायं सव्वं पि हु सामिणा जहुद्दिट्ठं । पत्ता य समवसरणे सावित्ती पणमिया पहुणो ॥ १४ ॥
भणिया य भुवनगुरुणा सुधम्मसीले ! कुओ वि ठाणाओ ।
तुह पुत्ता संपत्ता ? तीयुत्तं नो वियाणामि सामि ! ॥ १५ ॥

दुहितापि खलु गायत्री सर्वे सर्वाङ्गवेदपारगताः । एवमतिक्रान्ते कियति काले सौख्येन ॥ ३ ॥
मरणावसानयाऽथान्यदा सकलजीवलोकस्य । प्रथमः सुतो मृतस्ततः सावित्री शोकमनुप्राप्ता ॥ ४ ॥
एवमेव द्वितीयदिवसे द्वितीयः पुत्रोऽपि मरणमनुप्राप्तः । गाढतरं सावित्री शोकेन बाधिता हृदये ॥ ५ ॥
एवं तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमपुत्राः क्रमेण पञ्चत्वम् । सम्प्राप्ताः सावित्र्यास्तदनु शोकग्रहो लग्नः ॥ ६ ॥
नगराभ्यन्तर-रथ्यामुखेषु नित्यं परिभ्रमन्ती सा । व्याहरति दारकाणां नाम्ना सर्वमपि दृष्ट्वा ॥ ७ ॥
पृच्छति च सुतप्रवृत्तिं द्रष्टुमचेतन-सचेतनान्यपि । प्रतार्यते डिम्भैः डण्डिका-खण्डप्रावरणा ॥ ८ ॥
अथान्यदाऽपश्चिमजिनेश्वरस्तां पुरिं समनुप्राप्तः । तस्य प्रभावादीषदुपशमस्तस्याः सञ्जातः ॥ ९ ॥
तस्याः प्रतिबोधसमयं ज्ञात्वा भुवनस्वामिनैकः । प्रस्थापितो ऋषिरर्पयित्वान्तरपटं निजकम् ॥ १० ॥
भणितश्च ब्राह्मणि त्वं पश्यस्यमुकस्थेदृशस्वरुपा । सैवं भणितव्या भद्रे ! न खलु किं परमज्ञानी ? ॥ ११ ॥
पृच्छसि पुत्रप्रवृत्तिं ततः संक्षोभं गमिष्यत्येषा । लज्जिस्यत्यात्मानमल्पावरणं दृष्ट्वा ॥ १२ ॥
तदा त्वया दातव्यस्तस्या आन्तरपटोऽयं शीघ्रम् । इति विहिते सेहागमिष्यति तत ऋषिणा ॥ १३ ॥
तथाविहिते सञ्जातं सर्वमपि हु स्वामिना यथोदिष्टम् । प्राप्ता च समवसरणे सावित्री प्रणता प्रभोः ॥ १४ ॥
भणिता च भुवनगुरुणा सुधर्मशीले ! कुतोऽपि स्थानात् । तव पुत्राः सम्प्राप्ताः ? तयोक्तं न विजानामि स्वामिन् ॥१५॥

पुणरवि तिहुयणवइणा भणिया जाणेसि कत्थइ गया ते ? ।
सा जंपइ न वियाणामि सामि ! तो भणइ जिणनाहो ॥ १६ ॥
तेसिं सुह-दुक्खाइं जाणासि ? सा भणइ नो वियाणामि । जंपइ तिहुयणसामी अणत्थं किं किलम्मिहसि ? ॥१७॥
सा आह मज्झ मोहो किलेसमुप्पायए तओ भयवं । जंपइ उज्झिय मोहं तत्तसरुवे मणं कुणसु ॥ १८ ॥
जमिहऽत्थि वत्थुजायं तमसारं सव्वमेव संसारे । धम्मो उ सासओ इह ता तम्मि समुज्जमं कुणसु ॥ १९ ॥
बहुएण वि भद्दे ! सोइएण न वलंति वल्लहा पुत्ता । ता जिणधम्मे उज्जमसु जायए जेण न विओगो ॥ २० ॥
कम्मग्गंठी भिन्नो तीए एवं निसामयंतीए । सम्मत्तं संजायं पडिवन्ना देसविरई वि ॥ २१ ॥
वंदिय जिणमणुपत्ता गिहम्मि तं पेच्छिउं पई तुट्ठो । पट्ठाविओ य तीए पासे सिरिवद्धमाणस्स ॥ २२ ॥
तो रहरयणं रणझणिरकणयघंटं समारुहेऊण । पत्तो य समवसरणो पणमिय सामिं समुवविट्ठो ॥ २३॥
कहिया सद्धम्मकहा पहुणा संजायचरणपरिणामो । सो पव्वइओ पत्तो य मंदिरे सारही सरहो ॥ २४ ॥
कहियं सावित्तीए पइपव्वयणं तओ इमा तुट्ठा । तं चेव पारितोसियदाणं से देइ रहरयणं ॥ २५ ॥
तेणुत्तं पज्जत्तं रहेणमहमवि य पव्वइस्सामि । तं निसुणिय तीए वि हु संजाओ चरणपरिणामो ॥ २६ ॥
सह सारहिणा सा वि हु पव्वइया पुत्तया दुवे तीए । गिहिधम्मं पिडवन्ना सद्धिं भइणीए जिणपासे ॥ २७ ॥

॥ सावित्र्याख्यानं समाप्तम् ॥ ११६॥

पुनरपि त्रिभुवनपतिना भणिता जानासि कुत्रचिद्गतास्ते ? ।
सा जल्पति न विजानामि स्वामिन् ! तदा भणति जिननाथः ॥ १६ ॥
तेषां सुख-दुःखानि जानासि ? सा भणति न विजानामि । जल्पति त्रिभुवनस्वाम्यनर्थकं किं क्लाम्यसि ? ॥ १७ ॥
साह मम मोहः क्लेशमुत्पाद्यते ततो भगवान् । जल्पत्युज्झित्य मोहं तत्त्वस्वरुपे मनः कुरुष्व ॥ १८ ॥
यदिहास्ति वस्तुजातं तदसारं सर्वमेव संसारे । धर्मस्तु शाश्वत इह ततस्तस्मिन् समुद्यमं कुरु ॥ १९ ॥
बहुकेनापि भद्रे ! शोचितेन न वलन्ति वल्लभाः पुत्राः । ततो जिनधर्म उद्यच्छ जायते येन न वियोगः ॥ २० ॥
कर्मग्रन्थि भिन्नस्तस्या एवं निशमयन्त्याः । सम्यक्त्वं सञ्जातं प्रतिपन्ना देशविरतिरपि ॥ २१ ॥
वन्दित्वा जिनमनुप्राप्ता गृहे तां दृष्ट्वा पतिस्तुष्टः । प्रस्थापयितश्च तया पार्श्वे श्रीवर्धमानस्य ॥ २२ ॥
ततो रथरत्नं रणझणत्कनकघण्टं समारुह्य । प्राप्तश्च समवसरणे प्रणम्य स्वामिनं समुपविष्टः ॥ २३ ॥
कथिता सद्धर्मकथा प्रभुणा सञ्जातचरणपरिणामः । सः प्रव्रजितः प्राप्तश्च मन्दिरे सारथी सरथः ॥ २४ ॥
कथितं सावित्र्याः पतिप्रव्रजनं तत इमा तुष्टा । तं चैव पारितोषिकदानं तस्मै ददाति रथरत्नम् ॥ २५ ॥
तेनोक्तं पर्याप्तं रथेनाहमपि च प्रव्रजिष्यामि । तन्निश्रुत्य तस्या अपि हु सञ्जातश्चरणपरिणामः ॥ २६ ॥
सह सारथिना सापि खलु प्रव्रजिता पुत्रकौ द्वौ तस्याः । गृहिधर्मं प्रतिपन्नौ सार्धं भगिन्या जिनपार्श्वे ॥ २७ ॥

॥ सावित्र्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ११९ ॥

इदानीं मन्त्र्यख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम् –

तिहुयणमंगलनिलए नयरे मंगलउरम्मि नरनाहो । नामेण चंदसेणो नियकंतिकलाविजियचंदो ॥ १ ॥

नियतेयपहयभाणू भाणू नामेण तस्स वरमंती । तस्स य सरस्सई नाम पणइणी हरिणसमनयणी ॥ २ ॥

तह कह वि कुरुंगाण व परोप्परं ताण पेम्मामारुढं । जह निक्कित्तिमपेम्माणिमाणि जाया जणपसिद्धी ॥ ३ ॥

अह अन्नया निसाए निद्दं चइउं सरस्सई सहसा । रुयमाणी पल्लंकाओ उट्ठिया तो अमच्चेण ॥ ४ ॥

संभंतेणं भणिया पिए ! किमेयं ? ति जंपइ इमा वि । न हु किं पि तो निबंधेण पुच्छिया साहए एवं ॥ ५ ॥

दिट्ठो सुविणे तं पिय ! अवराए समं मए पयंपंतो । तं सोऊणं चिंतइ मंती सुविणे वि जइ एसा ॥ ६ ॥

उव्वहइ महाखेयं तो जइ पच्चक्खमेव मं कह वि । पेच्छइ अवराए समं ता पाणे च्चिय परिच्चयइ ॥ ७ ॥

तो अन्नभारियाए जावज्जीयं पि होउ मह नियमो । तत्तो भणिज्जमाणो वि नेय परिणेइ सो अवरं ॥ ८ ॥

एसेव से पसिद्धी संजाया नरवरिंदपज्जंता । मंति मोत्तुं नयरम्मि नरवई अवरसमयम्मि ॥ ९ ॥

रिउविजयत्थं पत्तो कत्थइ अह तत्थ मंतिमिहुणस्स । पेम्मकहा संजाया जह एगेणं मरंतेणं ॥ १०॥

मरइ दुइज्जं पि तओ तस्स परिक्खणकए तेण । अलियप्पओयणेणं मंतिं हक्कारिउं कडए ॥ ११ ॥

नयरम्मि अलियवत्ता कारविया जह मओ महामंती । तं सोउं तब्भज्जा मया दुहा फुट्टिउं हियये ॥ १२ ॥

तं निसुणिऊण राया अप्पाणं निंदए गुरुविसाओ । हा ! कत्थ इत्थिवज्झापावमहं नित्थरिस्सामि ? ॥ १३ ॥

मन्त्र्याख्यानकम् ॥ १२० ॥

त्रिभुवनमङ्गलनिलये नगरे मङ्गलपुरे नरनाथ: । नाम्ना चन्द्रसेनो निजकान्तिकलाविजितचन्द्र: ॥ १ ॥

निजतेज:प्रहतभानु र्भानु र्नाम्ना तस्य वरमन्त्री । तस्य च सरस्वती नाम प्रणयिनी हरिणसमनयनी ॥ २ ॥

तथा कथमपि कुरङ्गयोरिव परस्परं तयो: प्रेमारुढम् । यथा निष्कृत्रिमप्रेम्णवतौ जाता जनप्रसिद्धि: ॥ ३ ॥

अथान्यदा निशि निद्रां त्यक्त्वा सरस्वती सहसा । रुदन्ती पल्यङ्कादुत्थिता ततोऽमात्येन ॥ ४ ॥

सम्भ्रान्तेन भणिता प्रिये ! किमेतदिति ? जल्पतीमापि । न हु किमपि तदा निर्बन्धेन पृष्टा कथयत्येवम् ॥ ५ ॥

दृष्ट: स्वप्ने त्वं प्रिय ! अपराया: समं मया प्रजल्पन् । तत् श्रुत्वा चिन्तयति मन्त्री स्वप्नेऽपि यद्येषा ॥ ६ ॥

उद्वहति महाखेदं ततो यदि प्रत्यक्षमेव मां कथमपि । पश्यत्यपराया: समं ता प्राणांश्चैव परित्यजति ॥ ७ ॥

ततोऽन्यभार्याया यावज्जीवमपि भवतु मम नियम: । ततो भण्यमानोऽपि नैव परिणयति सोऽपराम् ॥ ८ ॥

एषैव तस्य प्रसिद्धि: सञ्जाता नरवरेन्द्रपर्यन्ता । मन्त्रिणं मुक्त्वा नगरे नरपतिरपरसमये ॥ ९ ॥

रिपुविजयार्थं प्राप्त: कुत्रचिदथ तत्र मन्त्रिमिथुनस्य । प्रेमकथा सञ्जाता यथैकेन म्रियमाणेन ॥ १० ॥

म्रियते द्वितीयमपि ततस्तस्य परीक्षणकृते तेन । अलिकप्रयोजनेन मन्त्रिणमाकार्य कटके ॥ ११ ॥

नगरेऽलिकवार्त्ता कारिता यथा मृतो महामन्त्री । तत् श्रुत्वा तद्भार्या मृता द्विधा स्फुटित्वा हृदयम् ॥ १२ ॥

तन्निश्रुत्य राजाऽऽत्मानं निन्दति गुरुविषाद: । हा ! क्व स्त्रीहत्यापापादहं निस्तरिष्यामि ? ॥ १३ ॥

तीए जहा नियपाणा तणं व चत्ता सुणित्ता पइमरणं । मंती वि पियामरणं सोउं नूणं तहा मरिही ॥ १४ ॥

इय चिंतिउं नरिंदो सहस त्ति गओ अमच्चपासम्मि । भणियं च तेण किं देव ! अणुचियं कयमिहाऽऽगमणं ? ॥ १५ ॥

तो भूवइणा भणियं इहाऽऽगया गरुयकारणेण वयं । किं पि तुमं पत्थेमो जइ वियरसि भणइ तो मंती ॥ १६ ॥

देव मह जीवियं पि हु तुज्झाऽऽयत्तं किमेत्थ अवरेण ? । सामी तो अवियप्पं आइसउ पओयणं जेण ॥ १७ ॥

तत्तो मंति धरिउं भुयाए पुहईसरेणिमं भणियं । तुह दइया पंचत्तं पत्ता इमिणा पयारेण ॥ १८ ॥

अब्भत्थामो एयं मरियव्वं न हु तए इमं सोउं । संखुद्धमणो मंती चिंतइ हा हा ! किमेयं ? ति ॥ १९ ॥

भणइ य तुहाणुभावो जं फुट्टइ संपयं न मह हिययं । किंतु न देवेण अहं भणियव्वो अवरदारकए ॥ २० ॥

अवरं च तीए लोयव्ववहाराई करेमि गंतूण । तो नरवइणा मुक्को संपत्तो निययनयरम्मि ॥ २१ ॥

पच्चइयपुरिससंगहियमट्ठिनियरं पियाए पूयंतो । तीए ससिकिरणनिम्मलगुणनियरं संभरेऊण ॥ २२ ॥

रोयावंतो नियपरियणं पि करुणस्सरं रुयइ मंती । सुमरंतो तमणुदिणं मणम्मि मरणं पि अहिलसइ ॥ २३ ॥

किंतु निववयणबंधणबद्धो गमिउं पभूयवरिसाइं । अह अन्नया अमच्चो चिंतइ मह होज्ज जइ मरणं ॥ २४ ॥

तो पणइणीए अट्ठियनियरं न हु कोइ नेइ गंगाए । सयमेव य जीवंतो नेमि अहं तत्थ एयाणि ॥ २५ ॥

इय चिंतिऊण मंती नीहरिओ राइणो अकहिऊण । वाणारसिनयरीए गंगातीरम्मि संपत्तो ॥ २६ ॥

तया यथा निजप्राणास्तृणमिव त्यक्ताः श्रुत्वा पतिमरणम् । मन्त्र्यपिप्रियामरणं श्रुत्वा नूनं तथा मरिष्यति ॥ १४ ॥

इति चिन्तयित्वा नरेन्द्रः सहसेति गतोऽमात्यपार्श्वे । भणितं च तेन किं देव ! अनुचितं कृतमिहाऽऽगमनम् ? ॥ १५ ॥

ततो भूपतिना भणितमिहाऽऽगता गुरुककारणेन वयम् । किमपि त्वां प्रार्थयामो यदि वितरसि भणति तदा मन्त्री ॥ १६ ॥

देव मम जीवितमपि हु तवायत्तं किमत्रापरेण ? । स्वामिन् ! ततोऽविकल्पमादिशतु प्रयोजनं येन ॥ १७ ॥

ततो मन्त्रिणं धृत्वा भुजया पृथिवीश्वरेणेदं भणितम् । तव दयिता पञ्चत्वं प्राप्तानेन प्रकारेण ॥ १८ ॥

अभ्यर्थयामहे एतन्मर्त्तव्यं न खलु त्वयेदं श्रुत्वा । संक्षुब्धमना मन्त्री चिन्तयति हा हा ! किमेतदिति ? ॥ १९ ॥

भणति च तवानुभावो यन्न स्फुटति साम्प्रतं न मम हृदयम् । किन्तु न देवेनाहं भणितव्योऽपरदारकृते ॥ २० ॥

अपरं च तस्या लोकव्यवहारादिः करोमि गत्वा । ततो नरपतिना मुक्तः सम्प्राप्तो निजकनगरे ॥ २१ ॥

प्रत्यायितपुरुषसङ्गृहीतमस्थिनिकरं प्रियायाः पूज्यमानः । तस्याः शशिकिरणनिर्मलगुणनिकरं स्मृत्वा ॥ २२ ॥

रोदयन्निजपरिजनमपि करुणस्वरं रोदिति मन्त्री । स्मरंस्तामनुदिनं मनसि मरणमप्यभिलषति ॥ २३ ॥

किन्तु निजवचनबन्धनबद्धो गमयित्वा प्रभूतवर्षाणि । अथान्यदाऽमात्यश्चिन्तयति मम भवेद्यदि मरणम् ॥ २४ ॥

ततः प्रणयिन्या अस्थिकनिकरं न हु कोऽपि नयति गङ्गायाम् । स्वयमेव च जीवन्नयाम्यहं तत्रैतानि ॥ २५ ॥

इति चिन्तयित्वा मन्त्री निःसृतो राज्ञोऽकथयित्वा । वाणारसिनगर्या गङ्गातीरे सम्प्राप्तः ॥ २६ ॥

तत्तो अमरतरंगिणीतीरे दविणं दियाण दाऊण । संभरिऊण सकरुणं पियागुणे रुयइ गुरुसोओ ॥ २७ ॥

कंकेल्लिपल्लवुव्वेल्लिरेहिं हत्थेहिं जेहिं गहिया सि । तेहिं चिय इण्हि विहिवसेण सलिलंजली दिन्नो ॥ २८ ॥

कयवेरो व्व कयंतो न सहइ दइयाए अट्ठिएहिं पि । संगमसुहं ति बहुविहमेवं पलवइ पणट्ठसुहो ॥ २९ ॥

ता तत्थ समणपत्ता अहिणवजोव्वणमणोहरसरीरा । तन्नयररायधूया नामेण सरस्सई कन्ना ॥ ३० ॥

कोऊहलेण पुलिणे परिब्भमंतिए तीए सो मंती । दिट्ठो दुहसंतत्तो ससंभमं पुच्छिओ एवं ॥ ३१ ॥

सुपुरिस ! किं तुह दुक्खं दीणसरं रुयसि जं ? तयणु मंती । तीए पयासइ सव्वं नियवुत्तंतं तओ कुमरी ॥ ३२ ॥

संजायजाइसरणा पडिया महिमंडलम्मि मुच्छाए । तो भीओ सहिवग्गो उवयारे काउमारद्धो ॥ ३३ ॥

तं सोऊण नरिंदो संभंतो झत्ति तत्थ संपत्तो । संपुच्छिया तओ सा वच्छे ! मुच्छा तुह किमेसा ? ॥ ३४ ॥

भणियं च तीए एसो भत्ता मह आसि पूव्वजम्मम्मि । अवरोप्परं पि पीई नामं पि सरस्सई आसि ॥ ३५ ॥

कहियं इच्चाइ असेसयं पि रायस्स तो अमच्चस्स । सप्पच्चयं समग्गं साहइ सा सो वि संतुट्ठो ॥ ३६ ॥

परिणाविओ य रन्ना गरुयपमोएण सो महामंती । नियमरणाओ सयलं पि पुच्छिओ तो इमो तीए ॥ ३७ ॥

कहियम्मि अमच्चेणं चिंतइ एसा अहो ! महासत्तो ! पेच्छ जहा किच्छेणं एत्तियकालं ठिओ एसो ॥ ३८ ॥

तो सविसेसं पेम्मं परोप्परं ताण जायमइसरसं । अह अन्नया नरिंदो तस्सेव य भाणुसचिवस्स ॥ ३९ ॥

ततोऽमरतरङ्गिणितीरे द्रविणं द्विजेभ्यो दत्वा । स्मृत्वा सकरुणं प्रियागुणान् रोदिति गुरुशोकः ॥ २७ ॥

कङ्केलिपल्लवप्रसृताभ्यां हस्ताभ्यां याभ्यां गृहीतासि । ताभ्यां चैवेदानीं विधिवशेन सलिलाञ्जलि र्दत्तः ॥ २८ ॥

कृतवैर इव कृतान्तो न सहते दयिताया अस्थिकैरपि । सङ्गमसुखमिति बहुविधमेवं प्रलपति प्रणष्टसुखः ॥ २९ ॥

तावत्तत्र समनुप्राप्ताभिनवयौवनमनोहरशरीरा । तन्नगरराजदुहिता नाम्ना सरस्वती कन्या ॥ ३० ॥

कौतूहलेन पुलिने परिभ्रमन्त्या तया स मन्त्री । दृष्टो दुःखसन्तप्तः ससम्भ्रमं पृष्ट एवम् ॥ ३१ ॥

सुपुरुष ! किं तव दुःखं दीनस्वरं रोदिषि यत् ? तदनु मन्त्री । तस्याः प्रकाशते सर्वं निजवृत्तान्तं ततः कुमारी ॥ ३२ ॥

सञ्जातजातिस्मरणा पतिता महिमण्डले मूर्च्छया । ततो भीतः सखीवर्ग उपचारान् कर्तुमारब्धः ॥ ३३ ॥

तत् श्रुत्वा नरेन्द्रः सम्भ्रान्तो झटिति तत्र सम्प्राप्तः । सम्पृष्टा ततः सा वत्से ! मूर्च्छा तव किमेषा ? ॥ ३४ ॥

भणितं च तयैष भर्ता ममासीत् पूर्वजन्मनि । परस्परमपि प्रीति र्नामापि सरस्वत्यासीत् ॥ ३५ ॥

कथितमित्याद्यशेषमपि राज्ञस्ततोऽमात्यस्य । सप्रत्ययं समग्रं कथयति सा सोऽपि सन्तुष्टः ॥ ३६ ॥

परिणायितश्च राज्ञा गुरुकप्रमोदेन स महामन्त्री । निजमरणात् सकलमपि पृष्टस्तदायं तया ॥ ३७ ॥

कथितेऽमात्येन चिन्तयत्येषाहो ! महासत्त्वः । पश्य यथा कृच्छ्रेणैतावत्कालं स्थित एषः ॥ ३८ ॥

ततः सविशेषं प्रेम परस्परं तयो र्जातमतिसरसम् । अथान्यदा नरेन्द्रस्तस्यैव च भानुसचिवस्य ॥ ३९ ॥

दाउं नरिंदलच्छि पत्तो पंचत्तमह अमच्चनिवो । तीए सह विसयसोक्खं उवभुंजइ रायलच्छिजुओ ॥ ४० ॥
अह अन्नया य देवी दाहजरेणं अईव अभिभूया । पच्चक्खाया वेज्जेहिं सव्वहा तयणु भाणुनिवो ॥ ४१ ॥
चिंतइ जाव इमाए अमणुन्नं न हु निएमि ताव सयं । अहयं मरामि न सुणेमि जेण नियपिययमामरणं ॥ ४२ ॥
इय चिंतिऊण भाणू आरुढो सत्तमाए भूमीए । पासायस्स तलाओ उब्बंधइ जाव ता सहसा ॥ ४३ ॥
भणियो चारणमुणिणा सुपुरिस ! किं कुणसि बालमरणमिणं ? । अप्पवहेणं जायइ भवंतरेसु वि महादुक्खं ॥४४॥
तो भाणुभूमिवइणा भणियं भयवं ! करेमि किं इन्हिं । अतरंतो नियपाणे धरिउं दइयाविओगम्मि ? ॥ ४५ ॥
तो भणइ चारणमुणी धम्मो च्चिय हरइ दुक्खदंदोलि । ता निच्चं पि नरेसर ! कायव्वो सो सुबुद्धीहिं ॥ ४६ ॥
रागाइरहियदेवं पंचमहव्वयसमन्नियं च गुरुं । जिणनाहकहियतत्तं संपइ पडिवज्जसु नरिंद ! ॥ ४७ ॥
तो भूवइणा भत्तीए सविणयं गिण्हिउं जिणाभिहियं । धम्मं नीओ य मुणी पासे नियपिययमाए तओ ॥ ४८ ॥
सा वि हु चारणमुणिणो चरणे पणमेवि गिण्हइ गिहीण । धम्मं तो मुणिचरणाणुभावओ सज्जया जाया ॥ ४९ ॥
तत्तो पंचपयारेभोए भोत्तूण दो वि बहुकालं । अहिसिंचिऊण कुमरं रज्जे सुगुरुण पासम्मि ॥ ५०॥
पव्वज्जं धेत्तूणं काउं अइदुक्करं तवच्चरणं । काऊण कालमासे कालं सग्गं समणुपत्ता ॥ ५१ ॥

॥ मन्र्याख्यानकं समाप्तम् ॥

दत्वा नरेन्द्रलक्ष्मीं प्राप्तः पञ्चत्वमथामात्यनृपः । तया सह विषयसौख्यमुपभुनक्ति राजलक्ष्मीयुतः ॥ ४० ॥
अथान्यदाच देवी दाहज्वरेनातीवाभिभूता । प्रत्याख्याता वैद्यैः सर्वथा तदनु भानुनृपः ॥ ४१ ॥
चिन्तयति यावदनयामनोज्ञं न हु पश्यामि तावत्स्वयम् । अहं म्रिये न शृणोमि येन निजप्रियतमामरणम् ॥ ४२ ॥
इति चिन्तयित्वा भानुरारुढः सप्तमां भूमिम् । प्रासादस्य तलादुद्बध्नाति यावत्तावत्सहसा ॥ ४३ ॥
भणितश्चारणमुनिना सुपुरुष ! किं करोषि बालमरणमिदम् ? । आत्मवधेन जायते भवान्तरेष्वपि महादुःखम् ॥ ४४ ॥
तदा भानुभूपतिना भणितं भगवन् ! करोमि किमिदानीम् । अशक्नुवन्निजप्राणान् धर्तुं दयितावियोगे ? ॥ ४५ ॥
तदा भणति चारणमुनि र्धर्मश्चैव हरति दुःखदन्दोलिम् । ततो नित्यमपि नरेश्वर ! कर्त्तव्यः स सुबुद्धिभिः ॥ ४६ ॥
रागादिरहितदेवं पञ्चमहाव्रतसमन्वितं च गुरुम् । जिननाथकथिततत्त्वं सम्प्रति प्रतिपद्यस्व नरेन्द्र ! ॥ ४७ ॥
ततो भूपतिना भक्त्या सविनयं गृहीत्वा जिनाभिहितम् । धर्मं नीतश्च मुनिः पार्श्वे निजप्रियतमायास्ततः ॥ ४८ ॥
सापि हु चारणमुनेश्चरणे प्रणम्य गृह्णाति गृहीणाम् । धर्मं ततो मुनिचरणानुभावात् सज्जा जाता ॥ ४९ ॥
ततः पञ्चप्रकारान् भोगान् भुक्त्वा द्वावपि बहुकालम् । अभिषिञ्च्य कुमारं राज्ये सुगुरूणां पार्श्वे ॥ ५० ॥
प्रव्रज्यां गृहीत्वा कृत्वातिदुष्करं तपश्चरणम् । कृत्वा कालमासे कालं स्वर्गं समनुप्राप्तौ ॥ ५१ ॥

॥ मन्र्याख्यानकं समाप्तम् ॥ १२० ॥

इदानीं श्रमण्याख्यानकस्यावसरः, तच्च एकाकित्वाधिकारेऽर्हन्नाकाख्यानकेऽप्युक्तमेव । तदनन्तरं रामाख्यानकस्यावसरः, तदपि अप्रतिविधेयविध्यधिकारे यादवाख्यानके व्याख्यातम् । अतोऽवसरायातं –

कुलानन्दाख्यानकमभिधीयते । तच्चेदम् –

जिन[1]वृन्दमिव प्रकटं स्वगुणैः पुरमस्ति भूतलानन्दम् । तं परिपालइ सुहमुभयहा वि राया कुलानंदो ॥ १ ॥

सर्वान्तःपुरसारा निजरूपविनिर्जितस्मरकलत्रा । तिहुयणतिलया नामेण पिययमा तस्स नरवइणो ॥ २ ॥

जन्मान्तरपुण्यवशोपात्तं पञ्चप्रकारविषयसुखम् । उवभुंजइ तीए समं निरंतरं नेहपडिबद्धो ॥ ३ ॥

सहते तया वियोगं नो नयननिमेषमात्रमप्यसकौ । तब्भाविओ व्व तच्चेट्ठिओ व्व सइ तम्मओ व्व निवो ॥ ४ ॥

भणितश्च मन्त्रिभिरसावरिषड्वर्गं वदन्ति विद्वांसः । कामं कोहं लोहं गव्वं हरिसं च माणं च ॥ ५ ॥

राज्ञः परिहरणीयं तस्माद् देव्या सहाल्पममुमधुना । आयरसु देव ! कल्लाणमप्पणो महसि जइ विउलं ॥ ६ ॥

एवमसौ हितकामैर्मन्त्रिवरैः शिक्षितोऽपि मोहवशात् । नो तं मन्नइ सिक्खा मयणाहीणेऽवा विहला ॥ ७ ॥

अन्येद्युरसौ राजा विचित्रचित्राभिरामभित्तिधने । पुप्फोवयाररेहिरमणहरमणिकुट्टिमतलम्मि ॥ ८ ॥

बहुमूल्यवसनविरचितशुचिचञ्चच्चन्द्रगोपकपवित्रे । ससि-कुंदधवललंबिरमुत्तासरियासयसमिद्धे ॥ ९ ॥

सुकुमारहंसतूलीकल्पितपर्यङ्करूपशयनीये । सुरहिविलेवण-तंबोल-पुप्फपडलयपहाणम्मि ॥ १० ॥

प्रज्वलितदीपसर्पत्प्रभाप्रभावावलुप्ततिमिरभरे । देवीए समं पविसइ राया वरवासभवणम्मि ॥ ११ ॥

कुलानन्दाख्यानकम् ॥ १२१ ॥

[2]तं परिपालयति सुखमुभयथापि राजा कुलानन्दः ॥ १ ॥

त्रिभुवनतिलका नाम्ना प्रियतमा तस्य नरपतेः ॥ २ ॥

उपभुनक्ति तया समं निरन्तरं स्नेहप्रतिबद्धः ॥ ३ ॥

तद्भावित इव तच्चेष्टित इव सदा तन्मय इव नृपः ॥ ४ ॥

कामं क्रोधं लोभं गर्वं हर्षं च मानं च ॥ ५ ॥

आचर देव ! कल्याणमात्मन इच्छसि यदि विपुलम् ॥ ६ ॥

नो तन्मन्यते शिक्षा मदनाधीनेऽथवा विफला ॥ ७ ॥

पुष्पोपचारराजमानमनोहरमणिकुट्टिमतले ॥ ८ ॥

शशि-कुन्दधवललम्बमानमुक्तासरिकाशतसमृद्धे ॥ ९ ॥

सुरभिविलेपन-तम्बोल-पुष्पपटलकप्रधाने ॥ १० ॥

देव्या समं प्रविशति राजा वरवासभवने ॥ ११ ॥

---

१. पूर्वार्धसंस्कृतोत्तरार्धप्राकृतभाषामिश्रेयं कथा । २. पश्चिमार्धस्येमा सकला छाया अस्ति ।

पुष्पग्रहणनिमित्तं यावद्धस्तं करण्डके क्षिपति । ताव त्ति देवी दट्ठा राइल्लभुयगेण[१] ॥ १२ ॥
स्वामिन् ! दष्टा दष्टेति पूत्कृते परिकरः समस्तोऽपि । रन्नो पासे पत्तो जंपंतो किं किमेयं ? ति ॥ १३ ॥
उत्कटविषवेगवशात् सम्मीलितलोचनाऽभवद् देवी । वयणविणिग्गयफेणा विसंठुलावयवविगियतणू ॥ १४ ॥
गारुडक-वैद्य-वातिकमुख्यैः सर्वैरपि त्यक्तमूर्ति सा । पेच्छंताण वि तेसिं परिचत्ता जीवियव्वेण ॥ १५ ॥
हा ! हतविधिना मुषिताः [सर्वे] देवी मृता मृतेति जनः । हाहारवमुहलमुहो पलवइ दुहसल्लियसरीरो ॥ १६ ॥
राजाऽपि स्नेहवशादधिकं सञ्जातहृदयसङ्घट्टः । आगयमुच्छो सिसिरोवयारसंजायचेयन्नो ॥ १७ ॥
प्रलपति बहुप्रकारं प्रतिवचनं देवि ! देहि मम दयिते ! । कत्थ गया ? संधीरसु दंसणु वयणं दुहत्तस्स ॥ १८ ॥
हा देवि ! नयननिर्जितपद्मदलं सरसललितसस्मेरम् । तुज्झ मुहं गयपुन्नो पेच्छिस्सं कहसु कइया हं ॥ १९ ॥
एवं प्रलपन् राजा सचिवैः सन्धीरितो मधुरवचनैः । विहिणो मल्लो एयस्स देव ! भुवणे वि नत्थि जओ ॥ २० ॥
अवलम्बस्व ततो हृदि सुन्दर ! धैर्यं विचारय विचित्रम् । विलसियमिमस्स विहिणो किं बहुएण वि पलविएण ? ॥ २१ ॥
सम्प्रति देव्या विधिना विधीयतां देव ! वह्निसंस्कारः । गय-मय-पव्वइएसुं सोयं न कुणंति सप्पुरिसा ॥ २२ ॥
प्रतिहतममङ्गलमिदं सपदि पतिष्यति शिरस्यतो भवताम् । अग्गी वि हु लग्गिस्सइ तुम्हं देहे न देवीए ॥ २३ ॥
यस्मादपराधवतो मम रुष्टा प्रेमरोषणादेषा । तम्हा नियपियममिममहमेव य पत्तियाविस्सं ॥ २४ ॥
एवं न ददाति यदा कर्तुममुष्याः स वह्निसंस्कारम् । तो संजाया सव्वे वि मंतिणो किमवि सविसाया ॥ २५ ॥

तावत्सहसेतिदेवी दष्टा रागीजगेन ॥ १२ ॥
राज्ञः पार्श्वे प्राप्तो जल्पन् किं किमेतदिति ॥ १३ ॥
वदनविनिर्गतफेणा विसंस्थूलावयवविकृततनुः ॥ १४ ॥
पश्यतामपि तेषां परित्यक्ता जीवितव्येन ॥ १५ ॥
हाहारवमुखरमुखः प्रलपति दुःखशल्यितशरीरः ॥ १६ ॥
आगतमूर्च्छः शिशिरोपचारसञ्जातचैतन्यः ॥ १७ ॥
क्व गता ? सन्धीरय दर्शय वदनं दुःखार्त्तस्य ॥ १८ ॥
तव मुखं गतपुण्यो द्रक्ष्यामि कथय कदाहम् ॥ १९ ॥
विधे मल्ल एतस्य देव ! भुवनेऽपि नास्ति यतः ॥ २० ॥
विलसितमेतस्य विधेः किं बहुनापि प्रलपितेन ? ॥ २१ ॥
गत-मृत-प्रव्रजितेषु शोकं न कुर्वन्ति सत्पुरुषाः ॥ २२ ॥
अग्निरपि हु लगिष्यति युष्मद्देहे न देव्याः ॥ २३ ॥
तस्मान्निजप्रियतमामिमामहमेव च प्रत्यायिष्यामि ॥ २४ ॥
ततः सञ्जाताः सर्वेऽपि मन्त्रिणः किमपि सविषादाः ॥ २५ ॥

---

१. सर्पविशेषः ।

एकमपुत्रो मोहेन विनटितोऽन्यच्च धरणिपतिरेषः । कह होही रज्जमिमं ? ति गरुयचिंता गमंति दिणे ॥ २६ ॥
सा तु त्रिभुवनतिलकामूर्तिर्मुक्ता तथैव तैलेन । तलिऊण तं नियंतो चिट्ठइ राया गहगहिल्लो ॥ २७ ॥
तेऽपि च तथैव तं शिक्षयन्ति राजानमतिनिपुणवचनैः । राया वि देवि ! एए न अच्छिउं देंति वसिमम्मि ॥ २८ ॥
तदितः स्थानाद् यावो दुर्जनरहिते कचिद् विजनदेशे । तत्थ सुहेणं गंतूण चिट्ठिमो सव्वया जेण ॥ २९ ॥
इत्युक्त्वा तामुत्क्षिप्य मोहतः स्कन्धदेशमारोप्य । गंतूणं वणगहणे तं मोत्तुं कम्मि वि पएसे ॥ ३० ॥
कन्द-फल-मूलभक्षी पश्यन्नास्ते प्रियां स तत्र सुखम् । एवं कयम्मि कइया वि कोविओ कहइ को वि नरो ॥ ३१ ॥
अहमिममत्यन्तं मूढमानसं मन्त्रिणो महीनाथम् । काउं कमवि पवंचं करेमि पउणं सपन्नाए ॥ ३२ ॥
प्रतिपन्ने तद्वचने तेनाप्यानायिता निपुणमतिका । एगा रमणी रमणीययाइगुणमंदिरमुदारं ॥ ३३ ॥
सा कञ्चन नरमेकं मृतकं स्कन्धे तथा समारोप्य । तत्थेव वणे परिभमइ तस्स रन्नो नियंतस्स ॥ ३४ ॥
तेनाऽऽपृष्टा सुन्दरि ! का त्वं ? स्कन्धे किमेष पुरुषस्ते ? । तीए भणियं कुलबालियाऽहमेसो य मे भत्ता ॥ ३५ ॥
परमेनं मृतकममी नागरका बालिशाः प्रजल्पन्ति । तो तेहिमहं बाढं संतविया एत्थ संपत्ता ॥ ३६ ॥
राज्ञाऽप्यभाणि भद्रे ! दुर्जनलोकोऽयमीदृशः सर्वः । अहमवि तस्स भएणं एयम्मि वणे परिवसामि ॥ ३७ ॥
एनामपि मम दयितां मृतां प्रजल्पन्ति येन मूढधियः । ता समदुक्खाणऽम्हं जुत्तमरन्नम्मि वसिउं जे ॥ ३८ ॥
एवं च तत्र वसतोः सुखमतिजग्मुः कियन्त्यपि दिनानि । अह अन्नया य तीए भणिओ राया लयंतरिओ ॥ ३९ ॥
पश्यासौ तव दयिता किञ्चिज्जल्पति सहामुना पत्या । मह संतिएण दिट्ठा दिणम्मि अवरम्मि वि जमेसा ॥ ४० ॥

कथं भविष्यति राज्यमिदमिति गुरुकचिन्ता गमयन्ति दिनान् ॥ २६ ॥
तलित्वा तं पश्यंस्तिष्ठति राजा ग्रहग्रथिलः ॥ २७ ॥
राजापि देवि ! एते नासितुं ददति वसतौ ॥ २८ ॥
तत्र सुखेन गत्वा तिष्ठावः सर्वदा येन ॥ २९ ॥
गत्वा वनगहने तां मुक्त्वा कस्मिन्नपि प्रदेशे ॥ ३० ॥
एवं कृते कदापि कोपितः कथयति कोऽपि नरः ॥ ३१ ॥
कृत्वा किमपि प्रपञ्चं करोमि प्रगुणं स्वप्रज्ञया ॥ ३२ ॥
एका रमणी रमणीयतादिगुणमन्दिरमुदारम् ॥ ३३ ॥
तत्रैव वने परिभ्रमति तस्य राज्ञः पश्यतः ॥ ३४ ॥
तया भणितं कुलबालिकाऽहमेष च मे भर्ता ॥ ३५ ॥
ततस्तैरहमत्यन्तं सन्तापितात्र सम्प्राप्ता ॥ ३६ ॥
अहमपि तस्य भयेनैतस्मिन् वने परिवसामि ॥ ३७ ॥
ततः समदुःखयोरावयो र्युक्तमरण्ये वसितुं ये ॥ ३८ ॥
अथान्यदा च तया भणितो राजा लतान्तरितः ॥ ३९ ॥
मम सत्केन दृष्टा दिनेऽपरस्मिन्नपि यदेषा ॥ ४० ॥

तच्छ्रुत्वा वचनमसौ मन्दस्नेहो मनागजनि राजा । पेच्छसु अकयन्नुत्तं अलोइयं किमवि एईए ॥ ४१ ॥
आलापयतोऽपीयं ददाति मम नोत्तरं किमपि पापा । एएणऽसंथुएण वि समं पुणो एवमालवइ ॥ ४२ ॥
अन्येद्युः कूपादौ कापि प्रत्यक्षिपत् तकन्मिथुनम् । सा पच्छा सविसाया आगंतूणं भणइ रायं ॥ ४३ ॥
पश्य त्वद्दयितायाः कीदृगहो ! अधमचेष्टितं राजन् ! उद्दालिऊण नीओ कत्थइ पाणप्पिओ मज्झ ॥ ४४ ॥
अधुना तु मन्दभाग्या रोदिमि कस्याग्रतः ? श्रये कं वा ? । पेच्छ कहं धुत्तीए दो वि दढं वंचिया अम्हे ? ॥ ४५ ॥
श्रुत्वैतद् राज्ञाऽचिन्ति किमनया विहितमित्थमेवैतत् ? । अहवा मह मइमोहो मयाणि दोन्नि वि धुवमिमाणि ॥ ४६ ॥
नूनं मद्बोधार्थं (विहितः) केनचिदिति प्रपञ्चोऽयम् । ता कहमहमिय मूढो जाणंतो वि हु भवसरूवं ॥ ४७ ॥
रे जीव ! कस्य माता ? कस्य पिता ? कस्य किल कलत्रमपि ? । भिन्नपहा जं सव्वे नियकयफलभोइणो सत्ता ॥ ४८ ॥
प्रत्यागतचैतन्यः पुनरपि पालयति नरपती राज्यम् । दोन्ह वि थी-पुरिसाणं महापसाओ कओ ताणं ॥ ४९ ॥
पश्यत मतेरचिन्त्यं माहात्म्यं येन तादृशो विपदः । मुक्को राया जाओ य भायणं रायलच्छीए ॥ ५० ॥

॥ कुलनन्दाख्यानं समाप्तम् ॥ १२१ ॥

यद्वदमीषामभवत् सन्तापपरम्पराकरः शोकः । तह अन्नस्स वि जायइ ता चयह इमं विवेयवसा ॥ १ ॥
शोककरणमशुभफलमभिहितम्, अत एव विदितजिनतत्त्वाः केचन एनं न कुर्वन्त्येव एतद् दृष्टान्तेनाह-

जिणवयणभावियमई संसारासारयं वियाणंता ।
न करंति मए सोयं भवियकुडुंबं व सुपिए पि ॥ ५१ ॥

अस्या व्याख्या- जिनवचनेन-आगमोपदेशेन भाविता वासिता मतिर्येषां ते तथोक्ताः 'संसारासारतां' भवनैर्गुण्यं 'विजानन्तः' अवबुध्यमानाः न कुर्वन्ति मृते शोकं भव्यकुटुम्बवत् 'सुप्रियेऽपि' अतिबल्लभेऽपि इत्यक्षरार्थः ॥ ५१ ॥

पश्याकृतज्ञत्वमलौकिकं किमप्येतस्याः ॥ ४१ ॥
एतेनासंस्तुतेनापि समं पुनरेवमालपति ॥ ४२ ॥
सा पश्चात्सविषादाऽऽगत्य भणति राजानम् ॥ ४३ ॥
आच्छिद्य नीतः कुत्रचित्प्राणप्रियो मम ॥ ४४ ॥
पश्य कथं धूर्त्या द्वावपि दृढं वञ्चितावावाम् ? ॥ ४५ ॥
अथवा मम मतिमोहो मृतौ द्वावपि ध्रुवमेतौ ॥ ४६ ॥
ततः कथमहमिति मूढो जानन्नपि हु भवस्वरुपम् ॥ ४७ ॥
भिन्नपन्थानो यत्सर्वे निजकृतफलभोगिनः सत्त्वाः ॥ ४८ ॥
द्वयोरपि स्त्री-पुरुषयो र्महाप्रसादः कृतस्तयोः ॥ ४९ ॥
मुक्तो राजा जातश्च भाजनं राजलक्ष्म्याः ॥ ५० ॥

॥ कुलनन्दाख्यानकं समाप्तम् ॥ १२१ ॥

तथान्यस्यापि जायते ततस्त्यजतेमं विवेकवशात् ॥ १ ॥

भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तच्चेदम्-

निरुपद्रवतादिसद्गुणैः, क्वचिदाधिक्यगुणातिशायिनि । बहुधाविधिधान्यसम्भवप्रथिते कर्षकसन्निवेशके ॥ १ ॥

वसति प्रियधर्मनामकं , प्रवणं भव्यकुटुम्बमेककम् । जिनधर्मगुणेन भावितं, प्रियसन्तोषसुधातिसुस्थितम् ॥ २ ॥

अथ तत्र कुटुम्बके बृहन्, जनकः सुन्दरनामधेयकः । दयिताऽपि मनोरमामिधा, शुचिशीलादिगुणा जनप्रिया ॥ ३ ॥

तनयोऽप्यनयोर्मनोरथो, भणितोऽथास्य वधूश्च सूमिका ।
गुणयोग्यमिति प्रसिद्धितः, कथितं भव्यकुटुम्बकं जनैः ॥ ४ ॥

प्रियभाषितया विभूषितं, न च केनापि जनेन दूषितम् । स्वकुटुम्बकसंहतौ स्थितं, परमात्सर्यवियोगसुस्थितम् ॥५॥

परमेतदनिन्द्यसङ्गतं, जिनधर्माचरणे सुनिश्चितम् । तदचिन्त्यकुकर्मदोषतो, विभवकवल...रत्नसिद्धवत् ॥ ६ ॥

स्वकुटुम्बकवृत्त्यभावतः, पितृ-पुत्रावनुवासरं हलम् । प्रतिवाहयतो बहिःस्थितौ, किमु कुर्यादथवा न दुर्विधः ? ॥७॥

जठरापरिपूरणे पुमानतिमान्यां मुक्त्वा मनस्विताम् । अवधूय मनःप्रियां ह्रियं, परिहृत्य स्वकुलव्यवस्थिताम् ॥ ८ ॥

कुरुते कुनरेन्द्रसेवनं, तनुते नीचजनेऽपि संस्तुतिम् । प्रथयत्यहितेऽपि मित्रतां, त्यजति स्वाचरणं सतां मतम् ॥ ९ ॥

तदमू अपि दौस्थ्यतो जिनं, प्रतिपन्नो कुरुतो हलिक्रियाम् । अथ तत्र कथञ्चिदप्यसौ, तनयः प्राप परासुतामहेः ॥ १० ॥

जनकोऽपि विबुध्य तं मृतं, जिनवाक्यामृतसुत्थमानसः ।
हलबाह्यभुवो बहिः सुतं, शुभचित्तोऽक्षिपदुच्चकैः स्वयम् ॥ ११ ॥
सुमना उपचक्रमे हलं, खलवे खेटयितुं तथैव सः ।
अथ तेन पथाऽस्य सीहकः, स्वजनः प्राप कुतोऽपि चाग्रतः ॥ १२ ॥

अवलोक्य तमेवमुज्झितं, तनयं सीमनि तस्य तादृशम् । तमपि प्रयतं निजे हले, जनकंतस्य तथा विशोककम् ॥ १३ ॥

तदनु स्वजनः सविस्मयस्तमपृच्छत् सुतमृत्युकारणम् ।
स्वजनाय यथाऽभवत् तदा, सकलं सोऽचकथत् तथैव तत् ॥ १४ ॥
अथ तादृगलौकिकं वचः, स निशम्य प्रजगाद सुन्दरम् ।
यदमुं सुतमित्थमत्यजस्तत् तव सुन्दर ! सुन्दरं नु किम् ? ॥ १५ ॥
अथ तस्य निशम्य तद् वचः, प्रतिबोधाय जगाद सुन्दरः ।
मयका किमसुन्दरं कृतं, यदयं भद्र ! परासुरुज्झितः ? ॥ १६ ॥
अपरोऽपि च किं मृते करोत्वतिरिक्तेऽपि च रोदनाद् ऋते ।
तदपि क्रियमाणमङ्गिनां, नितरां स्वार्थहरं विचिन्त्यताम् ॥ १७ ॥
अपरं च निशम्यतामिदं, प्रगटेऽमुष्य यमस्य वर्त्मनि ।
निजकर्मभटैर्गलस्तितो, बत ! कोऽप्येति निरेति कश्चन ॥ १८ ॥
यदपि प्रथितं मृते जने, मिलिते क्वापि च रुद्यते जनैः ।
अवगच्छ स काकरोलकः, क्रियते तैः पतिते कलेवरे ॥ १९ ॥
तदयं सुकृतेन कर्मणा, समियाय स्वयमेव मद्गृहे । ?
स्वयमेव पुनर्गतः क्वचित्, तदहो ! किं परिदेवितेन नः ? ॥ २० ॥

अपरं च ममामुनाऽऽगतं, कथितं नो निजमायता तथा ।
गमनं च (न) गच्छता ततो, निरपेक्षस्य सतोऽस्य कीदृशः ॥ २१ ॥
उपरि क्रियते निबन्धनः ? प्रतिबन्धोऽपि च ? भद्र ! कथ्यताम् ।
इह यो किल मन्यते परं, स जनेनापि च मन्यते स्फुटम् ॥ २२ ॥
अथ वक्षि बलीयसी स्थितिर्ननु लोकस्य न लङ्घते क्वचित् ।
तव सत्यमिदं वचः परं, मरणे साऽपि निरर्थकोदिता ॥ २३ ॥
उचिता पुनरस्ति जीवतः, परमेषाऽपि मया न पारिता ।
प्रविधातुममुष्य यन्मृतो, विषवेगोत्कटतावशाद् द्रुतम् ॥ २४ ॥
कियतामिति भद्र ! खिद्यतां, स्वजनानां भवतां कृते वृथा ? ।
भविनो निजकर्मवश्यतावशिनः स्वर्गगमा भवन्त्यमी ॥ २५ ॥
तदलं बहुभाषितेन नो, यदतीतं भुवि तन्न शोचयेत् ।
सुतमृत्युममुं निवेदयेर्मम वेश्मनि निजकः स शिक्षितः ॥ २६ ॥

अथ तेन निशम्य तद्वचो, विदितं तावदयं सुनिष्ठुरः । सुतमातृ-कलत्रयाः पुनश्चरितं कीदृगिदं न वेद्म्यहम् ॥२७॥

इति कौतुकपूर्णमानसः, प्रथमं वेश्मनि तस्य सोऽविशत् ।
विहितोचितसत्क्रियः क्षणं, सविषादं निजगाद मातरम् ॥ २८ ॥
अयि धर्मनिधे ! मनोरमे ! किमपि त्वं शृणु वाक्यमप्रियम् ।
कथयेति निवेदिते तया, भणितं तेन तवाङ्गजो मृतः ॥ २९ ॥
कथमित्यविषादमाह सा, भणितं तेन महाहिना क्षितः ।
अथ सा न्यगदत् सहायकः, सदनुष्ठानविधौ स नोऽ[1]भवत् ॥ ३० ॥
परमत्र विधौ विधीयते, किल किं सीहक ! ? सा तमब्रवीत् ।
यदशक्यनिवारणो यमो, जिनराजैर्निरदेशि शासने ॥ ३१ ॥

तथा हि-

न गजैर्न हयैर्न पत्तिभिर्न रथैर्नैव नयैर्न विक्रमैः । न धनैश्चिरसञ्चितैर्घनैर्न च मन्त्रैरपि वार्यते यमः ॥ ३२ ॥

हलभृद्धरि-चक्रवर्तिनः, सुगत-ब्रह्म-पुरन्दरादयः । भुवनत्रयनायका जिना, विधिना धिग् ! निहता हहाऽमुना ॥३३॥

पुनरप्यवदत् स बान्धवो, जठरे सुन्दरि ! स त्वया धृतः । प्रणयेन च पालितस्तरां, सरसाहारवशाच्च लालितः ॥३४॥

तदियं किमलौकिकी तव, प्रथिता निर्वरता सुते निजे ? । तदनु प्रियवाग् मनोरमा, सदयं सीहकमाह सन्मतिः ॥३५॥

यदि पालन-कुक्षिधारणं, स्वजनस्नेहनिमित्तमुच्यते । विहितं च परस्परं तकद्, भविभिः सन्तु समेऽप्यमी निजाः ॥३६॥

शृणु सीहक ! शासनस्थितिं, भवकान्तारमनन्तमृच्छतः । समभूत प्रतिदेहिनं यतः, स्वकभावो बहुधाऽपि देहिनः ॥३७॥

तदयं भविको विवेकवान्, वद केन प्रतिबन्धमृच्छतु ? । समभावतयैव वर्तनं, मुनिवत् सङ्गतमङ्गिनां ततः ॥३८॥

---

१. नः अस्माकम् ।

इति संसरतां तनूमतां, स्वजनः को वद ? कोऽथवा परः ? । इति युक्तिवचोभिरीदृशैर्निजके मौनमुपेयुषि क्षणम् ॥३९॥

भणिता च सुतप्रियाऽनया, तवभर्ता कथितोऽमुना मृतः ।
तदशक्यनिराकृतौ विधौ, क्रियते किं ? कुरु मानसीं धृतिम् ॥ ४० ॥

अधुना तु गृहीतभोजना, चलिता श्वसुर-वराय यद्यपि । श्वसुरस्य कृतेऽशनं नयेरिदमास्तां पतिभक्तभाजनम् ॥४१॥

विहिते च तया तथैव तां, निजगादाऽथ निजः सुतप्रियाम् ।
पतिमद्य न शोचसेऽङ्ग ! किं, चलिताऽन्यत्र शुचः पदेऽपि यत् ॥ ४२ ॥

जगदेऽथ तया पतिं विदुर्जिनधर्मं सुगुरुं जिनेश्वरम् । अपरे पुनरात्मपोषकाः, पतयस्तात ! भवे भवेऽभवन् ॥४३॥

यदि वेद्मि शुचोऽपि सत्फलं, तदहं रोदिमि वच्मि विक्लवम् ।
उपहन्मि वपुः पतिं स्तुवे, नितरामद्मि न भक्तमप्यदः ॥ ४४ ॥

विहितेऽपि यदैवमस्ति न, प्रकृतं किञ्चिदपि प्रयोजनम् । प्रथयेच्छुगियं कृता तदा, बत ! कर्तुर्ध्रुवमज्ञतामलम् ॥४५॥

यदि शोककृदानयेन्मृतं, म्रियमाणं विनिवर्तयेज्जनम् । विदधातु शुचं न चेदिदं, द्वितयं किं कृतयाऽनया वृथा ? ॥४६॥

कुपितैः किल कुट्यते यकद्, विपदि स्वेन निजं शरीरकम् ।
बत ! सम्प्रति तेन नृत्यते, प्रकटाङ्गं किल का विदग्धता ? ॥ ४७ ॥

कुधियः कचिदर्तिसङ्गताः, किल कुर्युः शुचमङ्गकैर्यकैः ।
विलसन्ति तदेव तैरमी, मनुजानां धिगिमां विडम्बनाम् ॥ ४८ ॥

चरणैरिह शोकतो यकैर्विलिखद्भिर्भुवमङ्ग शोचितम् । मुदितैरिह गम्यते तकै विलसद्भिर्भुवि हंसलीलया ॥४९॥

गुरुशोकवशेन ताड्यते, हृदयं यत् स्वकरैः सुनिर्दयम् । तदपि प्रियहारयष्टिभिः प्रमदेऽलङ्क्रियते विचेतनैः ॥५०॥

शुचि निर्भरमुक्तपूतकृतिव्यथितैर्येन मुखेन रुद्यते । गुरुपर्वणि तेन गीयते, किल कीदृश्यपरा विडम्बना ? ॥५१॥

नयनैर्गलदश्रुकं जनः, शुशुचे यैरिह तैरपत्रपः । सकटाक्षमपाङ्गसञ्चरन्नयनत्र्यंशमयं निरीक्षते ॥ ५२ ॥

इति बहुविधमूढलोकजं, कियदसमञ्जसमत्र कथ्यते ? जिनवाक्यविशुद्धचेतसां, पुनरेवंकरणं न सङ्गतम् ॥५३॥

तदिदं गुणवत्तया प्रियं, प्रथितं भव्यकुटुम्बकं जने । इह मोहजयाद् बृहत्सुखं, परलोकेऽपि च सद्गतिं गतम् ॥५४॥

प्रशमय्य मनो विवेकतस्तदनेनैव कुवासनामयम् । गृह-पुत्र-कलत्र-सम्पदां, प्रलयेऽप्यङ्ग ! न शोच्यमङ्गिभिः ॥५५॥

॥ इति भव्यकुटुम्बाख्यानकं समाप्तम् ॥ १२२ ॥

यद्वद् बभूव भुवि भव्यकुटुम्बकस्य, सर्वज्ञशासनवचोऽमृतभावितस्य ।
बन्धवशोककरणं महते गुणाय, तद्वद् भवेत् तदितरेष्वपि मानवेषु ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे जिन (शासन) भावितमतिषु शोकाकरणप्रतिपादनपरश्चत्वारिंशोऽधिकारः समाप्त इति ॥ ४० ॥

• • •

[४१. विवेकिजनस्वकृतकर्मोदयोपतनदुःखाधिसहनाधिकारः]

अनन्तरं शोककरणमनर्थकमभिहितम् । अधुना तु न केवलमिदमनर्थकम्, किं तर्हि ? शारीरमानसदुःखरुपमप्येतत्, तच्च विवेकिनः स्वकृतफलमिदम् इति मन्वानाः सम्यक् सहन्त इत्येतद्वक्तुकाम आह-

सम्मं सहंति धीरा कम्मवसेणं समागयं दुक्खं ।
पासजिण-वीर-गयमुणि-मेयज्जसणंकुमार व्व ॥ ५२ ॥

अस्या व्याख्या-'सम्यग्' भावसारं 'सहन्ते' तितिक्षन्ते 'धीराः' सात्त्विकाः 'कर्मवशेन' स्वकृतानुभावेन 'समागतं' समायातं 'दुःखम् अशर्म । दृष्टान्तानाह-पार्श्वजिनश्च-प्रसिद्धः वीरश्च-महावीरः गजमुनिश्च-गजसुकुमारः मेतार्यश्च-श्रेणिकराजजामाता सनत्कुमारश्च-चतुर्थचक्रवर्ती ते तथोक्ताः, तद्वदित्यक्षरार्थः ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्रापि क्रमप्राप्तं किञ्चित्-पार्श्वाख्यानकमभिधीयते । तच्वेदम्-

गुणालए भारहमज्झखंडे, चक्काहिवोसारियदुट्ठदंडे । कासी जणो जत्थ वि धम्मं, करेइ वा जीवदयाइ रम्मं ॥ १ ॥

कासीइ देसो सगुणेहिं सग्गो, जम्मी सिरीमंदिरमंगिवग्गो ।
वाणारसी तत्थ पुरी पसिद्धा, सुत्थत्तयाईहिं सया समिद्धा ॥ २ ॥
तत्थाऽऽसि राया सिरिआससेणो, सुवेग-दप्पुद्धुरआससेणो ।
तस्साऽऽसि वम्मा निवपट्टदेवी, जीए न दोसा विलसंति केवी ॥ ३ ॥

पार्श्वाख्यानकम् ॥ १२३ ॥

गुणालये भारतमध्यखण्डे चक्राधिपापसारितदुष्टदण्डे । काशी जनः सदापि धर्मं करोति वा जीवदयादि रम्यम् ॥ १ ॥

काशीदेशः स्वगुणैः स्वर्गो यस्मिन् श्रीमन्दिरमङ्गीवर्गः । वाणारसी तत्र पुरी प्रसिद्धा सुस्थत्वादिभिः सदा समृद्धा ॥ २ ॥

तत्रासीद्राजा श्रीअश्वसेनः सुवेग-दर्पोद्धुराश्वसेनः । तस्यासीद्वामा नृपपट्टदेवी यस्यां न दोषा विलसन्ति केऽपि ॥ ३ ॥

सुहाइं तीए सह भुंजमाणो, पालेइ रज्जं असमाहिमाणो । कयाइ वम्मा सुहसेज्जसुत्ता, खेयाइदोसेहिं दढं विउत्ता ॥४॥
निएइ निद्दावसवत्तिनाणे, गयाइए चोद्दस पुन्नठाणे । गंतूण वम्मा मणुइंदपासे, पयासई पावमलप्पणासे ॥ ५ ॥
तेणावि वुत्तं तुह पुत्तलाभो, होही पिए ! पंकयनिम्मलाभो ।
एमेव होज्जा मणजायतुट्ठी, वत्थंचले बंधइ सउणगंठी ॥ ६ ॥
कालेण देवी सिरिवम्ममाया, सुयं अरोया अरुयं पयाया ।
कओ सुरिंदेहिं जिणाभिसेओ, सुरायले सन्नयदिन्नसेओ ॥ ७ ॥
माऊए सप्पाणुभवाणुरूवं, समंतओ भग्गभवंधकूवं । पासो त्ति पुत्तस्स जयप्पसत्थं, निवेण नामं विहियं जहत्थं ॥८॥
कलाकलावे निउणो कुमारो, रूवेण ओहामियदेव-मारो ।
पत्तो वयंसेहिं समं भमंतो, जत्थऽच्छई कट्ठतवं तवंतो ॥ ९ ॥
कढाभिहाणो समणोतवस्सी, दिट्ठिप्पहे दिन्नसहस्सरस्सी ।
अव्वत्तयं किंचि मणे सरंतो, पंचग्गितावं तवमायरंतो ॥ १० ॥
तो तेण नाऊण कुमारएणं, वुत्तो किमेएणमसारएणं ।
अन्नाणकट्ठेण महाणुभावा ? कुद्धो निसामेउमिमं कुभावा ॥११॥
पयासिओ कोडिय कट्ठखोडिं, सप्पो गओ सो वि हु कोवकोडिं ।
पासो वि सप्पं तयमद्धदड्ढं, काउं नमोकारगुणेण सुद्धं ॥ १२ ॥
गओ गिहं सो वि मओ तयाऽही, जाओ अहीसो स महासमाही ।
पासो वि गेहिम्मि कुमारभावे, सुणेइ कइया वि हु गीयरावे ॥ १३ ॥

सुखानि तया सह भुञ्जन् पालयति राज्यमसमाभिमान: । कदाचिद्वामा सुखशय्यासुप्ता खेदादिदौषै र्दढं वियुक्ता ॥ ४ ॥
पश्यति निद्रावशवर्त्तिज्ञाने गजादिकांश्चतुर्दश पुण्यस्थानान् । गत्वा वामा मनुष्येन्द्रपार्श्वे प्रकाशते पापमलप्रणाशान् ॥५॥
तेनाप्युक्तं तव पुत्रलाभो भविष्यति प्रिये ! पङ्कजनिर्मलाभ: ।
एवमेव भवेन्मनोजाततुष्टी वस्त्राञ्चले बध्नाति शकुनग्रन्थिम् ॥ ६ ॥
कालेन देवी श्रीवामामाता सुतमरुजाऽरुजं प्रजाता । कृत: सुरेन्द्रै र्जिनाभिषेक: सुराचले सन्नयदत्तश्रेय: ॥ ७ ॥
मात्रा सर्पानुभावानुरुपं समंततो भग्नभवान्धकूपम् । पार्श्व इति पुत्रस्य जगत्प्रशस्तं नृपेण नाम विहितं यथार्थम् ॥ ८ ॥
कलाकलापे निपूण: कुमारो रुपेणावनामितदेवमार: । प्राप्तो वयस्यै: समं भ्रमन् यत्रास्ते कष्टतपस्तप्यन् ॥ ९ ॥
कठाभिधान: श्रमणस्तपस्वी दृष्टिपथे दत्तसहस्त्ररश्मि: । अव्यक्तं किञ्चिन्मनसि स्मरन् पञ्चाग्नितापं तप आचरन् ॥१०॥
तदा तेन ज्ञात्वा कुमारकणोक्त: किमेतेनासारकेण । अज्ञानकष्टेन महानुभावा: ? क्रुद्धो निशम्येदं कुभावात् ॥ ११ ॥
प्रकाशित: स्फोटित्वा काष्टखोडिं सर्पो गत: सोऽपि हु कोपकोटिम् ।
पार्श्वोऽपि सर्पं तकमर्धदग्धं कृत्वा नमस्कारगुणेन शुद्धम् ॥ १२ ॥
गतो गृहं सोऽपि मृतस्तदाहि र्जातोऽहीश: स महासमाधि: । पार्श्वोऽपि गृहे कुमारभावे शृणोति कदापि खलुगीतरावान् ॥१३॥

कयाइ कारावइ नट्टकम्मं, कयाइ आयन्नइ सुद्धधम्मं। कयावि कीलावइ हत्थिराए, हए वि वाहेइ समुच्चकाए ॥१४॥
कमेण लायन्नगुणेण पुन्नं, पत्तो जुवत्तं रमणीयवन्नं। तओ य रन्ना सुकुमारियाओ, विवाहिओ रायकुमारियाओ ॥१५॥
पंचप्पयारे रमणीयभोए, सुरो व्व सो भुंजइ चत्तसोए। एतो य लोयंतियनामएहिं, विबोहिओ जीयनिवेयएहिं ॥१६॥
देवेहिं दाऊण सुवन्नदाणं, किमिच्छयं सव्वजणेऽनियाणं। संवच्छरं जाव अदुट्ठभावं, दारिद्दसंतत्तविलुत्ततावं ॥१७॥

मोत्तूण सव्वं पि हु रज्जसारं, पव्वज्जई संजमरूवभारं।
कढो मरेऊण पभूयपावो, नियाणदोसेण किलिट्ठभावो ॥ १८ ॥
कोहग्गिणा सव्वपलित्तकाओ, आउक्खए अग्गिसुरेसु जाओ।
पासित्तु पासं कायकाउसग्गं, झाणट्ठियं निज्जियमोहवग्गं ॥ १९ ॥

समागओ जाणियपुव्ववेरो, खोभेउकामो परिचत्तमेरो। जिणोवरिं धारियकूरचित्तो, फुरंतकोवाहियरत्तनेत्तो ॥२०॥

विउव्विया तेण तओ पिसाया, दुहावहोदीरियदुट्ठवाया।
जम व्व जीयंतकरा कराला, मुहेण निज्जंतदवग्गिजाला ॥ २१ ॥
निसायविप्फारियकत्तियाला, सभावओ भीसण-साममाला।
घण व्व भिंगिंजणकालकाया, विज्जुच्छडाभासुरमुत्तिभाया ॥ २२ ॥

लल्लक्कहक्का भय-भेरवेहि, अट्टट्टहासुग्गमहारवेहिं। निक्कंपझाणाउ धिईसणाहो, न खोहिओ तेहिं वि पासनाहो ॥२३॥

पुणो वि आपिंगलकेसखंधा, पयंडदाढाहियभीइचिंधा।
ससंभमावेसवसा दुलंघा, विउव्विया भीसणसिंहसंघा ॥ २४ ॥

कदाचित्कारयति नाट्यकर्म, कदाचिदाकर्णयति शुद्धधर्मम्।
कदाचित्क्रीडयति हस्तिराजं हयानपि वाहयति समुच्चकान् ॥ १४ ॥
क्रमेण लावण्यगुणेन पूर्णं प्राप्तो युवत्वं रमणीयवर्णम्। ततश्च राज्ञा सुकुमारिका विवाहिता राजकुमारिकाः ॥ १५ ॥
पञ्चप्रकारान् रमणीयभोगान् सुर इव स भुनक्ति त्यक्तशोकान्। इतश्च लोकान्तिकनामकै विबोधितो जीतनिवेदकैः ॥१६॥
देवैर्दत्वा सुवर्णदानं किमिच्छितं सर्वजनेऽनिदानम्। संवत्सरं यावददुष्टभावं, दारिद्रसंतप्तविलुप्ततापम् ॥ १७ ॥
मुक्त्वा सर्वमपि हु राज्यसारं प्रव्रजति संयमरुपभारम्। कठो मृत्वा प्रभूतपापो निदानदोषेण क्लिष्टभावः ॥ १८ ॥
क्रोधाग्निना सर्वप्रदीप्तकाय आयुःक्षयेऽग्निसुरेषु जातः। दृष्ट्वा पार्श्वं कृतकायोत्सर्गं ध्यानस्थितं निर्जितमोहवर्गम् ॥ १९ ॥
समागतो ज्ञातपूर्ववैरः क्षोभयितुकामः परित्यक्तमर्यादः। जिनोपरि धारितक्रूरचित्तः स्फुरत्कोपाहितरक्तनेत्रः ॥ २० ॥
विकुर्वितास्तेन ततः पिशाचा दुःखावहोदिरितदुष्टवादाः। यम इव जीवान्तकराः कराला मुखेन निर्यद्दवाग्निज्वालाः ॥२१॥
निषादविस्फारितकर्त्रिकालाः स्वभावाद्भीषण-श्याममालाः। घन इव भृङ्गाञ्जनकालकाया विद्युच्छटाभासुरमूर्त्तिभागाः ॥२२॥
भयानकपूत्कारभय-भैरवैरट्टट्टहास्योद्गमहारवैः। निष्कम्पध्यानाद्धृतिसनाथो न क्षोभितस्तैरपि पार्श्वनाथः ॥ २३ ॥
पुनरप्यापिङ्गलकेशस्कन्धाः प्रचण्डदंष्ट्राहितभीतिचिह्नाः। ससम्भ्रमावेशवशाद् दुर्लङ्घ्या विकुर्विता भीषणसिंहसङ्घाः ॥२४॥

विरूवरूवेहिं तहाऽवरेहिं, वग्धाइएहिं पि भयंकरेहिं ।
न खोहिओ जाव जिणो सयाओ, मेरुव्व झाणाओ सुहासयाओ ॥ २५ ॥

तओ तहिं वित्थरिएहिं देवप्पभावओ सव्वमकंड एव । विज्झायदीवं व गिहं घणेहिं, अंधारियं वोमतलं घणेहिं ।२६।
कढंबुओ सज्जियसक्कचावो, धारासरो वासइ रुद्दरावो । पासं जिणंगंपि मणम्मि कूरे, नासावहिं नीरमरेण पूरे ॥२७॥
दिट्ठं जिणे निच्चलझाणसूरे, मुहं सुनेत्तं गुरुनीरपूरे । पंकरुहं वऽद्धनिमग्गमेव, सुमुद्धफुल्लंधुयजुम्मसेवं ॥ २८ ॥

जहा जहा मुंचइ वारि देवो, तहा तहा पासजिणो अलेवो ।
काऊण सज्झाणगयं पयत्तं अलोइयं झायइ किं पि तत्तं ॥ २९ ॥

तं वारिनिम्मायममाइयस्स, सम्मं सहंतस्स दुहं जिणस्स । पयासियासेसपयत्थमाणं, जायं सुहं केवलरूवनाणं ॥३०॥

एवं कढे नीरभरं मुयंते, झाणंबुणा कम्ममलं धुवंते ।
जिणे गिरिंदे व्व सुनिप्पकंपे, अहो ! अहीसासणमाचकंपे ॥ ३१ ॥
नाऊणमोहीए जिणोवसग्गं, आगम्म सिग्धं कढमत्थभंगं ।
निब्भच्छिउं वंदइ नायराओ[१], जिणेसरं जायगुणाणुराओ ॥ ३२ ॥

काउं सरीरं सफणायवत्तं, सिंहासणं सूरकरायवत्तं । निवेसिउं तम्मि जिणिंदपासं, थोउं पवत्तो गयनेहपासं ॥३३॥
कढेण तं पास ! कत्थिओ वि, तम्मि सुहोऽहेसि अपत्थिओ वि ।
विणिच्छिउं ने अहवा वि देव !, समीहियं लब्भइ किं मुहेव ? ॥ ३४ ॥

विरुपरुपैस्तथाऽपरै र्व्याघ्रादिकैरपि भयङ्करैः । न क्षोभितो यावज्जिनः स्वतो मेरुरिव ध्यानात्सुखाशयात् ॥ २५ ॥
ततस्तत्र वितृतै र्देवप्रभावात् सर्वमकाण्ड एव । विध्यातदीपमिव गृहं घनैरन्धकारितं व्योमतलं घनैः ॥ २६ ॥
कठम्बुदः सर्जितशक्रचापो धारासरो वर्षति रौद्रारावः । पार्श्वं जिनाङ्गमपि मनसि क्रूरे नासावधि नीरभरेण पूरेण ॥ २७ ॥
दृष्टं जिने निश्चलध्यानसूर्ये मुखं सुनेत्रं गुरुनीरपूरे । पङ्केरुहमिवार्धनिमग्नमेव सुमुग्धफुल्लन्धययुग्मसेवम् ॥ २८ ॥
यथा यथा मुञ्चति वारि देवस्तथा तथा पार्श्वजिनोऽलेपः ।
कृत्वा सद्ध्यानगतं प्रयत्नमलौकिकं ध्यायति किमपि तत्त्वम् ॥ २९ ॥
तं वारिनिर्मातादिकस्य सम्यक् सहमानस्य दुःखं जिनस्य । प्रकाशिताशेषपदार्थमानं जातं शुभं केवलरुपज्ञानम् ॥ ३० ॥
एवं कठे नीरभरं मुञ्चति ध्यानाम्बुना कर्ममलं धुन्वति । जिने गिरीन्द्र इव सुनिष्कम्पेऽहो ! अहिशासनमाचकम्पे ॥ ३१ ॥
ज्ञात्वावधिना जिनोपसर्गमागत्य शीघ्रं कठमर्थभङ्गम् । निर्भर्त्स्य वन्दते नागराजो जिनेश्वरं जातगुणानुरागः ॥ ३२ ॥
कृत्वा शरीरं सफणातपत्रं सिंहासनं सुरकरातपत्रम् । निवेश्य तस्मिञ्जिनेन्द्रपार्श्वं स्तोतुं प्रवृत्तो गतस्नेहपाशम् ॥ ३३ ॥
कठेन त्वं पार्श्व ! कदर्थितोऽपि तस्मिन् सुखोऽस्यप्रार्थितोऽपि ।
विनिश्चित्य ने[२] अथवापि देव ! समीहितं लभ्यते किं मुधैव ? ॥ ३४ ॥

---

१. नागराजः । २. अव्ययः ।

अणंतरं ओसरणाइकिच्चं, करेंसु सक्काइसुरा हु निच्चं ।

एवं जिए बोहिय धम्ममग्गे, खवित्तु कम्माणि गओऽपवग्गे ॥ ३५ ॥

कल्लाणयं मंगलकारयं च, अणिट्ठदंदोलिनिवारयं च ।

पासस्स वित्तं विउसेहिं धेयं, विसेसओ तच्चरियाओ नेयं ॥ ३६ ॥

॥ पार्श्वाख्यानकं समाप्तम् ॥ १२३ ॥

इदानीं वीराख्यानकमाख्यायते, तच्च सम्यग्दुःखाधिसहनार्थमेव समवगन्तव्यम् ॥ तद्यथा-

संयमभरग्रहणाङ्गीकारप्रस्तावे मिलितसमस्तचतुर्विधदेवनिकायसचिवसौधर्माधिपतिप्रमुख-सुरेश्वरसमुदायं नन्दिवर्धनराजप्रभृति-स्वजनसमाजं मन्त्रि-सामन्त-पुरगोपुरप्रकारांश्चाऽऽपृच्छय विहाराय प्रस्थितेन कुर्मारग्रामबहिरुद्यानप्रतिपन्नकार्योत्सर्गेण (यथा) प्रथमप्रारब्धगोपालोपसर्गरूपम्, तदनन्तरं दिव्यादि चतुर्विधोपसर्गसम्पातप्रस्तावे जधन्योपसर्गमध्ये उत्कृप्टं कटपूतनाजनितसतुहिनपवनमिश्रं जल-शीकरशीतरूपम्, मध्यमोपसर्गमध्ये तूत्कृष्टं प्रकुपितसुराधमसङ्गमकमुक्तकालचक्रसम्पातजनितवेदनाविषहन-रूपम्, उत्कृष्टोपसर्गमध्ये चोत्कृप्टं छम्माणीनामकग्रामवास्तव्यसिद्धार्थवणिग्गृहोपविष्टवैद्यशिरोमणिखरकामि-धानवणिमित्रदृष्टजिनागमाभिहितविधानभिक्षासमयसिद्धार्थगृहप्रविष्टसमस्तलक्षणसमन्वितश्रीमन्महावीर-तनूपदिष्टसरोगताश्रवणसञ्जातातिदुःसहमानसकष्टसिद्धार्थवचनप्रोत्साहितखरकवैद्य-सम्यगन्विष्टसमुपलब्ध-छिन्नमूलकर्णगता-निष्टकीलकाकर्षणसमयसमुद्भूतमहावेदनाविसहनरूपम्, तदनन्तरं च समुत्पन्नदिव्यामल-केवलावलोकावलोकितलोकाऽलोकेनापि प्रोत्सर्पत्प्रौढबहुमानपुरस्सर-भक्तिभरावनम्रभवनपत्यादि-त्रिदश-समन्वितशक्रादिसुरेश्वरविरचिताष्टमहाप्रातिहार्यरूपपूजोपचारकलितरमणीयप्राकारत्रयसमलङ्कृत-समवसरणमध्यव्यवस्थित-स्वर्णमणिखचितविचित्रदिव्यसिंहासनावस्थितेनापि स्फुरन्महाप्रभावसङ्ख्यातीत-देवकोटीकलितेनापि नानाविधलब्धिधुनीशतसन्निपातमहाजलधिकल्पगौतममुनिप्रमुखश्रीश्रमणसङ्घपरिवृतेनापि गोशालकविमुक्ततेजोलेश्यापरितापनारूपम्, अपरं च स्वकृतावश्यवेद्यावद्यवेदनीयवेदनऽऽविर्भूतदौर्बल्या-ऽरोचक-रुधिरातिसारसमन्वि-तदाघज्वरसमुत्थवेदनानुभवरूपं दुःखं सम्यगधिषोढम्, तथा तदीयबृहच्चरिता-दवसेयम् ॥

॥ इति संक्षेपतो वीराख्यानकंसमाप्तम् ॥ १२४ ॥

अनन्तरं समवसरणादिकार्यं कुर्वन्ति शक्रादिसुरा हु नित्यम् ।

एवं जीवान् बोधयित्वा धर्ममार्गे क्षपित्वा कर्माणि गतोऽपवर्गे ॥ ३५ ॥

कल्याणकं मङ्गलकारकं चानिष्टदन्दोलिनिवारकं च । पार्श्वस्य वृत्तं विद्वद्भि र्धेयं विशेषतस्तच्चरित्राज्ज्ञेयम् ॥ ३६ ॥

॥ पार्श्वाख्यानकं समाप्तम् ॥ १२३ ॥

साम्प्रतं गजमुन्याख्याकमाख्यायते तच्चेदम्-

गंगेयनिम्मियावासमणहराए धणयविहियाए । बारवईए नयरीए नरवई वासुदेवो त्ति ॥ १ ॥

नामेण देवई से जणणी भवणम्मि अन्नया तीए । पारणयदिणे छट्टस्स साहुसंघाडया तिन्नि ॥ २ ॥

जुगमेत्तनिहियनयणा अंतरिया थोवथोववेलाए । समरूवा संपत्ता सप्पणयं पणमिया तीए ॥ ३ ॥

पडिलाभिया य ते सिंहकेसरप्पवरमोयगेहिं तओ । अह तेसि तइयसंघाडगो इमं पुच्छिओ तीए ॥ ४ ॥

भयवं ! किं मइमोहो मह ? किं दिसिविब्भमो इमो तुम्ह ? । अह सग्गसमाए वि हु पुरीए न हु लब्भए भिक्खा ? ॥५॥

जं इह पुणो पुणो वि य समागया तयणु भणइ जेट्ठमुणी । नो मइमोहो तुम्हाण साविए ! अत्थि मणयं पि ॥६॥

नो वा दिसिब्भमो अम्ह न वि य भिक्खा न लब्भए एत्थं । परमत्थि कारणं तं पि तुम्हमक्खिज्जए इण्हिं ॥७॥

भद्दिलपुरम्मि नागस्स सेट्ठिणो सुलसभारियाए सुया । छ च्चेव वयं सिरिनेमिचरणमूलम्मि पव्वइया ॥ ८ ॥

ते एत्थ परियडंता कुलेसु उच्चावएसु सव्वे वि । तुह मंदिरम्मि पत्ता समाणरूव त्ति संदेहो ॥ ९ ॥

इय जंपिऊण मुणिणो विणिग्गया देवई वि चिंतेइ । हरिणो समाणरूवा जइणो सव्वे वि पेच्छ इमे ॥ १० ॥

पुव्विं पयंपियं आसि मज्झ नेमित्तएण अट्ठण्हं । जीवंताणं पुत्ताण होसि जणणी तुमं देवि ! ॥ ११ ॥

ता एए वि हु मन्ने मह पुत्ता जं सिणिज्झए हिययं । इय चिंतिऊण दिवसे दुइज्जए जाणमारूढा ॥ १२ ॥

पत्ता य समवसरणे जिणेसरं पणमिउं समुवविट्ठा । पहुणा वि हु तब्भावं साहेउं सा इमं भणिया ॥ १३ ॥

गजमुन्याख्यानकम् ॥ १२५ ॥

गाङ्गेयनिर्मितावासमनोहरायामपि धनदविहितायाम् । द्वारावत्यां नगर्यां नरपति र्वासुदेव इति ॥ १ ॥

नाम्ना देवकी तस्य जननी भवनेऽन्यदा तस्याः । पारणकदिने षष्टस्य साधुसङ्घाटकास्त्रयः ॥ २ ॥

युगमात्रनिहितनयना अन्तरिताः स्तोकस्तोकवेलायाम् । समरुपाः सम्प्राप्ताः सप्रणयं प्रणतास्तया ॥ ३ ॥

प्रतिलाभिताश्च ते सिंहकेसरप्रवरमोदकैस्ततः । अथ तेषां तृतीयसङ्घाटक इमं पृष्टस्तया ॥ ४ ॥

भगवन् ! किं मतिमोहो मम ? किं दिग्विभ्रमोऽयं युवाम् ? । अथ स्वर्गसमायामपि हु पुर्यां न खलु लभ्यते भिक्षा ? ॥५॥

यदिह पुनः पुनरपि च समागतास्तदनु भणति ज्येष्ठमुनिः । नो मतिमोहो युष्माकं श्राविके ! अस्ति मनागपि ॥ ६ ॥

नो वा दिग्विभ्रमोऽस्माकं नापि च भिक्षा न लभ्यतेऽत्र । परमस्ति कारणं तदपि तवाख्यायते इदानीम् ॥ ७ ॥

भद्रिलपुरे नागस्य श्रेष्ठिनो सुलसाभार्यायाः सुताः । षट् चैव वयं श्रीनेमिचरणमूले प्रव्रजिताः ॥ ८ ॥

तेऽत्र पर्यटन्तः कुलेषूच्चावचेषु सर्वेऽपि । तव मन्दिरे प्राप्ताः समानरुपा इति सन्देहः ॥ ९ ॥

इति जल्पित्वा मुनी विनिर्गतौ देवक्यपि चिन्तयति । हरिणः समानरुपा यतयः सर्वेऽपि पश्येमे ॥ १० ॥

पूर्वं प्रजल्पितमासीन्मम नैमित्तिकेनाष्टानाम् । जीवतां पुत्राणां भवसि जननी त्वं देवि ! ॥ ११ ॥

तत एतेऽपि हु मन्ये मम पुत्रा यत् स्निह्यते हृदयम् । इति चिन्तयित्वा दिवसे द्वितीये यानमारुढा ॥ १२ ॥

प्राप्ता च समवसरणे जिनेश्वरं प्रणम्य समुपविष्टा । प्रभुणापि हु तद्भावं कथयित्वा सेमं भणिता ॥ १३ ॥

देवाणुपिए ! मग्गाणुसारिणी तुह मई समुप्पन्ना । जेणेसा सुयचिंता संवित्ता अवितहा चेव ॥ १४ ॥

तो देवईए दिट्ठा ते मुणिणो जिणवरस्स पासम्मि । पन्हुयपओहराए पणमिय एवं समुल्लविया ॥ १५ ॥

मम कुच्छिसमुब्भूयाण पुत्तया ! तुम्हमेरिसं[1] जुत्तं । गुरुरज्जसिरी सज्जा अणवज्जा अहव पव्वज्जा ॥ १६ ॥

नवरं दूमइ हिययं जं सच्चवियं न तुम्हमेगं पि । सुहबालविलसियं मंदमम्मणुल्लावरमणीयं ॥ १७ ॥

तो जगगुरुणा भणिया जम्मन्तरकम्मविलसियं तुज्झ । जम्हा सवक्किरयणाणि सत्त तुमएऽवहरियाणि ॥ १८ ॥

विलवंतीए तीए पुणो वि करुणाए अप्पियं एक्कं । तस्स फलेणं जाओ पुत्तेहि समं तुह विओगो ॥ १९ ॥

इय सोउं तीए पुणो पुणो वि दुच्चरियगरहणा विहिया । वंदिय नेमिजिणिंदं संपत्ता नियपासाए ॥ २० ॥

जणणीकमनमणत्थं समागओ कण्हनरवई गोसे । तो साममुहं तं पेच्छिऊण पुच्छइ पणयपुव्वं ॥ २१ ॥

किं अंब ! कसिणवयणा ? किं आणाखंडणं कुणइ को वि ? । तो सा जंपइ पुत्तय ! न खंडए कोइ मम आणं ॥ २२ ॥

किंतु मह दुक्खमेयं बहुपुत्तपसविणी वि होऊण । जाया दुहाण ठाणं न बालविलसियसुहाणमहं ॥ २३ ॥

नियउच्छंगे काउं न कारिओ कोइ नियथणपाणं । ऊरूणमुवरि धरिउं न य न्हविओ मंदपुन्नाए ॥ २४ ॥

हीरिज्जंतो खेल्लणयदंसणाडंबरेण डिंभेहिं । रिंखंतो मणिकुट्टिमगिहंगणे न वि य सच्चविओ ॥ २५ ॥

एमेव मम्मणुल्लवमणहरं पहसिरो दसणसुन्नं । आलिंगिऊण गाढं न चुंबिओ वयणकमलम्मि ॥ २६ ॥

देवानुप्रिये ! मार्गानुसारिणी तव मतिः समुत्पन्ना । येनैषा सुतचिन्ता संवृत्ताऽवितथा चैव ॥ १४ ॥

ततो देवक्या दृष्टास्ते मुनयो जिनवरस्य पार्श्वे । प्रश्नुतपयोधरया प्रणम्यैवं समुल्लपिता ॥ १५ ॥

मम कुक्षिसमुद्भूतानां पुत्रकाः ! युष्माकमीदृशं युक्तम् । गुरुराज्यश्रीः सज्जानवद्याथवा प्रव्रज्या ॥ १६ ॥

नवरं दूयते हृदयं यद् दृष्टं न युष्माकमेकमपि । सुखबालविलसितं मन्दमन्मनोल्लापरमणीयम् ॥ १७ ॥

ततो जगद्गुरुणा भणिता जन्मान्तरकर्मविलसितं तव । यस्मात्सपत्नीरत्नानि सप्त त्वयापहृतानि ॥ १८ ॥

विलपन्त्यास्तस्याः पुनः पुनरपि करुणयार्पितमेकम् । तस्य फलेन जातः पुत्रैः समं तव वियोगः ॥ १९ ॥

इति श्रुत्वा तया पुनः पुनरपि दुश्चरित्रगर्हा विहिता । वन्दित्वा नेमिजिनेन्द्रं सम्प्राप्ता निजकप्रासादे ॥ २० ॥

जननीक्रमनमनार्थं समागतः कृष्णनरपतिः प्रत्युषे । ततः श्याममुखां तां दृष्ट्वा पृच्छति प्रणयपूर्वम् ॥ २१ ॥

किमम्ब ! कृष्णवदना ? किमाज्ञाखण्डनं करोति कोऽपि ? । ततः सा जल्पति पुत्रक ! न खण्डयति कोऽपि ममाज्ञाम् ॥ २२ ॥

किन्तु मम दुःखमेतद्बहुपुत्रप्रसविन्यपि भूत्वा । जाता दुःखानां स्थानं न बालविलसितसुखानामहम् ॥ २३ ॥

निजोत्सङ्गे कृत्वा न कारितः कोऽपि निजकस्तनपानम् । ऊरूणामुपरि धृत्वा न च स्नापितो मन्दपुण्यया ॥ २४ ॥

ह्रियमाणाः क्रीडनकदर्शनाडम्बरेण डिम्भैः । रिङ्खन्मणिकुट्टिमगृहाङ्गणे नापि च दृष्टः ॥ २५ ॥

एवमेव मन्मनोल्लापमनोहरं प्रहसन्दशनशून्यम् । आलिङ्ग्य गाढं न चुम्बितो वदनकमले ॥ २६ ॥

---

१. तुम्हाणमे० प्रतौ ।

न हु डिंभविहियकेलिप्पसंगओ धूलिधूसरसरीरो । आगंतुं मह कंठे विलग्गिओ झत्ति एमेव ॥ २७ ॥

न हु बालयसुलहाए राहाडीए महीए विलुलंतो । काउं कडीए आलिंगिऊण मंभीसिओ बालो ॥ २८ ॥

न कया वि हु कुविएणं मन्नुभरुम्मंथरं रुयंतेण । सुकुमालपाणिअमयच्छडाहिं पहया अहमहन्ना ॥ २९ ॥

इय मन्नुनिब्भरं जणणिजंपियं निसुणिऊण कन्हनिवो । उल्लवइ अंब ! मा कुणसु कमवि खेयं नियमणम्मि ॥३०॥

सव्वं पि सोहणमहं करिस्समिइ जंपिऊण नीहरिओ । आराहइ अमरं पुव्वपरिचियं विहियतवचरणो ॥ ३१ ॥

ता कणयकुंडलाहरणभूसिओ सुरवरो समणुपत्तो । किं कण्ह ! सुमरिओ हं ? इय तेणुत्ते भणइ कण्हो ॥ ३२ ॥

मह जणणीए पयच्छसु पुत्तं तो सुरवरो भणइ होही । नवरं तारुन्ने वि हु पव्वइही इय पयंपेउं ॥ ३३ ॥

सिग्घं तिरोहियम्मि तियसे तियसालयाओ चविय सुरो । देवीए सुओ जाओ गयसुकुमालो कयं नामं ॥ ३४ ॥

नवजोव्वणमणुपत्तो अणिच्छमाणो वि सयणवग्गेणं । परिणाविओ य धूयं दियस्स सो सोमसम्मस्स ॥ ३५ ॥

अह तत्थऽरिट्ठनेमी समोसढो रेवयम्मि उज्जाणे । तस्साभिवंदणत्थं संपत्ता जायवा सो वि ॥ ३६ ॥

पहुपयपउमं नमिउं उवविट्ठो भयवया वि सव्वेसिं । कहिया सद्धम्मकहा जणणी सग्गा-ऽपवग्गाणं ॥ ३७ ॥

पुव्वभवब्भासाओ धरिज्जमाणो वि बंधुवग्गेण । गयसुकुमालो सिरिनेमिपायमूलम्मि पव्वइओ ॥ ३८ ॥

गंतुं उड्डामरडाइणीहिमुम्मुक्कपिक्कफेक्कारे । वेयाल-भूय-रक्खसविमुक्कअट्टट्टहासम्मि ॥ ३९ ॥

बहुरुंडमुंडमंडलमज्झे परिभमिरसिवसमूहम्मि । डज्झंतमडयवसविस्सगंधवासियदिसाचक्के ॥ ४० ॥

न हु डिम्भविहितकेलिप्रसंगो धूलिधूसरशरीरः । आगत्य मम कण्ठे विलग्नो झटिति एवमेव ॥ २७ ॥

न हु बालसुलभया राट्या मह्यां विलोलयन् । कृत्वा कट्यांमालिङ्ग्य माभैषितो बालः ॥ २८ ॥

न कदापि हु कुपितेन मन्युभरोन्मन्थरं रुदता । सुकुमालपाण्यमृतच्छटाभिः प्रहताहमधन्या ॥ २९ ॥

इति मन्युनिर्भरं जननीजल्पितं निश्रुत्य कृष्णनृपः । उल्लपत्यम्ब ! मा कुरुष्व कमपि खेदं निजमनसि ॥ ३० ॥

सर्वमपि शोभनमहं करिष्यामीति जल्पित्वा निःसृतः । आराधयत्यमरं पूर्वपरिचितं विहिततपश्चरणः ॥ ३१ ॥

तावत्कनककुण्डलाभरणभूषितः सुरवरो समनुप्राप्तः । किं कृष्ण ! स्मृतोऽहम् ? इति तेनोक्ते भणति कृष्णः ॥ ३२ ॥

मम जनन्यै प्रयच्छ पुत्रं ततः सुरवरो भणति भविष्यति । नवरं तारुण्येऽपि हु प्रव्रजिष्यतीति प्रजल्प्य ॥ ३३ ॥

शीघ्रं तिरोदधाति त्रिदशे त्रिदशालयाच्च्युत्वा सुरः । देव्याः सुतो जातो गजसुकुमालः कृतं नाम ॥ ३४ ॥

नवयौवनमनुप्राप्तोऽनिच्छन्नऽपि स्वजनवर्गेन । परिणायितश्च दुहितरं द्विजस्य स सोमशर्मणः ॥ ३५ ॥

अथ तत्राऽरिष्टनेमी समवसृतो रैवतक उद्याने । तस्याभिवन्दनार्थं सम्प्राप्ता यादवाः सोऽपि ॥ ३६ ॥

प्रभुपदपद्मं नत्वोपविष्टो भगवतापि सर्वेषाम् । कथिता सद्धर्मकथा जननी स्वर्गा-ऽपवर्गाणाम् ॥ ३७ ॥

पूर्वभवाभ्यासाद्धीयमाणोऽपि बन्धुवर्गेण । गजसुकुमालः श्रीनेमिपादमूले प्रव्रजितः ॥ ३८ ॥

गत्वोत्कृष्टडाकीनिभिरुन्मुक्तभयानकफेत्कारैः । वैताल-भूत-राक्षसविमुक्ताट्टाऽट्टहास्ये ॥ ३९ ॥

बहुरुण्डमुण्डमण्डलमध्ये परिभ्रमच्छिवसमूहे । दह्यमानमृतकवशाविश्रगन्धवासितदिक्चक्रे ॥ ४० ॥

एवंविहभीसावणमसाणमज्झम्मि सो महासत्तो । काउस्सग्गम्मि ठिओ गयसुकुमालो नवतवस्सी ॥ ४१ ॥

तत्थाऽऽगएण भवियव्वयाए दिट्ठो स सोमसम्मेण । ते पेच्छिऊण कुविओ अहो ! सुया मज्झ एएण ॥ ४२ ॥

परिणेऊण विडंबिय परिचत्ता इय विचिंतिउं तेण । पावेण घडीकंठो ठविओ सीसम्मि से मुणिणो ॥ ४३ ॥

भरिओ य जलंताणं अंगाराणं पणट्ठकरुणेण । तेहि मुणी डज्झंतो सम्मं अहियासिउं लग्गो ॥ ४४ ॥

मा कुप्पसु जीव ! तुमं इमस्स जम्हा निमित्तमित्तमिमो । अवरज्झइ तुह इह कम्मपरिणई पुव्वभवविहिया ॥ ४५ ॥

वयग्गिवेयणाओ (?) सहियाणो अणेगसो तए नरए । इण्हि पुण पीडिस्सइ केत्तियमेत्तं इयरजलणो ? ॥ ४६ ॥

अज्ज वि य संसणिज्जो होइ इमो सव्वहा वि रे जीव ! । जो सिद्धिपुरपहम्मि एवं तुह कुणइ साहिज्जं ॥ ४७ ॥

एवं विचिंतयंतस्स तस्स सीसं बहिं दहइ दहणो । मज्झम्मि भवपरंपरसमज्जियं कम्मकट्ठभरं ॥ ४८ ॥

जह जह उच्छलइ महावियणा जलणेण तस्स तवनिहिणो । तह तह स महासत्तो धम्मज्झाणं समारुहइ ॥ ४९ ॥

इहभविय-पारभविए जीवे खामेइ खमइ य सयं पि । पणमइ कमकमलं भुवणसामिणो नेमिनाहस्स ॥ ५० ॥

आलोयणं पयच्छइ सिद्धाण पवड्ढमाणपरिणामो । एवं अहियासंतस्स तस्स सम्मं जलणवियणं ॥ ५१ ॥

जायं लोयाऽलोयप्पयासयं विमलकेवलन्नाणं । तव्वेलं चिय निव्वाणमुत्तमं सो समणुपत्तो ॥ ५२ ॥

बीयम्मि दिणे सबलो दुहा वि दोघट्टमारुहेऊण । नमणत्थं नेमिजिणस्स निग्गओ कण्हनरनाहो ॥ ५३ ॥

पत्तो य समवसरणे नमिउं जिणपायपउममुवविट्ठो । भयवं ! गयसुकुमालो कत्थऽच्छइ ? पुच्छिए तेण ॥ ५४ ॥

एवं विधभयानकस्मशानमध्ये स महासत्त्वः । कायोत्सर्गे स्थितो गजसुकुमालो नवतपस्वी ॥ ४१ ॥

तत्राऽऽगतेन भवितव्यतया दृष्टः स सोमशर्मणा । तं दृष्ट्वा कुपितोऽहो ! सुता ममैतेन ॥ ४२ ॥

परिणीय विडम्ब्य परित्यक्तेति विचिन्त्य तेन । पापेन घटीकण्ठः स्थापितः शीर्षे तस्य मुनेः ॥ ४३ ॥

भृतश्च ज्वलतामङ्गाराणां प्रणष्टकरुणेन । तै र्मुनि र्दह्यमानः सम्यगध्यासितुं लग्नः ॥ ४४ ॥

मा कुप्य जीव ! त्वमेतस्मै यस्मान्निमित्तमात्रमयम् । अपराध्यते तवेह कर्मपरिणतिः पूर्वभवविहिता ॥ ४५ ॥

वज्राग्निवेदना सोढानेकशस्त्वया नरके । इदानीं पुनः पीडिष्यति क्रियन्मात्रमितरज्वलनः ? ॥ ४६ ॥

अद्यापि च शंसनीयो भवत्ययं सर्वथापि रे जीव ! । यः सिद्धिपुरपथि एवं तव करोति सान्निध्यम् ॥ ४७ ॥

एवं विचिन्तयतस्तस्य शीर्षं बहि र्दहति दहनः । मध्ये भवपरंपरासमर्जितं कर्मकाष्टभारम् ॥ ४८ ॥

यथा यथोच्छलति महावेदना ज्वलनेन तस्य तपोनिधेः । तथा तथा स महासत्त्वो धर्मध्यानं समारोहति ॥ ४९ ॥

इहभविक-पारभविकान् जीवान् क्षमयति क्षमते च स्वयमपि । प्रणमति क्रमकमलं भुवनस्वामिनो नेमिनाथस्य ॥ ५०॥

आलोचनं प्रयच्छति सिद्धेभ्यः प्रवर्धमानपरिणामः । एवमध्यासमानस्य स्तस्य सम्यग् ज्वलनवेदनाम् ॥ ५१ ॥

जातं लोकाऽलोकप्रकाशकं विमलकेवलज्ञानम् । तद्वेलं चैव निर्वाणमुत्तमं स समनुप्राप्तः ॥ ५२ ॥

द्वितीये दिने सबलो द्विधापि हस्तिनमारुह्य । नमनार्थं नेमिजिनस्य निर्गतः कृष्णनरनाथः ॥ ५३ ॥

प्राप्तश्च समवसरणे नत्वा जिनपादपद्ममुपविष्टः । भगवन् ! गजसुकुमालः कुत्रासते ? पृष्टे तेन ॥ ५४ ॥

सिद्धिट्ठाणे सिट्ठो जिणेण कहमेयमुल्लवइ कण्हो । भणइ जिणो जह तुमए आगच्छंतेण साहिज्जं ॥ ५५ ॥

करुणारसिएण कयं विप्पस्स जराए विहुरियंगस्स । देवलियाकरणकए सिरेण इट्टा वहंतस्स ॥ ५६ ॥

तह गयसुकुमालस्स वि केणावि कयं तओ भणइ कण्हो । कह नज्जिही स भयवं ! मए ? तओ भणइ भुवणगुरू ॥५७॥

उब्बंधणानिमित्तं निग्गच्छंतस्स जस्स तं दट्टुं । फुटिही सिरं तहेव य मरिही स तए मुणेयव्वो ॥ ५८ ॥

इय सोउं कण्हनिवो नियबंधवमरणजायगुरुसोओ । अंसुजलोल्लकवोलो[१] नमिउं नेमिं पडिनियत्तो ॥ ५९ ॥

जाव पुरीए पविस्सइ कण्हो ता दिट्ठिगोयरं पत्तो । सो सोमसम्मविप्पो कुट्टं[२] से सत्तहा सीसं ॥ ६० ॥

तो पंचत्तं[३] पत्तो विन्नाओ वासुदेवनरवइणा । नयरीए भामिओ सो कड्ढावेऊण[४] पाएहिं ॥ ६१ ॥

खित्तो य पुरीए बहिं एरिसमन्नो वि कुणउ मा पावं । निसुणिऊण गुरुदुक्खसल्लिया जायवा सव्वे ॥ ६२ ॥

वसुदेवेण विरहिया निक्खंता नव दसारनरनाहा । तह नेमिबंधवा सत्त संजुया हरिकुमारेहिं ॥ ६३ ॥

जिणजणणी सिवदेवी तह हरि-बलभद्दकन्नयाओ वि । (....॥ ६४ ॥

..। देवइ-रोहिणिरहिया पव्वइया नेमिपासम्मि ॥ ६५ ॥

किं बहुणा गयसुकुमालसोयसल्लियमणो समग्गो वि । वसुदेवबंधुबग्गो निक्खंतो जायसंवेगो ॥ ६६ ॥

॥ गजसुकुमालाख्यानकं समाप्तम् ॥ १२५ ॥

सिद्धिस्थाने शिष्टो जिनेन कथमेतदुल्लपति कृष्णः । भणति जिनो यथा त्वयाऽऽगच्छता साहाय्यम् ॥ ५५ ॥

करुणारसिकेन कृतं विप्रस्य जरया विधुरिताङ्गस्य । देवकुलिकाकरणकृते शिरसेष्टा वहतः ॥ ५६ ॥

तथा गजसुकुमालस्यापि केनापि कृतं ततो भणति कृष्णः । कथं ज्ञायते स भगवन् ! मया ? ततो भणति भुवनगुरुः ॥५७॥

उद्बन्धनानिमित्तं निर्गच्छतो यस्य त्वां दृष्ट्वा । स्फुटिष्यति शिरसं तथैव च मरिष्यति स त्वया मुणितव्यः ॥ ५८ ॥

इति श्रुत्वा कृष्णनृपो निजबन्धवमरणजातगुरुशोकः । अश्रुजलार्द्रकपोलो नत्वा नेमिं प्रतिनिर्वृतः ॥ ५९ ॥

यावत्पुरिं प्रविशति कृष्णस्तावद्दृष्टिगोचरं प्राप्तः । स सोमशर्मविप्रः स्फुटितं तस्य सप्तधा शीर्षम् ॥ ६० ॥

ततः पञ्चत्वं प्राप्तो विज्ञातो वासुदेवनरपतिना । नगर्यां भ्रामितः स कर्षयित्वा पादाभ्याम् ॥ ६१ ॥

क्षिप्तश्च पूर्या र्बहिरीदृशमन्योऽपि करोतु मा पापम् । इति निश्रुत्य गुरुदुःखशल्यिता यादवाः सर्वे ॥ ६२ ॥

वसुदेवेन विरहिता निष्क्रान्ता नव दशारनरनाथाः । तथा नेमिबन्धवाः सप्त संयुक्ता हरिकुमारैः ॥ ६३ ॥

जिनजननीशिवादेवी तथा हरि-बलभद्रकन्या अपि [... ॥ ६४

....] । देवकी-रोहिणिरहिताःप्रव्रजिता नेमिपार्श्वे ॥ ६५ ॥

किं बहुना गजसुकुमालशोकशल्यितमनाः समग्रोऽपि । वसुदेवबन्धुवर्गो निष्क्रान्तो जातसंवेगः ॥ ६६ ॥

॥ गजसुकुमालाख्यानकं समाप्तम् ॥ १२५ ॥

---

१. अश्रुजलार्द्रकपोलः । २. स्फुटितम् । ३. मरणम् । ४. कर्षयित्वा ।

इदानीं मेतार्याख्यानकं प्रस्तूयते । तच्चेदम्-

साकेए साकेए साकेए गुणगणागरे नयरे । साहारे साहारे साहारे सउणसउणाणं ॥ १ ॥

नियजसधवलिनिज्जियसारयचंदावयंसया जस्स । चंदावयंसयासममित्तधणा पुरजणा जस्स ॥ २ ॥

सयलकलागमपडिपुन्नभावनियवंसमहमियजसोहो । संपाडणपक्खदुगुज्जलत्तअकलंकयाईहिं ॥ ३ ॥

उप्पायंतो चंदावयंसओ सुहयनिम्मलगुणेहिं । चंदावयंसओ नाम नरवई (राय) सिरिमवइ ॥ ४ ॥

सव्वंतेउरसाराओ गयवियाराओ सुइसरीराओ । निम्मलगुणधाराओ सिणिद्ध-मिउचिहुरभाराओ ॥ ५ ॥

महिहरसमुब्भवाओ सुकुमाराओ सिवासयधाराओ। गंगा-गउरीओ विव हरस्स दो तस्स दइयाओ ॥ ६ ॥

पढमा तासिं नामेण धारिणी धारिणी धरावइणो । बीया वयणविणिज्जियपउमा पउमावई नाम ॥ ७ ॥

रूवविणिज्जियमयणा ससिवयणा कमलपत्तसमनयणा । कुंदकलियाभरयणा दो दो तासिं च सुयरयणा ॥ ८ ॥

निययं हिययपइट्ठा समुन्नयाऽन्नोन्नसंगपावित्ता । सिहिणा इव नयणपिया संपक्कसुहा सुवयणा ॥ ९ ॥

रन्नो रइसुहसायरसमुल्लसावणगुणा ससहर व्व । किं बहुणा संसारियसुहाण सव्वाण सव्वस्सं ॥ १० ॥

पढमाए मुणिचंदो सागरचंदो य सुंदरावयवा । गुणचंद-बालचंदा बीयाए विणयकुलभवणं ॥ ११ ॥

इय एवमिमाणि तथा तिवग्गसाहणपराणि सुहियाणि । नीसेसपउरसम्मयगुणाणि विलसंति रज्जसिरिं ॥ १२ ॥

जं पुण जिणवयणामयभावियहिययाणि ताणि सव्वाणि । एसो पुण विन्नेओ खीरे खलु खंडपक्खेवो ॥ १३ ॥

मेतार्याख्यानकम् ॥ १२६ ॥

साकेते संकेते साकेते गुणगणाकरे नगरे । साहारे साधारे साभारे सुपुण्यशकुनानाम् ॥ १ ॥

निजयशोधवलिमानिर्जितशारदचन्द्रावतंसका यस्य । चन्द्रावतंसकासममित्रधनाः पुर्जना यस्य ॥ २ ॥

सकलकलागमप्रतिपूर्णभावनिजवंशमहमितयशौघः । संप्रादनप्रत्यक्षद्विकोज्जवलत्त्वाकलङ्कृतादिभिः ॥ ३ ॥

उत्पादयंश्चन्द्रावतंसकः सुभगनिर्मलगुणैः । चन्द्रावतंसको नाम नरपतिः (राज)श्रियमवति ॥ ४ ॥

सर्वान्तःपुर सारे गतविकारे शुचिशरीरे । निर्मलगुणधारे स्निग्ध-मृदुचिकुरभारे ॥ ५ ॥

महिधरसमुद्भवे सुकुमारे शिवासयधारे । गङ्गा-गौरीव हरस्य द्वे तस्य दयिते ॥ ६ ॥

प्रथमा तयो र्नाम्ना धारिणी धारिणी धरापतेः । द्वितीया वदनविनिर्जितपद्मा पद्मावती नामा ॥ ७ ॥

रुपविनिर्जितमदनौ शशिवदनौ कमलपत्रसमनयनौ । कुन्दकलिकाभरत्नौ द्वौ द्वौ तयोश्च सुतरत्नौ ॥ ८ ॥

निजकं हृदयप्रतिष्ठाः समुन्नतान्योन्यसंगप्राप्ताः । शिखिन इव नयनप्रियाः संपर्कसुखाः सुवदनाश्च ॥ ९ ॥

राज्ञो रतिसुखसागरसमुल्लसापनगुणाः शशधर इव । किं बहुना सांसारिकसुखानां सर्वेषां सर्वस्वम् ॥ १० ॥

प्रथमाया मुनिचन्द्रः सागरचन्द्रश्च सुन्दरावयवौ । गुणचन्द्र-बालचन्द्रौ द्वितीयाया विनयकुलभवनम् ॥ ११ ॥

इत्येवमेमे तथा त्रिवर्गसाधनपराः सुखिताः । निःशेषपौरसम्मतगुणा विलसन्ति राज्यश्रियम् ॥ १२ ॥

यत्पुन जिनवचनामृतभावितहृदयास्ते सर्वे । एष पुनर्विज्ञेयः क्षीरे खलु खण्डप्रक्षेपः ॥ १३ ॥

राया उ विसेसेणं कुओ वि कम्मक्खओवसमभावा । इहलोयनिप्पिवासो परलोयसुहेक्कगयचित्तो ॥ १४ ॥

अहिगयजीवाऽजीवो निच्चं चिय साहुपज्जुवासणओ । उवलद्धपुन्न-पावो सम्मं सुहतत्तचिंतणओ ॥ १५ ॥

असहेज्जदेव-दाणव-किंपुरिस-महोरगाइदेवेहिं । निग्गंथपवयणाओ अणइक्कमणिज्जथिरचित्तो ॥ १६ ॥

निग्गंथे पावयणे धणियं निस्संकियाइगुणकलिओ । लद्धट्ठो गहियट्ठो विणिच्छियट्ठो य समयम्मि ॥ १७ ॥

इय पंचमंगभयवइ पंचमगणहरसुहम्ममुणिवइणा । सावयवन्नयवन्नियगुणरयणालंकियसरीरो ॥ १८ ॥

परिपालइ रज्जसिरिं रक्खइ खत्तेण सिट्ठजणनिवहं । निग्गहइ दुट्ठलोयं पवयणउच्छप्पणं कुणइ ॥ १९ ॥

अह अन्नया य संझारायत्थाणं विसज्जिय नरिंदो । जा वयइ वासभवणं ता तत्थ न कावि सामग्गी ॥ २० ॥

खण-लव-तव-च्चियाए त्ति वयणमणुसरिय ताव नरनाहो । सनगरमिव साकेयं पच्चक्खाणं पवन्नो सो ॥२१ ॥

जावेस वासभवणे दीवो पज्जलइ ता न पारेमि । इय हिययम्मि विगप्पिय काउस्सग्गं कुणइ धीरो ॥ २२ ॥

मेरु व्व निप्पकंपो कम्मविणिज्जरणमेगमिच्छंतो । नियदेहनिरावेक्खो अगणंतो दंस-मसगाई ॥ २३ ॥

इय पासिय पुहइवइं देवी वि न का वि रायपासम्मि । संपत्ता वोलीणो ता पढमो जामिणीजामो ॥ २४ ॥

दीवो वि पज्जलंतो एयावसरम्मि नेहविरहाओ । विज्झाइऊमारद्धो ता सेज्जापालियाए इमो ॥ २५ ॥

मह सामी उस्सग्गे अच्छिस्सइ दुक्खमंधयारम्मि । इय परिभाविय समईए पूरिओ तेल्लपूरेण ॥ २६ ॥

इय तइय-चउत्थेसुं पहरेसुं तेलपक्खिवणपुव्वे । पज्जलिओ पईवो तओ पभाया निसासेसा ॥ २७ ॥

राजा तु विशेषेण कुतोऽपि कर्मक्षयोपशमभावात् । इहलोकनिष्पिपासः परलोकसुखैकगतचित्तः ॥ १४ ॥

अधिगतजीवाजीवो नित्यं चैव साधुपर्युपासनात् । उपलब्धपुण्य-पापः सम्यक् शुभतत्त्वचिन्तनकः ॥ १५ ॥

असहायदेव-दानव-किंपुरुष-महोरगादिदेवैः । निर्ग्रन्थप्रवचनादनतिक्रमणीय स्थिरचित्तः ॥ १६ ॥

निग्रन्थे प्रवचनेऽत्यन्तं निःशङ्कितादिगुणकलितः । लब्धार्थो गृहीतार्थो विनिश्चितार्थश्च समये ॥ १७ ॥

इति पञ्चमाङ्गभगवतिपञ्चमगणधरसुधर्ममुनिपतिना । श्रावकवर्णकवर्णितगुणरत्नालङ्कृतशरीरः ॥ १८ ॥

परिपालयति राज्यश्रियं रक्षति क्षात्रेण शिष्टजननिवहम् । निगृह्णाति दुष्टलोकं प्रवचनोत्सपर्णं करोति ॥ १९ ॥

अथान्यदा च सन्ध्याराजास्थानं विसर्ज्य नरेन्द्रः । यावद्व्रजति वासभवनं तावत्तत्र न कापि सामग्री ॥ २० ॥

क्षण-लव-तपश्चित्तयेति वचनमनुसृत्य तावन्नरनाथः । स्वनगरमिव संकेतं प्रत्याख्यानं प्रपन्नः सः ॥ २१ ॥

यावदेव वासभवने दीपः प्रज्वलति तावन्न पारयामि । इति हृदये विकल्प्य कायोत्सर्गं करोति धीरः ॥ २२ ॥

मेरुरिव निष्कम्पः कर्मविणिर्ज्जरमेकमिच्छन् । निजदेहनिरपेक्षोऽगणयन् दंश-मशकादीन् ॥ २३ ॥

इति दृष्ट्वा पृथवीपतिं देव्यपि न कापि राजपार्श्वे । सम्प्राप्ता व्युत्क्रान्ततस्तावत्प्रथमो यामिनीयामः ॥ २४ ॥

दीपोऽपि प्रज्वलन्नेतदवसरे स्नेहविरहात् । विध्यायितुमारब्धस्तावच्छय्यापालिकयायम् ॥ २५ ॥

मम स्वाम्युत्सर्गे आसिष्यते दुःखमन्धकारे । इति परिभाव्य स्वमत्या पूरितस्तैलपूरेण ॥ २६ ॥

इति तृतीय-चतुर्थेषु प्रहरेषु तैलप्रक्षेपणपूर्वम् । प्रज्वालितः प्रदीपस्ततः प्रभाता निशाशेषा ॥ २७ ॥

उग्गमिओ दिणनाहो पुहईनाहो य रुहिरभरियंगो । जावुस्सग्गं पारइ ता पडिओ धरणिवीढम्मि ॥ २८ ॥

नेहक्खयम्मि जाए दीवो आउक्खयम्मि नरनाहो । भवणप्पयासजणगा समयं चिय दो वि विज्झाया ॥ २९ ॥

अवाचि च-

प्रतिज्ञाशैलमारुह्य, ये भूयो न पतन्त्यधः । साधयन्ति स्वमर्थं ते, यथा चन्द्रावतंसकः ॥ ३० ॥

एत्थंतरम्मि पोक्कारियम्मि सहस त्ति सेज्जवालीए । किं किं ? ति पयंपंतो पत्तो सव्वो वि परिवारो ॥ ३१ ॥

दट्ठूणं तयवत्थं चेयन्नविवज्जियं महीनाहं । मुणिचंदकुमरपमुहो लोहो विहलंधलसरीरो ॥ ३२ ॥

पडिओ धस त्ति धरणीयलम्मि सिसिरोवयारकरणेण । संपावियचेयन्नो एवं पलवइ बहुपयारं ॥ ३३ ॥

हा ताय ! ताय ! हा हा सुजाय ! हा राय ! वल्लह ! सुनाय ! । हा विहियपसाय ! पसन्नवाय ! संपन्नजसवाय ! ॥३४॥

हा धम्मनिलय ! हा भुवणतिलय ! हा सरसविलयपरिवार ! । हा पहु ! पसन्नवयणं पसिऊणं देसु पडिवयणं ॥ ३५ ॥

एवं च पलवमाणो कुमारपमुहो जणो स मंतीहिं । सोयावहारवयणेहिं सासिओ समयकुसलेहिं ॥ ३६ ॥

निक्कारणअवयारुज्जयस्स निक्किवकुलावयंसस्स । एयस्स कुमर ! चिंतसु को विम्हरिओ कयंतस्स ? ॥ ३७ ॥

भणियं च-

लक्ष्मीलताकुठारस्य, भोगाम्भोदनभस्वतः । विलासवनदावाग्नेः, को हि कालस्य विस्मृतः ? ॥ ३८ ॥

अवरं च-

सो नत्थि च्चिय भुवणम्मि को वि जो खलइ तस्स माहप्पं । सच्छंदचारिणो सव्ववइरिणो हयकयंतस्स ॥ ३९ ॥

ता कुमर ! एस पावो समवत्ती गिज्जए जहत्थक्खो । पज्जलिओ जलणो विव कवलइ गरुए वि किं बहुणा ? ॥४०॥

उद्गतो दिननाथः पृथिवीनाथश्च रुधिरभृताङ्गः । यावदुत्सर्गं पारयति तावत्पतितो धरणीपीठे ॥ २८ ॥

स्नेहक्षये जाते दीप आयुःक्षये नरनाथः । भवनप्रसादजनकौ समकं चैव द्वावपि विध्यातौ ॥ २९ ॥

अत्रान्तरे पुत्कृते सहसेति शय्यापाल्या । किं किमिति ? प्रजल्पन् प्राप्तः सर्वोऽपि परिवारः ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा तदवस्थं चैतन्यविवर्जितं महीनाथम् । मुनिचन्द्रकुमारप्रमुखो लोको विह्वलान्धशरीरः ॥ ३२ ॥

पतितो धसेति धरणीतले शिशिरोपचारकरणेन । सम्प्राप्तचैतन्य एवं प्रलपति बहुप्रकारम् ॥ ३३ ॥

हा तात ! तात ! हा हा सुजात ! हा राजन् ! वल्लभ ! सुज्ञात ! । हा विहितप्रसाद ! प्रसन्नयशोवाद ! ॥ ३४ ॥

हा धर्मनिलय ! हा भुवनतिलक ! हा सरसवनितापरिवार ! । हा प्रभो ! प्रसन्नवदनं प्रसीद्य देहि प्रतिवचनम् ॥ ३५ ॥

एवं च प्रलपन् कुमारप्रमुखो जनः स मन्त्रिभिः । शोकापहारवचनैः शासितः समयकुशलैः ॥ ३६ ॥

निष्कारणापकारोद्यतस्य निष्कृपकुलावतंसस्य । एतस्य कुमार ! को विस्मृतः कृतान्तस्य ? ॥ ३७ ॥

अपरं च—

स नास्ति चैव भुवने कोऽपि यः स्खलति तस्य माहात्म्यम् । स्वच्छन्दचारिणः सर्ववैरिणो हतकृतान्तस्य ॥ ३९ ॥

ततः कुमार ! एष पापः समवर्ती गीयते यथार्थाक्षः । प्रज्वलितो ज्वलन इव कवलयति गुरुकानपि किं बहुना ? ॥ ४० ॥

बलभद्दवि बलभद्द सयलनीसेस विसद्दिय, रावणपमुह पयंडजोह अवरे वि गभद्दिय ।
न वि उव्वरिउ कया वि को वि कुवियह जमरायह । पयडपयावह पाणिनिवहु पावह जिम्व रायह ॥ ४१ ॥
इय मुणिचंदप्पमुहो परिवारो सासिओ विगयसोओ । जाओ जणयस्स तओ कारविओ अग्गिसक्कारो ॥ ४२ ॥
कइवयदिवसाणंतरमुत्तो मंतीहिं कुमरमुणिचंदो । रज्जमणुट्ठसु संपइ अनायगा जेण भद्द ! वयं ॥ ४३ ॥
तुह पिउणो रज्जमिमं नायगरहियं विसंठुलं होही । तुममेव रज्जजोगो मज्झम्मि जओ कुमाराण ॥ ४४ ॥
जेण तुह लहुयभाया उज्जेणीए कुमारभुत्तीए । पउमावइदेवीए अज्ज वि सिसुणो सुया दो वि ॥ ४५ ॥
कुमरो वि मंतिवयणं निसमिय पिउसोयसल्लियसरीरो । चिंतइ नियमईए रज्जमिमं नरयदुहहेऊ ॥ ४६ ॥
एयम्मि रज्जभारे इहलोयसुहं पि तत्तओ नत्थि । वासंगबहुलयाए नरवइणो जेणिमा चिंता ॥ ४७ ॥
गयसाहणं न सुहियं संपइ मह तुरयसाहणमसुत्थं । अंतेउरे न को वि हु दुस्सीलो मज्झ ववहरइ ॥ ४८ ॥
रट्ठं पि दुट्ठचरडाइहहिं संपयमभिद्दुयं दूरं । नरया (?) वि कुओ वि हु विरोहओ दुत्थिया अहुणा ॥ ४९ ॥
देसे दुत्थत्तणओ नऽज्ज वि संपज्जए सुहेण करो । चोरा वि हु अणवरयं मुसंति मग्गम्मि सत्थजणं ॥ ५० ॥
नियबलगव्वियचित्तो सीमालो मज्झ मन्नइ न सेवं । खत्तपडणाइदुत्था कुणन्ति रावं पि नायरया ॥ ५१ ॥
लंचोवयारलुद्धा सम्मं अहिगारिणो न वट्टंति । अज्जं माणधणाए अंतेउरियाए रूसणयं ॥ ५२ ॥
एवमणेगमणोगयवियप्पमालाउलस्स नरवइणो । मोत्तुमभिमाणमेगं नत्थि सुहं भणियमेत्थऽत्थे ॥ ५३ ॥

बलभद्रोऽपि बलभद्रः सकलनिःशेषविशद्वितः, रावणप्रमुखप्रचण्डयोधानपरानपिगर्भदितः ।
नाप्युद्वरितः कदापि कोऽपि कुपितस्य यमराजस्य । प्रकटप्रतापस्य प्राणिनिवहः पापस्य यथा रागस्य ॥ ४१ ॥
इति मुनिचन्द्रप्रमुखः परिवारः शासितो विगतशोकः । जातो जनकस्य ततः कारितोऽग्निसत्कारः ॥ ४२ ॥
कतिपयदिवसानन्तरमुक्तो मन्त्रिभिः कुमारमुनिचन्द्रः । राज्यमनुतिष्ठ सम्प्रत्यनायका येन भद्र ! वयम् ॥ ४३ ॥
तव पितू राज्यमिदं नायकरहितं विसंस्थूलं भविष्यति । त्वमेव राज्ययोग्यो मध्ये यतः कुमाराणाम् ॥ ४४ ॥
येन तव लघुभ्रातोज्जैन्यां कुमारभुक्तया । पद्मावतीदेव्या अद्यापि शिशू सुतौ द्वावपि ॥ ४५ ॥
कुमारोऽपि मन्त्रिवचनं निशम्य पितृशोकशल्यितशरीरः । चिन्तयति निजकमत्या राज्यमिदं नरकदुःखहेतुः ॥ ४६ ॥
एतस्मिन् राज्यभारे इहलोकसुखमपि तत्त्वतो नास्ति । व्यासङ्गबहुलतया नरपते र्येनेमा चिन्ता ॥ ४७ ॥
गजसाधनं न सुखिकं सम्प्रति मम तुरगसाधनमसुस्थम् । अन्तःपुरे न कोऽपि हु दुःशीलो मम व्यवहरति ॥ ४८ ॥
राष्ट्रमपि दुष्टचरटादिभिः साम्प्रतमभिद्रुतं दूरम् । नगरका अपि कुतोऽपि हु विरोधतो दुस्थिता अधुना ॥ ४९ ॥
देशे दुस्थत्वान्नाद्यापिसंपद्यते सुखेन करः । चौरा अपि खल्वनवरतं मुष्णन्ति मार्गे सार्थजनम् ॥ ५० ॥
निजबलगर्वितचित्तः सीमापालो मम मन्यते न सेवाम् । क्षात्रपतनादिदुस्थाः कुर्वन्ति रावमपि नागरकाः ॥ ५१ ॥
लञ्चोपचारलुब्धाः सम्यगधिकारिणो न वर्तन्ते । अद्य मानधनाया अन्तःपुरिकाया रुषणकम् ॥ ५२ ॥
एवमनेकमनोगतिविकल्पमालाकुलस्य नरपतेः । मुक्त्वाभिमानमेकं नास्ति सुखं भणितमत्रार्थे ॥ ५३ ॥

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा, क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ।
नातिश्रमाय नयनाय यथा श्रमाय, राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवाऽऽतपत्रम् ॥ ५४ ॥
किं बहुणा भणिएणं इह-परलोइयदुहाण खणियमेयं । चइऊणं रज्जसिरिं संजमसिरिमस्सिओ होमि ॥ ५५ ॥
इय परिभाविय भणिया माया पउमावई कुमारेण । गेण्हसु माए ! रज्जं अणुजाणसु पव्वयामि अहं ॥ ५६ ॥
तीए भणियं बाला मज्झ सुया रज्जपालणासत्ता । वोढुं गयपल्लाणं कुमार ! किं रासहो तरइ ? ॥ ५७ ॥
इय सुणिउं तीयुत्तं पडिवन्नमकामएण तं रज्जं । मंतीहिं सुहमुहुत्ते विहिओ रज्जाहिसेओ से ॥ ५८ ॥
जे पिउणो वि न पणया वसीकया ते वि तेण सीमाला । पुन्नप्पभावपत्तं सो पालइ रज्जमणवज्जं ॥ ५९ ॥
उवसंतडिंब-डमरं दुरीइ-दुब्भिक्खदोसपरिमुक्कं । दूरीकयपरचक्कंअदिट्ठतक्करपयारं च ॥ ६० ॥
अहिगारिणो विणीया पणया सव्वे वि मंति-सामंता । आणावडिच्छओ से सव्वो वि य सेवयसमूहो ॥ ६१ ॥
अणुरत्ता पयईओ सिणेहसारो सुहीय सुहिसत्थो । वट्टइ वसम्मि सव्वो उवरोहवरंगणानिवहो ॥ ६२ ॥
बंधवकुमुयाणंदे जाए चंदे व्व तम्मि मुणिचंदे । महिवाले सव्वे वि हु विस्सरिया पुव्वरायाणो ॥ ६३ ॥
इय सो मुणिचंदनिवो पयईए च्चिय विसिट्ठगुणभवणं । बीयं पुन्नपभावा अलंकिओ रायलच्छीए ॥ ६४ ॥
नीहरइ नयरमज्झे कलावमापूरियं विहियवेसो । मयसलिलसित्तगंडयलगरुयजयवारणारूढो ॥ ६५ ॥
कमणीयकंतिकामिणिकरयलदोधुव्वमाणसियचमरो । उद्दंडधरियधवलायवत्तपडिहणियरविकिरणो ॥ ६६ ॥
विविहवरवाहणारूढमंति-सामंत-सुहडपरियरिओ । पढमाणविविहमागहकलयरवबहिरियदियंतो ॥ ६७ ॥

किं बहुना भणितेनेहपरिलोकदुःखानां क्षणिकमेतत् । त्यक्त्वा राज्यश्रियं संयमश्रियमाश्रितो भवामि ॥ ५५ ॥
इति परिभाव्य भणिता माता पद्मावती कुमारेण । गृहाण मात ! राज्यमनुज्ञापय प्रव्रज्याम्यहम् ॥ ५६ ॥
तया भणितं बालौ मम सुतौ राज्यपालनाशक्तौ । वोढुं गजपलाणं कुमार ! किं रासभस्तरति ? ॥ ५७ ॥
इति श्रुत्वा तयोक्तं प्रतिपन्नमकामयेन तद्राज्यम् । मन्त्रिभिः शुभमुर्हूते विहितो राज्याभिषेकस्तस्य ॥ ५८ ॥
ये पितुरपि न प्रणता वशीकृतास्तेऽपि तेन सीमापालाः । पुण्यप्रभावप्राप्तं स पालयति राज्यमनवद्यम् ॥ ५९ ॥
उपशान्तडिम्ब-डमरं दुरीति-दुर्भिक्षदोषपरिमुक्तम् । दूरीकृतपरचक्रमदृष्टतस्करप्रचारं च ॥ ६० ॥
अधिकारिणो विनीताः प्रणताः सर्वेऽपि मन्त्रि-सामन्ताः । आज्ञाप्रतीच्छकस्तस्य सर्वोऽपि च सेवकसमूहः ॥ ६१ ॥
अनुरक्ताः प्रकृतयः स्नेहसारः सुखी च सखीसार्थः । वर्तते वशे सर्वोऽन्तःपुराङ्गनानिवहः ॥ ६२ ॥
बन्धवकुमुदानन्दे जाते चन्द्र इव तस्मिन् मुनिचन्द्रे । महिपाले सर्वेऽपि हु विस्मृताः पूर्वराजानः ॥ ६३ ॥
इति स मुनिचन्द्रनृपः प्रकृत्या चैव विशिष्टगुणभवनम् । द्वितीयं पुण्यप्रभावादलङ्कृतो राजलक्ष्म्या ॥ ६४ ॥
निःसरति नगरमध्ये कलापमापूर्य विहितवेशः । मदसलिलसिक्तगण्डतलगुरुकजयवारणारूढः ॥ ६५ ॥
कमनीयकान्तिकामिनिकरतलदोधूयमानश्वेतचामरः । उद्दण्डधृतधवलातपत्रप्रतिहतरविकिरणः ॥ ६६ ॥
विविधवरवाहनारुढमन्त्रि-सामन्त-सुभटपरिवारितः । पठयमानविविधमागधकलकलरवबधिरितदिगन्तः ॥ ६७ ॥

इय पइवासरसुररायलच्छिविच्छड्डुसंजणियसोहो । आगच्छइ निगच्छइ पेच्छिज्जंतो पुरजणेण ॥ ६८ ॥

तं पेच्छिय पावमई दुहा वि पउमावई पदुट्ठमणा । पच्छायावपरद्धा मच्छरपच्छाइयविवेया ॥ ६९ ॥

चिंतइ पावाए मए सुयाणमेवंविहा नरिंदसिरी । आगच्छंती दंडेण ताडिया कहमहन्नाए ? ॥ ७० ॥

संपइ दुलहा एसा मह पुत्ताणं इमम्मि जीवंते । सच्चवियं तीए इमं बुद्धी पण्हीए नारीणं ॥ ७१ ॥

तो केण उवाएणं एस मए मारियव्वओ राया ? । इय कूरमणा चिट्ठइ विकप्पमालाउला तत्तो ॥ ७२ ॥

जो जमिह काउकामो सोऽवसरं तस्स लहइ कइया वि । पयडा एस पसिद्धो जणम्मि ता तीए वि उवाओ ॥ ७३ ॥

लद्धो मारणकज्जे जम्हा पयईए पत्थिवो एसो । भुक्खालुओ तओ से भोयणजायं किमवि माया ॥ ७४ ॥

निच्चं पि रायवाडीए निग्गयस्सावि पेसइ सिणेहा । अह अन्नया य मायाए मोयगो सिंहकेसरओ ॥ ७५ ॥

सोहणदव्वेहिं कओ दासीहत्थेसुसंधुओ काउं । पट्ठविओ सा दिट्ठा गच्छंती रायमग्गेणं ॥ ७६ ॥

पउमावइदेवीए वाहरिउं दासचेडिया पुट्ठा । तुह हत्थम्मि किमेयं ? कत्थ व संपत्थिया तं सि ? ॥ ७७ ॥

तीए वि निव्वियप्पं एसा जणणि त्ति सच्चयं भणियं । भूवइभोयणकज्जे जामिअहं मोयगो एसो ॥ ७८ ॥

नीसेसो वुत्तंतो निवेइओ तयणु चिंतियमिमीए । एसो चेव समत्थो पत्थुयकज्जम्मि मह हेऊ ॥ ७९ ॥

तत्तो तीए भणियं केरिसगो एस मोयगो भद्दे ! दासीए निस्संकं समप्पिओ देवि ! पेच्छ इमं ॥ ८० ॥

तीए वि पुव्वमेव य विसभावियकरयलेण पासेसुं । पावाए परामुसिओ अइसुरही निवइणो जोगो ॥ ८१ ॥

इति प्रतिवासरसुरराजलक्ष्मीविभवसञ्जनितशोभः । आगच्छति निर्गच्छति प्रेक्ष्यमाणः पुर्जनेन ॥ ६८ ॥

तं दृष्ट्वा पापमति द्विधापि पद्मावती प्रदुष्टमना । पश्चात्तापपरद्धा मत्सरप्रच्छादितविवेका ॥ ६९ ॥

चिन्तयति पापया मया सुतानामेवंविधा नरेन्द्रश्रीः । आगच्छन्ती दण्डेन ताडिता कथमधन्यया ? ॥ ७० ॥

सम्प्रति दुर्लभैषा मम पुत्राणामेतस्मिञ्जीवति । सत्यापितं तयेदं बुद्धिः पार्ष्णौ नारीणाम् ॥ ७१ ॥

ततः केनोपायेनैष मया मारितव्यो राजा ? । इति क्रूरमना तिष्ठति विकल्पमालाकूला ततः ॥ ७२ ॥

यो यदिह कर्तुकामः सोऽवसरं तस्य लभते कदापि । प्रकटैषा प्रसिद्धि र्जने ततस्तयाप्युपायः ॥ ७३ ॥

लब्धो मारणकार्ये यस्मात्प्रकृत्या पार्थिव एषः । क्षुधालुकस्ततस्तस्य भोजनजातं किमपि माता ॥ ७४ ॥

नित्यमपि राजवाटिकायां निर्गतस्यापि प्रेषति स्नेहात् । अथान्यदा च मात्रा मोदकः सिंहकेसरकः ॥ ७५ ॥

शोभनद्रव्यैः कृतो दासीहस्ते सुसंवृतः कृत्वा । प्रस्थापितः सा दृष्टा गच्छन्ती राजमार्गेण ॥ ७६ ॥

पद्मावतीदेव्या व्याहृत्य दासचेटिका पृष्टा । तव हस्ते किमेतत् ? कुत्र वा सम्प्रस्थिता त्वमसि ? ॥ ७७ ॥

तयापि निर्विकल्पमेषा जननीति सत्यं भणितम् । भूपतिभोजनकार्ये याम्यहं मोदक एषः ॥ ७८ ॥

निःशेषो वृत्तान्तो निवेदितस्तदनु चिन्तितमनया । एष चैव समर्थः प्रस्तुतकार्ये मम हेतुः ॥ ७९ ॥

ततस्तया भणितं कीदृश एष मोदको भद्रे ! । दास्या निःशङ्कं समर्पितो देवि ! पश्येमम् ॥ ८० ॥

तयापि पूर्वमेव च विषभावितकरतलेन पार्श्वेषु । पापया परामृष्टोऽतिसुरभि नृपते र्योग्यः ॥ ८१ ॥

उज्जिधिऊण सुइरं संचारेउं विसं नहग्गेहिं । मोयगमज्झे भद्दे ! सिग्घं त्ति भणिऊणं ॥ ८२ ॥
दासीए अप्पिओ करयलम्मि तीए विसुद्धहियायाए । रन्नो पणामिओ चिंतियं च तेणावि पुन्नवया ॥ ८३ ॥
भक्खेमि कहमहमिमं बालेहिमिमेहिं भुक्खिएहिं तओ । काउं दुहा तयं तेसिमेव पउमावइसुयाणं ॥ ८४ ॥
दिन्नं दलमेगेगं अयाणमाणेण मोयगसरूवं । मुणिचंदनरिंदेणं तदुवरिमणवज्जहियएणं ॥ ८५ ॥
ते उण भुंजंता वि हु विसमविसावेसविहुरियसरीरा । वयणविणिग्गयफेणा सम्मीलियलोयणा सहसा ॥ ८६ ॥
पेच्छंताण वि रायाइयाण पडिया धस त्ति धरणीए। सिसिरोवयारवसओ वि जा न पावंति चेयन्नं ॥ ८७ ॥
ता नायं निऊणमईए एस निस्संसयं विसवियारो । ता तक्खणमेव सुवन्नघसणजलपाणपभिईहिं ॥ ८८ ॥
पउणीकया कुमारा वाहरिउं दासचेडिया रन्ना । पुट्ठा भद्दे ! को एस ? कहसु जेणेरिसं पावं ॥ ८९ ॥
जीवियनिविन्नेणं विहियमणज्जेण ? तीए संलत्तं । देव ! न याणामि अहं इह कज्जे कमवि परमत्थं ॥ ९० ॥
नवरमिमो पउमावइदेवीए मोयगो सहत्थेहिं । परिमलिओ धेत्तूणं मज्झ सयासाओ मग्गम्मि ॥ ९१ ॥
अवरेण न केणावि हु दिट्ठो पहु ! एत्तियं वियाणामि । तो नायमवणिवइणा तीए च्चिय विलसियमिमं ति ॥ ९२ ॥
ता कयमहममणाए सच्चं आहाणयं इमं तीए । जो चिंतवइ विरुद्धं परस्स तं आवइ घरस्स ॥ ९३ ॥
हा मण मयंकधम्मो न मारिओ हं ति तीए पावाए । मंतिसमक्खे पच्चारिऊण मोत्तूण रज्जसिरिं ॥ ९४ ॥
निव्विन्नकामभोगो मुणिचंदनाराहिवो सुकयपुन्नो । अदिट्ठवराहाणं वएसु सूरीण राहाणं ॥ ९५ ॥

उद्घ्राय सुचिरं संचार्य विषं नखाग्रैः । मोदकमध्ये भद्रे ! शीघ्रं याहीति भणित्वा ॥ ८२ ॥
दास्या अर्पितः करतले तया विशुद्धहृदयया । राज्ञे अर्पितश्चिन्तितं च तेनापि पुण्यवता ॥ ८३ ॥
भक्ष्यो कथमहमिमं बालै-र्द्विवरिमै र्बुभुक्षितैस्ततः । कृत्वा द्विधा तकं ताभ्यामेव पद्मावतीसुताभ्याम् ॥ ८४ ॥
दत्तं दलमेकैकमज्ञायमानेन मोदकस्वरुपम् । मुनिचन्द्रनरेन्द्रेण तदुपर्यनवद्यहृदयेन ॥ ८५ ॥
तौ पुन भुञ्जनावपि हु विषमविषावेशविधुरितशरीरौ । वदनविनिर्गतफेणौ सम्मीलितलोचनौ सहसा ॥ ८६ ॥
पश्यतामपि राजादीनां पतितौ धसेति धरण्याम् । शिशिरोपचारवशतोऽपि यावन्न प्राप्नुतश्चैतन्यम् ॥ ८७ ॥
तदा ज्ञातं निपुणमतिनैष निःशंसयं विषविकारः । ततस्तत्क्षणमेव सुवर्णघर्षणजलपानप्रभृतिभिः ॥ ८८ ॥
प्रगुणीकृतौ कुमारौ व्याहृत्य दासचेटिका राज्ञा । पृष्टा भद्रे ! क एष ? कथय येनेदृशं पापम् ॥ ८९ ॥
जीवितनिर्विण्णेन विहितमनार्येण ? तया संलप्तम् । देव ! न जानामि अहमिह कार्ये कमपि परमार्थम् ॥ ९० ॥
नवरमथ पद्मावतीदेव्या मोदकः स्वहस्ताभ्याम् । परिमलितो गृहीत्वा मम सकाशान्मार्गे ॥ ९१ ॥
अपरेण न केनापि हु दृष्टः प्रभो ! एतावद्विजानामि । ततो ज्ञातमवनिपतिना तस्या श्चैव विलसितमिदमिति ॥ ९२ ॥
तदा कृतमधममनया सत्यमाख्यानकमिदं तया । यश्चिन्तयंति विरुद्धं परस्य तदायतति गृहस्य ॥ ९३ ॥
हा मनः ! मृगाङ्कधर्मो न मारितोऽहमिति तया पापया । मन्त्रिसमक्षमुपालभ्य मुक्त्वा राज्यश्रियम् ॥ ९४ ॥
निर्विण्णकामभोगो मुनिचन्द्रनराधिपः सुकृतपुण्यः । अदृष्टापराधानां व्रतेषु सूरीणां राहाणाम् ॥ ९५ ॥

पासे सुहपरिणामो पव्वइओ गहियदुविहमुणिसिक्खो । उग्गतवचरणनिरओ विहरइ गुरुपायमूलम्मि ॥ ९६ ॥
अह कइया वि हु सूरीणमंतिए साहुणो विहरमाणा । उज्जेणीओ पत्ता पुट्ठा गुरुणा सुहविहारं ॥ ९७ ॥
तेहिं वि सव्वं कहियं साहुविहाराइयं नवरमेगो । गरुओ उवद्दवो मुणिवराणमकयप्पडीयारो ॥ ९८ ॥
राय-पुरोहियकुमरा दुल्ललिया दुरुलिविलसिया दूरं । मुणिवग्गं राउलवायविनडिया पहु ! कयत्थंति ॥ ९९ ॥
तं निसुणिऊण मुणिचंदमुणिवरो मणयममरिससहाओ । चिंतइ चंदपहुज्जलसुचरियचंदावयंसस्स ॥ १०० ॥
जाओ वि हु मह भाया कहमेवंविहपमायमायरइ । ता सिक्खवेमि गंतुं मह सत्ती एत्थ वत्थुम्मि ॥ १०१ ॥
सत्तीए संतीए जो दरिसणपरिभवं सहइ सत्थो । सो धम्मं पि न याणइ अहवा दोग्गइगमं महइ ॥ १०२ ॥
मा जम्मउ सो पुरिसो जाओ वि हु जियउ मा चिरं कालं । जिणसासणावमाणं सामत्थे सहइ जो मूढो ॥ १०३ ॥
जो देव-गुरुपराभवमहममई सहइ सत्तिसब्भावे । निस्संदेहं सद्दंसणे वि तस्सऽत्थि संदेहो ॥ १०४ ॥
तो गुरुणो मोयाविय गंतुमहं सिक्खवेमि अविणीए । मा वच्चंतु वराया ते वि हु नरयम्मि मूढमणा ॥ १०५ ॥
तो नमिऊणं गुरुणो भणिया जइ तुम्ह होइ आएसो । तो तत्थ गंतुमहयं वारेमि मुणीणमुवसग्गं ॥ १०६ ॥
गुरूणा वि जुत्तमेयं जं किज्जइ पवयणुन्नई धम्मे । एयं धम्मरहस्सं पवयणसारो इमो चेव ॥ १०७ ॥
तो गुरुणाऽणुन्नाओ पत्तो सो तक्खणेणमुज्जेणिं । संभोइयवसहीए पविसइ साहूण मज्झम्मि ॥ १०८ ॥
कयसमुचियडिवत्ती भणिओ साहूहिं भिक्खवेलाए । चिट्ठसु तं वसहीए तुह पाहुन्नं करिस्सामो ॥ १०९ ॥

पार्श्वे शुभपरिणामः प्रव्रजितो गृहीतद्विविधमुनिशिक्षः । उग्रतपश्चरणनिरतो विहरति गुरुपादमूले ॥ ९६ ॥
अथ कदापि हु सूरीणामन्तिके साधवो विहरन्तः । उज्जैनीतः प्राप्तः पृष्टा गुरुणा सुखविहारम् ॥ ९७ ॥
तैरपि सर्वं कथितं साधुविहारादिकं नवरमेकः । गुरुक उपद्रवो मुनिवराणामकृतप्रतिकारः ॥ ९८ ॥
राज-पुरोहितकुमारौ दुर्ललितौ दुरुलिविलसितौ दूरम् । मुनिवर्गं राजकुलवादविनटितौ प्रभो ! कदर्थयतः ॥ ९९ ॥
तन्निश्रुत्य मुनिचन्द्रमुनिवरो मनागमर्षसहायः । चिन्तयति चन्द्रप्रभोज्वलसुचरित्रचन्द्रावतंसकस्य ॥ १०० ॥
जातोऽपि मम भ्राता कथमेवंविधप्रमादमाचरति । ततः शिक्षयामि गत्वा मम शक्तिरत्र वस्तुनि ॥ १०१ ॥
शक्त्याः सत्या यो दर्शनपरिभवं सहते स्वस्थः । स धर्ममपि न जानात्यथवा दुर्गतिगमं काङ्क्षते ॥ १०२ ॥
मा जायतां स पुरुषो जातोऽपि हु जीवतु मा चिरंकालम् । जिनशासनापमानं सामर्थ्ये सहते यो मूढः ॥ १०३ ॥
यो देव-गुरु पराभवमधममतिः सहते शक्तिसद्भावे । निःसंदेहं सद्दर्शनेऽपि तस्यास्ति सन्देहः ॥ १०४ ॥
ततो गुरो र्मोचयित्वा गत्वाहं शिक्षयाम्यविनीतौ । मा व्रजतां वराकौ तावपि हु नरके मूढमनसौ ॥ १०५ ॥
ततो नत्वा गुरवो भणिता यदि युष्मद्भवत्यादेशः । तदा तत्र गत्वाहं वारयामि मुनीनामुपसर्गम् ॥ १०६ ॥
गुरुणापि युक्तमेतद्यत्क्रियते प्रवचनोन्नति धर्मे । एतद्धर्मरहस्यं प्रवचनसारोऽयं चैव ॥ १०७ ॥
ततो गुरुणानुज्ञातः प्राप्तः स तत्क्षणेनोज्जैनीम् । साम्भोगिकवसतौ प्रविशति साधूनां मध्ये ॥ १०८ ॥
कृतसमुचितप्रतिपत्ति र्भणितः साधुभि र्भिक्षावेलायाम् । तिष्ठ त्वं वसतौ तव प्राघूर्णकं करिष्यामः ॥ १०९ ॥

एवं विहिए तेणं भणिया मुणिचंदसाहुणा साहू। भो ! अत्तलद्धिओ हं तो ठवणकुलाणि साहेह ॥ ११० ॥
तो वत्थव्वयसाहूहिं खुड्डुओ से दुइज्जओ दिन्नो । दंसेउं पडिकुट्ठे कुले तओ खुड्डुओ वलिओ ॥ १११ ॥
तत्थेव य रायकुले पत्थुयकज्जप्पसाहणट्ठमिमो । भिक्खट्ठाए पविट्ठो तत्थ वि य समुच्चसद्देणं ॥ ११२ ॥
जाणावणत्थमेएणमत्तणो धम्मलाभिए सहसा । अंतेउरियासत्थो विणिग्गओ पणमिय मुणिंदं ॥ ११३ ॥
विन्नवइ पंजलिउडो भयवं ! मा वयह गुरुयसद्देणं। काउणमकण्णसुहं सो वि हु गरुययरसद्देणं ॥ ११४ ॥
किं भणह सावियाओ ! तुब्भे अहमुच्चकन्नओ मणयं । इय तासिं तेण समं, परोप्परं जंपियं सोच्चा ॥ ११५ ॥
कोउयवसओ किं किं ? ति जंपिरा निव-पुरोहियकुमारा । कलयलरवं कुणंता कुओ वि सहस त्ति संपत्ता ॥ ११६ ॥
वारंतीण वि तासिं अंतेउरियाण को वि हु अपुव्वो । आगंतुगपाहुणओ अयाणमाणो इह पविट्ठो ॥ ११७ ॥
ता मा महाणुभावं इमं कयत्थह निरत्थयमिमो हु । कण्णबहिरसरिच्छो ता वच्छा ! गच्छउ जहिच्छं ॥ ११८ ॥
एवं ते भणिया वि हु अणत्थजणगत्तओ सिसुत्तस्स । दाउं भवणदुवारे भुयग्गलं भणिउमाढत्ता ॥ ११९ ॥
नच्चसु समणगा ! संपइ पूरसु अम्हाण कोउगं गरुय । तेणुत्तं कह कीरइ वायणविरहम्मि नट्टविही ? ॥ १२० ॥
तो भणियमिमेहिं वयं वाएमो तणयु साहुणा भणियं । जइ एवं लट्ठमिमो पउणो हं नच्चियव्वम्मि ॥ १२१ ॥
तो वाइउं पवत्ता तालाराहणमयाणमाणा ते ॥ चुक्के ताले रुसिऊण साहुणा निट्ठुरं भणिया ॥ १२२ ॥
एएण मुहेण तुमे मं नच्चाविहह मुक्खसेहरया ! । ताहे रुट्ठा रे मुंड ! देसि गालीउ अम्हाणं ॥ १२३ ॥

एवं विहिते तेन भणिता मुनिचन्द्रसाधुना साधवः । भो ! आत्मलब्धिकोऽहं ततः स्थापनाकुलानि कथयत ॥ ११० ॥
तदा वास्तव्यसाधुभिः क्षुल्लकस्तस्मै द्वितीयो दत्तः । दर्शयित्वा प्रतिकृष्टानि कुलानि ततः क्षुल्लको वलितः ॥ १११ ॥
तत्रैव च राजकुले प्रस्तुतकार्यप्रसाधनार्थमयम् । भिक्षार्थाय प्रविष्टस्तत्रापि च समुच्चशब्देन ॥ ११२ ॥
ज्ञापनार्थमेतेनात्मनो धर्मलाभिते सहसा । अन्तःपुरिकासार्थो विनिर्गतः प्रणम्य मुनीन्द्रम् ॥ ११३ ॥
विज्ञपयति प्राञ्जलिपुटो भगवन् ! मा वदत गुरुकशद्वेन । कृत्वाकर्णसुखं सोऽपि हु गुरुकतरशद्वेन ॥ ११४ ॥
किं भणत श्राविकाः ! यूयमहमुच्चकर्णको मनाग् । इति तासां तेन समं परस्परं जल्पितं श्रुत्वा ॥ ११५ ॥
कौतूकवशतः किं किमिति जल्पन्तौ नृप-पुरोहितकुमारौ । कलकलरवं कुर्वन्तौ कुतोऽपि सहसेति सम्प्राप्तौ ॥ ११६ ॥
वार्यमाणानामपि तासामन्तःपुरिकाणां कोऽपि खल्वपूर्वः । आगन्तुकप्राघूर्णको ऽजानन्निह प्रविष्टः ॥ ११७ ॥
ततो मा महानुभावमिमं कदर्थयतो निरर्थकमयं हु । कर्णकबधिरसदृशस्तावद्वत्सौ ! गच्छतु यथेच्छम् ॥ ११८ ॥
एवं तौ भणितौ अपि ह्वनर्थजनकत्वाच्छिशुत्वस्य । दत्वा भवनद्वाराणि भुजार्गलं भणितुमारब्धौ ॥ ११९ ॥
नृत्य श्रमणक ! सम्प्रति पूरयास्माकं कौतूकं गुरुकम् । तेनोक्तं कथं क्रियते वादनविरहे नृत्यविधिः ? ॥ १२० ॥
ततो भणितमिमाभ्यामावां वादयावस्तदनु साधुना भणितम् । यद्येवं सुन्दरमयं प्रगुणोऽहं नर्त्तितव्ये ॥ १२१ ॥
ततो वादयितुं प्रवृत्तौ तालाराधनमजानन्तौ तौ । भ्रंष्टे ताले रुष्ट्वा साधुना निष्ठुरं भणितौ ॥ १२२ ॥
एतेन मुखेन युवां मां नर्तायतो मुर्खशेखरकौ ! । तदा रुष्टौ रे मुण्ड ! ददासि गालीरावयोः ॥ १२३ ॥

मुणिणा वि निजुद्धेणं सव्वाणि वि टालिऊणमंगाणि । मयपाया निच्चेट्ठा काउं मुक्का सयं च पुणो ॥ १२४ ॥
निग्गंतूणुज्जाणे भूभायं पेहिउं निराबाहं । उवविसिय निरुव्विग्गो सज्झायं काउमाढत्तो ॥ १२५ ॥
ते उण कुमारगे पासिऊण पडिए महीए तयवत्थे । पोक्करिए परिवारेण आगओ तत्थ नरनाहो ॥ १२६ ॥
संभंतो संभासइ ते वि न भासंति नेय फंदंति । कट्ठमयपुत्तला इव चिट्ठंति थिरं पलोयंता ॥ १२७ ॥
तो भणइ आसुरुत्तो केणमिमं पावकम्मुणा विहियं ? । तो भणियं केणावि हु इमेहिं पहु ! समणगो एगो ॥१२८॥
बाढं कयत्थिओ सो कयाइ एवंविहे इमे काउं । सामि ! पलाणो कत्थइ पायमिमं नज्जइ मईए ॥ १२९ ॥
तो तक्खणेण जोयावियाओ सव्वाओ साहुवसहीओ । जाव न को वि पयंपइ तो भणियं तेहिं साहूहिं ॥ १३० ॥
वत्थव्वओ न को वि हु रायउले विसइ तब्भया चेव । नवरं पाहुणगमुणो समागओ आसि अमुणंतो ॥ १३१ ॥
जइ कह वि सो पविट्ठो न याणिमो तं ति तो महीवइणा । सव्वायरेण मज्झे निरूविओ वि हु न सो दिट्ठो ॥१३२॥
तो केणावि हु निउणं निरूवयंतेण बाहिरुज्जाणे । सज्झायंतो दिट्ठो निवेइओ राइणो तत्तो ॥ १३३ ॥
वाहरिओ (वि हु) जा कह वि नेइ सो राइणो सयासम्मि । ता सयमेव य राया संपत्तो साहुपासम्मि ॥ १३४ ॥
जा वंदिउं पवत्तो सहस च्चिय ताव पच्चभिन्नाओ । चलणेसु निविडऊणं सुइरमिमो रोविउं लग्गो ॥ १३५ ॥
ताहे विलक्खवयणो लज्जाए अहोमुहो ठिओ जाव । ताव य कित्तिमकोवेण भाउणा फरुसवयणेहिं ॥ १३६ ॥
निब्भच्छिऊण भणिओ होउं चंदावयंसनरवइणो । पुत्तो मुणिवग्गे कुणसि मूढ ! एवंविहं भत्तिं ॥ १३७ ॥

मुनिनापि निर्युद्धेन सर्वाण्यपि टालयित्वाङ्गानि । मृतप्रायौ निश्चेष्टौ कृत्वा मुक्तौ स्वयं च पुनः ॥ १२४ ॥
निर्गत्योद्याने भूभागं प्रेक्ष्य निराबाधम् । उपविश्य निरुद्विग्नः स्वाध्यायं कर्तुमारब्धः ॥ १२५ ॥
तौ पुनः कुमारकौ दृष्ट्वा पतितौ मह्यां तदवस्थौ । पुत्कृते परिवारेणागतस्तत्र नरनाथः ॥ १२६ ॥
सम्भ्रान्तः सम्भाषते तावपि न भाषेते नैव स्पन्दतः । काष्टमयपुत्तलकाविव तिष्ठतः स्थिरं प्रलोकयन्तौ ॥ १२७ ॥
ततो भणत्यासुरूक्तः केनेदं पापकर्मणा विहितम् ? । तदा भणितं केनापि खल्वाभ्योः प्रभो ! श्रमणक एकः ॥१२८॥
अत्यंतं कदर्थितः स कदाचिदेवंविधाविमौ कृत्वा । स्वामिन् ! पलायनः क्वचित् प्रायमिदं ज्ञायते मत्या ॥ १२९ ॥
ततस्तत्क्षणेन विलोकिताः सर्वाः साधुवसतयः । यावन्न कोऽपि प्रजल्पति ततो भणितं तैः साधुभिः ॥ १३० ॥
वास्तव्यो न कोऽपि हु राजकुले विशति तद्भयाच्चैव । नवरं प्राघूर्णकमुनिः समागत आसीदमुणन् ॥ १३१ ॥
यदि कथमपि स प्रविष्टो न जानीमस्तमिति ततो महीपतिना । सर्वादरेण मध्ये निरुपितोऽपि हु न स दृष्टः ॥ १३२ ॥
ततः केनापि हु निपुणं निरुपयता बहिरुद्याने । स्वाध्यायन् दृष्टो निवेदितो राज्ञस्ततः ॥ १३३ ॥
व्याहृतो (ऽपि हु) यावत्कथमपि नैति स राज्ञः सकाशे । ततः स्वयमेव च राजा सम्प्राप्तः साधुपार्श्वे ॥ १३४ ॥
यावद्वन्दितुं प्रवृत्तः सहसा चैव तावत्प्रत्यभिज्ञातः । चरणयो र्निपत्य सुचिरमयं रोदितुं लग्नः ॥ १३५ ॥
तदा विलक्षवदनो लज्जयाऽधोमुखः स्थितो यावत् । तावच्च कृत्रिमकोपेन भ्रात्रा परुषवचनैः ॥ १३६ ॥
निर्भर्त्स्य भणितो भूत्वा चन्द्रावतंसकनरपतेः । पुत्रो मुनिवर्गे करोषि मूढ ! एवंविधां भक्तिम् ? ॥ १३७ ॥

जो परिवारं पि नियं नाऽऽणाए धरसि मूढमइविहवो । सो कह नियववसाओ दुट्ठाण विणिग्गहं कुणसि ? ॥१३८॥
केरिसियं तं सावयकुलुब्भवो सासणे जिणिंदाणं । सम्मत्तसुद्धिकज्जं पभावणं कुणसि मूढप्पा ? ॥ १३९ ॥
एवं बहुप्पयारं सुइरमिमो फरुस-सामवयणेहिं । तह कह वि हु सिक्खविओ मुणिणा आसंघयवसेण ॥ १४० ॥
जह जंपिउं पवत्तो पुणरवि एवंविहं पमायमहं । न करिस्सं मुणिवग्गे निरुवमभत्तिं च काहामि ॥ १४१ ॥
संपइ पसिय पयच्छसु मह मुणिवइ ! पुत्तभिक्खमिय वुत्तो । भणइ मुणी राहाडिं मुंचसु सुयपउणइमाविसए ॥१४२॥
अविणयतरुणो फलमणुहवंतु एमेव ते महापावा । इय जा कह वि न मन्नइ रन्नो लल्लिं करेंतस्स ॥ १४३ ॥
ता पडिऊणं थक्को मुणिणो पाएसु सविणयं निवई । करुणं काऊण तओ भणियं मुणिचंदतवनिहिणा ॥ १४४ ॥
पुच्छसु जइ मह पासे कहमवि ते पव्वयंति सुहभावा । तो पउणयामि रायं ! न अन्नहा निच्छओ एसो ॥ १४५ ॥
मुणिणा वि हु काऊणं वयणं पउणं कुमारया पुट्ठा । पडिवन्नं पव्वयणं तेहिं वि पियजीवियत्तणओ ॥ १४६ ॥
तत्तो य कलाकुसलत्तणेण संवाहिऊणमंगाणि । पउणीकाउं दोन्नि वि सुमुहुत्ते दिक्खिया विहिणा ॥ १४७ ॥
मुणिचंदो वि हु पत्तो अहिणवपव्वइयएहिं परियरिओ । राहायरियसमीवे पालइ सम्मं समणधम्मं ॥ १४८ ॥
ताणं मज्झे नरनाहनंदणो पुन्नपरिणइवसेण । चिंतइ भव्वं जायं बला वि पव्वाविओ जमहं ॥ १४९ ॥
विप्पसुओ वि वियप्पइ मणम्मि कहमहमणज्जसुद्देण । नीएणमणेण हढेण ? विनडिओ जाइमयवसओ ॥ १५० ॥

यः परिवारमपि निजं नाज्ञया धरसि मूढमतिविभवः । स कथं निजव्यवसायो दुष्टानां विनिग्रहं करोषि ? ॥ १३८ ॥
कीदृशां त्वं श्रावककुलोद्भवः शासने जिनेन्द्राणाम् । सम्यक्त्वशुद्धिकार्यां प्रभावनां करोषि मूढात्मा ? ॥ १३९ ॥
एवं बहुप्रकारं सुचिरमयं परुष-शामवचनैः । तथा कथमपि हु शिक्षितो मुनिना विश्वासवशेन ॥ १४० ॥
यथा जल्पितुं प्रवृत्तः पुनरप्येवंविधं प्रमादमहम् । न करिष्यामि मुनिवर्गे निरुपमभक्तिं च करिष्यामि ॥ १४१ ॥
सम्प्रति प्रसीद प्रयच्छ मम मुनिपते ! पुत्रभिक्षामित्युक्तः । भणति मुनी राटिं मुञ्च सुतप्रगुणिमाविषये ॥ १४२ ॥
अविनयतरोः फलमनुभवतामेवमेव तौ महापापौ । इति यावत्कथमपि न मन्यते राज्ञः प्रशंसां[1] कुर्वतः ॥ १४३ ॥
ततः पतित्वा स्थितो मुनेः पादयोः सविनयं नृपतिः । करुणां कृत्वा ततो भणितं मुनिचंद्रतपोनिधिना ॥ १४४ ॥
पृच्छ यदि मम पार्श्वे कथमपि तौ प्रव्रजतः शुभभावात् । तदा प्रगुणयामि राजन् ! नान्यथा निश्चय एषः ॥ १४५ ॥
मुनिनापि हु कृत्वा वचनं प्रगुणं कुमारकौ पृष्टौ । प्रतिपन्नं प्रव्रजनं ताभ्यामपिप्रियजीवितत्वात् ॥ १४६ ॥
ततश्च कलाकुशलत्वेन संवाहयाङ्गानि । प्रगुणीकृत्य द्वावपि सुमुर्हूते दिक्षितौ विधिना ॥ १४७ ॥
मुनिचन्द्रोऽपि हु प्राप्तोऽभिनवप्रव्रजिताभ्यां परिवारितः । राहाचार्यसमीपे पालयति सम्यक् श्रमणधर्मम् ॥ १४८ ॥
तयोर्मध्ये नरनाथनन्दनः पुण्यपरिणतिवशेन । चिन्तयति भव्यं जातं बलादपि प्रव्राजितो यदहम् ॥ १४९ ॥
विप्रसुतोऽपि विकल्पते मनसि कथमहमनार्यशुद्रेण । नीचेनानेन हठेन ? विनटितो जातिमदवशात् ॥ १५० ॥

१. लल्लि (दे.) प्रशंसा - खुशामद(हि.)

ते दो वि सुद्ध-कलुसियचित्ता पालंति समणपज्जायं । पज्जंते मरिऊणं जाया वेमाणिया देवा ॥ १५१ ॥
भुंजंति तत्थ भोए मणहरलायन्न-रूवकलियाहिं । अमरंगणाहिं सद्धिं विविहालंकाररुइराहिं ॥ १५२ ॥
अवयरण-जम्म-पव्वयण-नाण-निव्वाणसंभवदिणेसुं । कल्लाणगेसु पंचसु जिणाणमिह मणुयलोयम्मि ॥१५३॥
आगच्छंति कुणंति य पूयं महिमाइयं पमोयवसा । नंदीसरदीवाइसु सासयजिणभवणठाणेसु ॥ १५४ ॥
तित्थयरपायमूले सुणंति धम्मं जिणिंदपन्नत्तं । अन्नं पि धम्मकिच्चं कुणंति तित्थुन्नइप्पमुहं ॥ १५५ ॥
अह अन्नया कयाई धम्मपियत्तेण तेहिं तित्थयरो । पुट्ठो सुरलोयाओ चुया समाणा मणुयजम्मे ॥ १५६ ॥
किं सुलहबोहिया दुलहबोहिया वा वयं भविस्सामो ? । भणियं जिणेण नरनाहपुत्त ! तं सुलहजिणबोही ॥१५७॥
एसो पुण भवओ भद्द सहचरो सो चुओ चरित्तगुणं । किच्छेणं पाविहिही मणुयभवम्मि वि समायाओ ॥ १५८ ॥
इय सोऊणं सुरलोयमइगया ते जिणं पणमिऊणं । तो नियसुही पुरोहियसुएण भणिओ महाभाग ! ॥ १५९ ॥
मं पडिबोहसु जम्हा जिणेण हं दुलहबोहिओ भणिओ । मा हु पमायं काहिसि जइ तुह मह उवरि पडिबंधो ॥१६०॥
इय संकेयं काउं सुरलोयाओ चुओ दियस्स सुओ । जाईमयदोसेणं गुरुविसयपओसवसओ य ॥ १६१ ॥
रायगिहम्मि पुरवरे पाविच्चंतमेयधरणीए । गब्भम्मि समुप्पन्नो जाईमयकुकम्मवसयाए ॥ १६२ ॥
तारिसजाइजुओ वि हु पालियतारिसविसिट्ठचरणो वि । उववन्नो हीणकुले अहो ! दुरंतो मयविवागो ॥ १६३ ॥
तत्थेवऽवट्ठिया सेट्ठिभारिया मेइणीए पियसहिया । सा उ दढनिंदुयत्तेण दूमिया गमइ दियहाइं ॥ १६४ ॥

तौ द्वावपि शुद्ध-कलुषितचित्तौ पालयतः श्रमणपर्यायम् । पर्यन्ते मृत्वा जातौ वैमानिकौ देवौ ॥ १५१ ॥
भुञ्जतस्तत्र भोगान्मनोहर-लावण्य-रुपकलिताभिः । अमराङ्गनाभिः सार्द्धं विविधालङ्काररुचिराभिः ॥ १५२ ॥
अवतरण-जन्म-प्रव्रजन-ज्ञान-निर्वाणसम्भवदिनेषु । कल्याणकेषु पञ्चसु जिनानामिह मनुष्यलोके ॥ १५३ ॥
आगच्छतःकुरुतश्च पूजां महिमादिकं प्रमोदवशात् । नन्दीश्वरद्वीपादिषु शाश्वतजिनभवनस्थानेषु ॥ १५४ ॥
तीर्थकरपादमूले शृणुतो धर्मं जिनेन्द्रप्रज्ञप्तम् । अन्यदपि धर्मकार्यं कुरुतस्तीर्थोन्नतिप्रमुखम् ॥ १५५ ॥
अथान्यदाकदाचिद्धर्मप्रियत्वेन ताभ्यां तीर्थकरः । पृष्टः सुरलोकाच्च्युतौ सन्तौ मनुष्यजन्मनि ॥ १५६ ॥
किं सुलभबोधिकौ दुर्लभबोधिकौ वावां भविष्यावः ? । भणितं जिनेन नरनाथपुत्र ! त्वं सुलभजिनबोधिः ॥ १५७ ॥
एष पुन र्भव्यो भद्रः सहचरः स च्युतश्चरित्रगुणम् । कृच्छ्रेण प्राप्स्यति मनुष्यभवेऽपि समायातः ॥ १५८ ॥
इति श्रुत्वा सुरलोकमतिगतौ तौ जिनं प्रणम्य । ततो निजसखा पुरोहितसुतेन भणितो महाभाग ! ॥ १५९ ॥
मां प्रतिबोधये र्यस्माज्जिनेनाहं दुर्लभबोधिको भणितः । मा हु प्रमादं करिष्यसि यदि तव ममोपरि प्रतिबन्धः ॥ १६० ॥
इति सङ्केतं कृत्वा सुरलोकाच्च्युतो द्विजस्य सुतः । जातिमददोषेण गुरुविषयप्रद्वेषवशाच्च ॥ १६१ ॥
राजगृहे पुर्वरे प्राप्तप्रत्यन्तमेदगृहीण्या । गर्भे समुत्पन्नो जातिमदकुकर्मवशतया ॥ १६२ ॥
तादृश जातियुतोऽपि हु पालिततादृशविशिष्टचरणोऽपि । उत्पन्नो हीनकुलेऽहो ! दुरन्तो मदविपाकः ॥ १६३ ॥
तत्रैवावस्थिता श्रेष्ठिभार्या [१]मेदिन्या प्रियसख्या । सा तु दृढनिन्दुकत्वेन दविता गमयति दिवसानि ॥ १६४ ॥

---

१. मेदिनी - चण्डालन

नवरमिमीए वि हु गब्भसंभवो मेइणीए सह जाओ । तो सेट्ठिभारियाए सायरमब्भत्थिया सहिया ॥ १६५ ॥

पियसहि ! अहमेएणं कयत्थिया निंदुयत्तदोसेण । ता जइ कहमवि समगं पसवामो तो नियगजायं ॥ १६६ ॥

भद्दे ! देज्जसु मज्झं कह वि हु जीवेज्ज तुज्झ पुन्नेणं । तीए वि हु पडिवन्नं नत्थि अविसओ सिणेहस्स ॥ १६७ ॥

अद्धट्ठमदिवससमन्निएसु मासेसु नवसु दिवसाणं । कमसो य वइक्कंतेसु सेट्ठिमेयाण भज्जाओ ॥ १६८ ॥

सममेव पसूयाओ सेट्ठिपियाए सुया मया जाया । इयरीए लक्खणधरो निरुवरूवो सुओ जाओ ॥ १६९ ॥

तत्तो जहा न जायइ छक्कन्नमिमाहिं विहियमायाहिं । संचारियाइं तह ताइं दो वि छन्नं सेवच्चाइं[1] ॥ १७० ॥

दूरं रायविरुद्धं सत्थविरुद्धं न जं जणपसिद्धं । तं ताहिं तया चेट्ठियमहो ! हु कुडिलत्तमित्थीणं ॥ १७१ ॥

नायमुवट्ठियसेट्ठिस्स भारिया सुरकुमारसमरूवं । अक्खयतणू पसूया पुत्तं ति जणेण नयरम्मि ॥ १७२ ॥

तत्तो य-

वज्जंति तूरनिवहा गायंति गुणड्ढगायणसमूहा । नच्चंति रमणिसत्था पविसंति सुहक्खपत्ताइं ॥ १७३ ॥

वेसमणसमाणधणो वियरइ सेट्ठी पभूयधणनिवहं । बद्धावयहत्थाओ गिण्हइ सो विविहवत्थाइं ॥ १७४ ॥

अणवरयविविहवियरिज्जमाणसुहभक्ख-भोज्जसुत्थजणो ।इय वद्धावणयमहामहूसवो सिट्ठिणा विहिओ ।१७५।

सा वि सुयं मेईए पाडइ पाएसु एस तुह तणओ । नामं पि हु दिन्नं तीए संतियं तस्स मेयज्जो ॥ १७६ ॥

नवरमस्या अपि हु गर्भसम्भवो मेदिन्या सह जातः । ततः श्रेष्ठि भार्यया सादरमभ्यर्थिता सखी ॥ १६५ ॥

प्रियसखि ! अहमेतेन कदर्थिता निन्दुकत्वदोषेण । ततो यदि कथमपि समकं प्रसवावहे ततो निजकजातम् ॥ १६६ ॥

भद्रे ! देहि मह्यं कथमपि हु जीवेत्तव पुण्येन । तयापि हु प्रतिपन्नं नास्त्यविषयः स्नेहस्य ॥ १६७ ॥

अर्धाष्टमदिवससमन्वितेषु मासेषु नवसु दिवसानाम् । क्रमशश्च व्यतिक्रान्तेषु श्रेष्ठिमेदयो भार्ये ॥ १६८ ॥

सममेव प्रसुते श्रेष्ठिप्रियायाः सुता मृता जाता । इतर्या लक्षणधरो निरुपमरुपः सुतो जातः ॥ १६९ ॥

ततो यथा न जायते षट्कर्णमिमाभ्यां विहितमायाभ्याम् । सञ्चारिते तथा ते द्वेऽपिच्छन्नं स्वापत्ये ॥ १७० ॥

दूरं राजविरुद्धं शास्त्रविरुद्धं न यज्जनप्रसिद्धम् । तत्ताभ्यां तदा चेष्ठितमहो ! हु कुटिलत्वं स्त्रीणाम् ॥ १७१ ॥

ज्ञातमुपस्थितश्रेष्ठिनो भार्या सुरकुमारसमरुपम् । अक्षयतनुः प्रसूता पुत्रमिति जनेन नगरे ॥ १७२ ॥

ततश्च—

वाद्यन्ते तूर्यनिवहा गायन्ति गुणाढ्यगायनसमूहाः । नृत्यन्ति रमणिसार्थाः प्रविशन्ति शुभाक्षपत्राणि ॥ १७३ ॥

वैश्रमणसमानधनो वितरति श्रेष्ठी प्रभूतधननिवहम् । वर्धापकहस्तादृह्णाति स विविधवस्त्राणि ॥ १७४ ॥

अनवरतविविधवितीर्यमाणसुखभक्ष-भोजनसुस्थजनः । इति वर्धापनकमहामहोत्सवः श्रेष्ठिना विहितः ॥ १७५ ॥

सापि सुतं मेदिन्या पातयति पादयोरेष तव तनयः । नामापि हु दत्तं तस्याः सत्कं तस्य मेतार्यः ॥ १७६ ॥

---

१. स्वायपत्ये ।

वड्ढइ सो सेट्ठिगिहे कलाकलावेण देहुवचएण । गयणे सियपक्खे ससहरो व्व निस्सेसजणसुहओ ॥ १७७ ॥

अट्ठवरिसप्पमाणो लेहायरियस्स पायमूलम्मि । बाहत्तरीकलाओ सयलाओ पाढिओ पिउणा ॥ १७८ ॥

तत्तो य तरुणरमणीहरिणीसंजमणवागुराकरिणिं । पत्तो विलासविब्भमगुणभवणं तारतारुन्नं ॥ १७९ ॥

अह विहियविसिट्ठविलाससारसिंगारमणहरसरीरो । परिभमइ सुवेसवयंसपरिवुडो पुरपहाईसु ॥ १८० ॥

नाऊण तयं मेयज्जमोहिणा पुव्वसंगइयदेवो । पडिबोहइ बहुविहसुमिणदंणाईहिं धम्मम्मि ॥ १८१ ॥

परमेसो न गणइ किं पि तारिसं कम्मभारियत्तणओ । जम्मंतरनिव्वत्तियसुगुरुपओसाणुभावेण ॥ १८२ ॥

कालेण सरसलायन्न पुन्नतारुन्नगुणमणिखणीओ । अट्ठ कुलबालियाओ विहिणा परिणाविओ पिउणा ॥ १८३ ॥

सिबियारूढो सह पिययमाहिं परिभमइ नयरमज्झम्मि । रूवविणिज्जियमयणो अच्छरसहिओ व्व सुरकुमरो ॥१८४॥

तं दट्ठूणं देवेण चिंतियं एस विसयवामूढो । एवंविहसामग्गीए दुक्करं बोहिउं धम्मे ॥ १८५ ॥

जओ-

जाव न दुक्खं पत्तो पियबंधवविरहिओ य नो जाव । जीवो धम्मक्खाणं भावेण न गिण्हए ताव ॥ १८६ ॥

ता धम्मबोहणकए पाडेमि कहिं पि आवयावत्ते । इय परिभाविय तज्जणमेयदेहम्मि अवयरिउं ॥ १८७ ॥

लग्गो रोविउमेसो सदुक्खमह पासिऊण मेईए । वुत्तो पिययम ! तुमए किमेवमसमंजसं विहियं ? १८८ ॥

जम्हा मज्झ सहीए सुयवीवाहो महाविभूईए । तं पुण पमोयठाणे वि मज्झमिय सोइउं लग्गो ॥ १८९ ॥

वर्धते स श्रेष्ठिगृहे कलाकलापेन देहोपचयेन । गगने सितपक्षे शशधर इव निःशेषजनसुभगः ॥ १७७ ॥

अष्टवर्षप्रमाणो लेखाचार्यस्य पादमूले । द्वासप्ततिकलाः सकलाः पाठितः पित्रा ॥ १७८ ॥

ततश्च तरुणरमणीहरिणीसंयमनवागुराकारिणम् । प्राप्तो विलासविभ्रमगुणभवनं तारतारुण्यम् ॥ १७९ ॥

अथ विहितविशिष्टविलाससारशृङ्गारमनोहरशरीरः । परिभ्रमति सुवेशवयस्कपरिवृतः पुरपथादिषु ॥ १८० ॥

ज्ञात्वा तकं मेतार्यमवधिना पूर्वसंगतिकदेवः । प्रतिबोधयति बहुविधस्वप्नदर्शनादिभि र्धर्मे ॥ १८१ ॥

परमेष न गणयति किमपि तादृशं कर्मभारिकत्वात् । जन्मान्तरनिर्वर्तितसुगुरुप्रद्वेषानुभावेन ॥ १८२ ॥

कालेन सरसलावण्यपूर्णतारुण्यगुणमणिखन्यः । अष्टौ कुलबालिका विधिना परिणायितः पित्रा ॥ १८३ ॥

शिबिकारुढः सह प्रियतमाभिः परिभ्रमति नगरमध्ये । रुपविनिर्जितमदनोऽप्सरः सहित इव सुरकुमारः ॥ १८४ ॥

तं दृष्ट्वा देवेन चिन्तितमेष विषयव्यामूढः । एवंविधसामग्र्या दुष्करं बोधयितुं धर्मे ॥ १८५ ॥

यतः—

यावन्न दुःखं प्राप्तः प्रियबन्धवविरहितश्च न यावत् । जीवो धर्माख्यानं भावेन न गृह्णाति तावत् ॥ १८६ ॥

ततो धर्मबोधनकृते पातयामि क्वाप्यापदावर्ते । इति परिभाव्य तज्जनकमेददेहेऽवतीर्य ॥ १८७ ॥

लग्नो रोदितुमेष सुदुःखमथ दृष्ट्वा मेदिन्या । उक्तः प्रियतम ! त्वया किमेवमसमञ्जसं विहितम् ? ॥ १८८ ॥

यस्मान्मम सख्याः सुतविवाहो महाविभूत्या । त्वं पुनः प्रमोदस्थानेऽपि ममेति शोचितुं लग्नः ॥ १८९ ॥

तेणुत्तं अज्ज पिए ! नियाए धूयाए सुमरिमिमेण । सह जायाए जीवेज्ज कह वि जइ मज्झ सा धूया ॥ १९० ॥

ता अहमवि मेयाणं भत्तं काउं जहाविहवमेवं । वीवाहं कारिंतो तं मज्झ पिए ! न संजायं ॥ १९१ ॥

ता मज्झमिमेणं माणसेण दुक्खेण दूमियमणस्स । सोयावेसवसाओ समागयं रुन्नमेयं ति ॥ १९२ ॥

तो तीए पई भणिओ परमत्थमिमं अयाणमाणीए । एसो तुह चेव सुओ सहीए दिन्नो मए सामि ! ॥ १९३ ॥

तं सोऊणं रुट्ठेण ताडिया सा वि रोविउं लग्गा । किमियं भो भद्द !? जणेण पुच्छिए तेण संलत्तं ॥ १९४ ॥

पावाए इमाए कयं एयं असमंजसं मह पियाए । सिट्ठजणनिंदणिज्जं जओ इमो मज्झ तणओ त्ति ॥ १९५ ॥

दिन्नो मह दइयाए सिणेहओ सेट्ठिणीए एयाए । ता नियमंगरुहमिमं गिण्हेस्समहं मह न दोसो ॥ १९६ ॥

इय वोत्तूणं सहस त्ति पाडिओ गिण्हिऊण बाहाए । सिबियाओ समक्खं परियणस्स सो खत्थहिययस्स ॥ १९७ ॥

जाओ य रंगमज्झे महाविराओ इमं निएऊण । लोओ वि हु पत्तिल्लो को वि कहं पत्थुयत्थम्मि ॥ १९८ ॥

जेण सिणेहो अहिओ इमाण तो संभवेज्ज एयं पि । निब्भच्छऊण नीओ मेयज्जो तेण वि सगेहं ॥ १९९ ॥

भणिओ रे ! किं लज्जसि कुलक्कमेणाऽऽगएण कम्मेण ? ।
ता पयडमिमं भणियं मुणसु मणे कुणसु मा खेयं ॥ २०० ॥

इय वोत्तुं पक्खित्तो कोलियखड्डाए सो विसन्नमणो । अच्छइ तीए भिणिभिणइयमक्खियाजालकलियाए ॥ २०१ ॥

दट्ठुं तं तयवत्थं पयडियरूवो पयंपए देवो । भो भद्द ! तं वियाणसि ममं ? ति तं सुणिय मेयज्जो ॥ २०२ ॥

तेनोक्तमद्य प्रिये ! निजाया दुहितुः स्मृतमनेन । सह जातया जीवेत्कथमपि यदि मम सा दुहिता ॥ १९० ॥

ततोऽहमपि मेदानां भक्तं कृत्वा यथाविभवमेवम् । विवाहमकरिष्यं तन्मम प्रिये ! न सञ्जातम् ॥ १९१ ॥

ततो ममानेन मानसेन दुःखेन दूनमनसः । शोकावेशवशात्समागतं रोदनमेतदिति ॥ १९२ ॥

ततस्तया पति र्भणितः परमार्थमिदमजानन्त्या । एष तव चैव सुतः सख्यै दत्तो मया स्वामिन् ! ॥ १९३ ॥

तत् श्रुत्वा रुष्टेन ताडिता सापि रोदितुं लग्ना । किमिदं भो भद्र ! ? जनेन पृष्टे तेन संलप्तम् ॥ १९४ ॥

पापयानया कृतमेतदसमञ्जसं मम प्रियया । शिष्टजननिन्दनीयं यतोऽयं मम तनय इति ॥ १९५ ॥

दत्तो मम दयितया स्नेहात् श्रेष्ठिन्यै एतस्यै । ततो निजाङ्गरुहमिमं ग्रहिष्याम्यहं मम न दोषः ॥ १९६ ॥

इत्युक्त्वा सहसेति पातितो गृहीत्वा बाहुना । शिबिकात्समक्षं परिजनस्य स संतप्तहृदयस्य ॥ १९७ ॥

जातश्च रङ्गमध्ये महाविराग इदं दृष्ट्वा । लोकोऽपि हु विश्वसितः कोऽपि कथं प्रस्तुतार्थे ॥ १९८ ॥

येन स्नेहोऽधिकोऽनयोस्ततः सम्भवेदेतदपि । निर्भर्त्स्य नीतो मेतार्यस्तेनापि स्वगृहम् ॥ १९९ ॥

भणितो रे ! किं लज्जसे कुलक्रमेणाऽऽगतेन कर्मणा ? । ततः प्रकटमिदं भणितं मुण मनसि कुरु मा खेदम् ॥ २०० ॥

इत्युक्त्वा प्रक्षिप्तः कोलिकगर्तायां स विषण्णमनाः । आस्ते तस्यां भिणभिणितमक्षिकाजालकलितायाम् ॥ २०१ ॥

दृष्ट्वा तं तदवस्थं प्रकटितरुपः प्रजल्पति देवः । भो भद्र ! त्वं विजानासि माम् ? इति तत् श्रुत्वा मेतार्यः ॥ २०२ ॥

चिंतइ मणम्मि मह एस दिट्ठपुव्वो कहिं पि मन्ने हं । इय ईहा-ऽपोह-गवेस-मग्गणाओ कुणंतस्स ॥ २०३ ॥

जायं जाईसरणं नाओ सुरजम्मवइयरो तेण । भणियं च भो महायस ! विहियं मित्तत्तणं तुमए ॥ २०४ ॥

पउणो हं पव्वइउं परमज्ज वि मज्झ विसयपडिबंधो । अइबलिओ जं जुत्तं तंसयमुवइससु मह मित्त ! ॥ २०५ ॥

तो भणियं विबुहेणं विसयपिवासाए अणुवसंताए । वयविग्धकारिणीए न संगयं तुज्झ वयगहणं ॥ २०६ ॥

जइ एवं ता किज्जउ मज्झ पसाओ दुवालससमाओ । विसए हं भुंजिस्सं पच्छा बोहेज्ज नियमेण ॥ २०७ ॥

पडिवज्जिय तं मेयज्जवयणममरोऽमराणमावासं । गच्छंतोऽतुच्छमई विन्नतो सेट्ठिपुत्तेणं ॥ २०८ ॥

संपयमेवं विग्गोवियस्स मह केरिसा भणसु भोया ? । ता तह जयसु जहा हं भवामि जणपूयणिज्जगुणो ॥ २०९ ॥

तत्तो वयणाणंतरमूरणगो तेण तस्स गेहिम्म । बद्धो भणि(ओ) य इमो जहेस तुह भद्द ! भवणम्मि ॥ २१० ॥

रयणाणि अवाणेणं मुयही मणहरगुणाणि अणवरयं । तो ताण भरेऊणं वित्थयथालं पसन्नमुहो ॥ २११ ॥

जणओ तुज्झ निमित्तं मग्गिज्जउ सेणियं नियं कन्नं । परिणीयाए तीए तुह होहिइ सव्वमवि भव्वं ॥ २१२ ॥

अवरं पि हु जं किं चि वि तुज्झ पिया कारविस्सइ जणेण । मज्झ पभावा तं पि हु संपज्जिस्सइ धुवमिमस्स ॥ २१३ ॥

इय भणिऊणं सहस त्ति सुरवरो (सो) अदंसणीहूओ । ऊरणगो वि हु रयणाणि मुयइ रवि कंतिरुइराणि ॥ २१४ ॥

तत्तो मेयज्जपि य थालंरयणाण पूरियं काउं । रायदुवारे चिट्ठइ मग्गंतो कन्नयं रन्नो ॥ २१५ ॥

अभयकुमारो पुच्छइ तुज्झ कुओ एरिसाणि रयणाणि ? । तेणोइयमूरणगो पइदिणमेयाणि वोसिरइ ॥ २१६ ॥

चिन्तयति मनसि ममैष दृष्टपूर्वः कवापि मन्येऽहम् । इतीहा-ऽपोह-गवेष-मार्गणाः कुर्वतः ॥ २०३ ॥

जातं जातिस्मरणं ज्ञातः सुरजन्मव्यतिकरस्तेन । भणितं च भो महायशः ! विहितं मित्रत्वं त्वया ॥ २०४ ॥

प्रगुणोऽहं प्रव्रजितुं परमद्यापि मम विषयप्रतिबन्धः । अतिबलिको यद्युक्तं तत्स्वयमुपदिश मम मित्र ! ॥ २०५ ॥

ततो भणितं विबुधेन विषयपिपासयानुपशान्तया । व्रतविघ्नकारिण्या न संगतं तव व्रतग्रहणम् ॥ २०६ ॥

यद्येवं तावत्क्रियतां मम प्रसादो द्वादशसमाः । विषयानहं भुञ्जिक्ष्यामि पश्चाद्बोधयेन्नियमेन ॥ २०७ ॥

प्रतिपद्य तन्मेतार्यवचनममरोऽमराणामावासम् । गच्छन्नतुच्छमति विज्ञप्तः श्रेष्ठिपुत्रेण ॥ २०८ ॥

साम्प्रतमेवं विगोपितस्य मम कीदृशा भण भोगाः ? । ततस्तथा यतस्व यथाहं भवामि जनपूजनीयगुणः ॥ २०९ ॥

ततो वचनानन्तरमूरणकस्तेन तस्य गृहे । बद्धो भणितश्चायं यथैष तव भद्र ! भवने ॥ २१० ॥

रत्नान्यपानेन मोक्ष्यति मनोहरगुणान्यनवरतम् । ततस्तेषां भृत्वा विशालस्थालं प्रसन्नमुखः ॥ २११ ॥

जनकस्तव निमित्तं मार्गयतु श्रेणिकं निजां कन्याम् । परिणीतया तया तव भविष्यति सर्वमपि भव्यम् ॥ २१२ ॥

अपरमपि हु यत्किञ्चिदपि तव पिता कारयिष्यति जनेन । मम प्रभावात्तदपि हु संपत्स्यते ध्रुवमेतस्य ॥ २१३ ॥

इति भणित्वा सहसेति सुरवरोऽदर्शनीभूतः । ऊरणको ऽपि हु रत्नानि मुञ्चति रविकान्तरुचिराणि ॥ २१४ ॥

ततो मेतार्यपिता स्थालं रत्नानां पूरितं कृत्वा । राजद्वारे तिष्ठति मार्गयन् कन्यकां राज्ञः ॥ २१५ ॥

अभयकुमारः पृच्छति तव कुत ईदृशानि रत्नानि ? । तेनोदितमूरणकः प्रतिदिनमेतानि व्युत्सृजति ॥ २१६ ॥

तो भणियमभयकुमरेण भद्द ! मेरिसगमूरणयरयणं । न विरायइ तुह गेहे ता आणसु रायअत्थाणे ॥ २१७ ॥
तेण वि तहेव विहिए रायत्थाणम्मि पयडमूरणओ । मुंचइ असुइं फुट्टंति जम्मि गंधेण नासाओ ॥ २१८ ॥
उव्वेविएहिं तत्तो पुणरवि नीओ गिहम्मि तस्सेव । तत्थ तहेव य वोसिरइ ताणि रयणाणि पवराणि ॥ २१९ ॥
तो जाणियमभएणं नूणमिमा का वि देवमाय त्ति । तो भणिओ से जणगो परिक्खणत्थं पणयपुव्वं ॥ २२० ॥
भो ! एस मज्झ जणओ निच्चं चिय जाइ वंदणिनिमित्तं । सिरिवीरजिणेसरपायपउमजुयलस्स सुकुमारो ॥२२१॥
किच्छेणं पयचारेण चडइ वेभारपव्वयपहम्मि । ता जइ रहमग्गो तत्थ कह वि संजायए सुहओ ॥ २२२ ॥
ता तुह सुयस्स तुट्ठो वियरइ नियकन्नगं महीनाहो । इय भणिए संपन्नो पव्वयसिहरम्मि रहमग्गो ॥ २२३ ॥
तो निच्छियमभएणं सुरमाया एस विब्भमो नत्थि । काही अवरं पि हु तप्पभावओ एस मायंगो ॥ २२४ ॥
तो केण पयारेणं जणाववाओ अवेइ ? हुं नायं । आणावयामि जलहिं जेण इमो तस्स वेलाए ॥ २२५ ॥
छत्ते धरिज्जमाणे नरवइसिंहासणे विहियण्हाणो । होइ पवित्तो इय वेयवयणमेवं बुहा बेंति ॥ २२६ ॥
इय चिंतिऊण भणिओ मेओ भो ! जइ समुद्दमाणेसि । तो तुज्झ भद्द ! भणियं वयणमसेसं पि कुणइ निवो ॥२२७॥
एवं कए कुओ वि हु जलही रायगिहपरिसरे पत्तो । सो केरिसओ दिट्ठो इंतो नयरे निवाईहिं ? ॥ २२८ ॥
महिहरसमुब्भवाणं सरियावहुयाण विलसिररसाणं । सव्वंगं पयडंतो लवणरसं सामलसरीरो ॥ २२९ ॥
एस सलूणो सरसो गरुओ गंभीरिमाए गुणनिलओ । इय जस-किर्त्ति जो वहइ पयडडिंडीरपिंडमिसा ॥ २३० ॥

ततो भणितमभयकुमारेण भद्र ! मेदृशकमूरणकरत्नम् । न विराजते तव गृहे तावदानय राजास्थाने ॥ २१७ ॥
तेनापि तथैव विहिते राजास्थाने प्रकटमूरणकः । मुञ्चत्यशुचिं स्फुटन्ति यस्मिन् गन्धेन नासाः ॥ २१८ ॥
उद्वेजितैस्ततो पुनरपि नीतो गृहे तस्यैव । तत्र तथैव च व्युत्सृजति तानि रत्नानि प्रवराणि ॥ २१९ ॥
ततो ज्ञातमभयेन नूनमिमा कापि देवमायेति । ततो भणितस्तस्य जनकः परीक्षणार्थं प्रणयपूर्वम् ॥ २२० ॥
भो ! एष मम जनको नित्यं चैव याति वन्दननिमित्तम् । श्री वीरजिनेश्वरपादपद्मयुगलस्य सुकुमारः ॥ २२१ ॥
कृच्छ्रेण पदचारेणारोहति वैभारपर्वतपन्थानम् । ततो यदि रथमार्गस्तत्र कथमपि सञ्जायते सुभगः ॥ २२२ ॥
तदा तव सुतस्य तुष्टो वितरति निजकन्यकां महीनाथः । इति भणिते संपन्नः पर्वतशिखरे रथमार्गः ॥ २२३ ॥
ततो निश्चयमभयेन सुरमायेषा विभ्रमो नास्ति । करिष्यति अपरमपि हु तत्प्रभावादेष मातङ्गः ॥ २२४ ॥
ततः केन प्रकारेण जनापवादोऽपैति ? हुं ज्ञातम् । आनाययामि जलधिं येनायं तस्य वेलायाम् ॥ २२५ ॥
छत्रे ध्रीयमाणे नरपतिसिंहासने विहितस्नानः । भविष्यति पवित्र इति वेदवचनमेवं बुधा ब्रुवन्ति ॥ २२६ ॥
इति चिन्तयित्वा भणितो मेदो भो ! यदि समुद्रमानयसि । तदा तव भद्र ! भणितं वचनमशेषमपि करोति नृपः ॥ २२७ ॥
एवं कृते कुतोऽपि हु जलधी राजगृहपरिसरे प्राप्तः । स कीदृशो दृष्ट एन्तो नगरे नृपादिभिः ? ॥ २२८ ॥
महिधरसमुद्भवानां सरिद्वधूनां विलसद्रसानाम् । सर्वाङ्गं प्रकटयन् लवणरसं श्यामलशरीरः ॥ २२९ ॥
एष सलूणः सरसो गुरुको गम्भीरिमाया गुणनिलयः । इति यशः कीर्त्तिं यो वहति प्रकटडिण्डिरपिण्डमिषात् ॥ २३० ॥

एगेगमीण-मयरं नाणाविहमीण-मयरसंकिन्नो । सफरोव्वत्तियमिसओ सकडक्खं नियइ जो गयणं ॥ २३१ ॥
सिरिधर-सुरवरमहिओ विलसिरमयजलकरिंदसियमुत्ती । सुरयणपरिजुसियपओ सक्खं सक्को व्व जो सहइ ॥२३२॥
महिहरपसंसिओ हं सिरिजणओ हं अलद्धमज्झो हं । इय विहियगरुगव्वो जो गज्जइ गहिरसद्देण ॥ २३३ ॥
मयरसिओ दुरहिगमो जडपयइत्तं पयासयंतो व्व । गज्जंतो अच्चग्गलमुल्ललियमहल्लकल्लोल ॥ २३४ ॥
बहुसत्ताहाराओ करुणारसपूरियत्तगुणओ य । सप्पुरिसो व्व विरायं सुव्वत्तममुक्कमज्जाओ ॥ २३५ ॥
रणरसियसेयसंखो धणरसकरि-तुरयसिरिसमाउत्तो । अणुरूवसंगमकए निवो व्व सेणियनिवं पत्तो ॥ २३६ ॥
आलिंगंतो गुरुतरकल्लोलभुयाहिं रायगिहनयरं । नेहेणमप्पसरिसं सप्पायारं ससुरभवणं ॥ २३७ ॥
जलवित्थारेण मए पायाल-मही-नहाइं रुद्धाइं । इय दप्पेण व नहयलमुल्लंघइ हल्लिरजलोहो ॥ २३८ ॥
इय एवंविहरयणायरस्स वेलाजलेण सो न्हविओ । मेयज्जो भूवइपमुहपउरलोएण सप्पणयं ॥ २३९ ॥
तत्तो य सुहमुहुत्ते रन्ना परिणाविओ नियं कन्नं । विहओ पुणरवि रायाइएहिं नयरम्मि परममहो ॥ २४० ॥
तो सो सेणियनरवइविइन्ननिरुवमसमुच्चपासाए । सयणीया-ऽऽसण-भोगोवभोग-परिवारपरियरिओ ॥ २४१ ॥
पंचविहविसयसुहमुभयहा वि नववहुयवंद्रपरिकलिओ । उवभुंजंतो दोगुंदुगो व्व देवो गमइ दियहे ॥ २४२ ॥
तत्तो बारस बरिसाणि तस्स नाणापयारकीलाहिं । ललमाणस्स मुहुत्तं व्व सुत्थमणसो अईयाणि ॥ २४३ ॥
पुणरवि य मित्तदेवो अवइन्नो तस्स बोहणनिमित्तं । पेच्छ अपुव्वा पडिवन्नसूरया का वि सुयणाण ॥ २४४ ॥

एकैकमीन-मकरं नानाविधमीन-मकरसङ्कीर्णः । सफरोद्वर्त्तितमिषात्सकटाक्षं पश्यति यो गगनम् ॥ २३१ ॥
श्रीधर-सुरवरमहितो विलसन्मृगजलकरीन्द्रसितमूर्तिः । सुरत्नपरिजुष्टपदः साक्षाच्छक्र इव य राजते ॥ २३२ ॥
महिधरप्रशंसितो ऽहं श्रीजनकोऽहमलब्धमध्योऽहम् । इति विहितगुरुकगर्वो यो गर्जति गभीरशद्बेन ॥ २३३ ॥
मदरसिको दुरधिगमो जलप्रकृतित्वं प्रकाशयन्निव । गर्जन्नत्यर्गलमुल्ललितमहत्कल्लोलः ॥ २३४ ॥
बहुसत्त्वाधारतः करुणारसपूरितत्वगुणतश्च । सत्पुरुष इव विरागं सुव्रतमुन्मुक्तमर्यादः ॥ २३५ ॥
रणरसितश्वेतशङ्ख घनरसकरि-तुरगश्रीसमायुक्तः । अनुरुपसंगमकृते नृप इव श्रेणिकनृपं प्राप्तः ॥ २३६ ॥
आलिङ्गन्गुरुतरकल्लोलभुजाभिः राजगृहनगरम् । स्नेहेनात्मसदृशं सप्राकारं ससुरभवनम् ॥ २३७ ॥
जलविस्तारेण मया पाताल-मही-नभांसि रुद्धानि । इति दर्पेणेव नभस्थलमुल्लङ्घयति चलनशीलजलौघः ॥ २३८ ॥
इत्येवंविधरत्नाकरस्य वेलाजलेन स स्नापितः । मेतार्यो भूपतिप्रमुखपौरलोकेन सप्रणयम् ॥ २३९ ॥
ततश्च शुभमुर्हूते राज्ञा परिणायितो निजां कन्याम् । विहितः पुनरपि राजादिकै र्नगरे परममहः ॥ २४० ॥
ततः स श्रेणिकनरपतिवितीर्णनिरुपमसमुच्चप्रासादे । शयनीया-ऽऽसन-भोगोपभोग-परिवारपरिवारितः ॥ २४१ ॥
पञ्चविधविषयसुखमुभयथापि नववधुकवृन्दपरिकलितः । उपभुञ्जदोगुन्दुक इव देवो गमयति दिवसानि ॥ २४२ ॥
ततो द्वादश-वर्षाणि तस्य नानाप्रकारकीडाभिः । ललनो...न्मुर्हूतमिव सुस्थमनसोऽतीतानि ॥ २४३ ॥
पुनरपि च मित्रदेवो ऽवतीर्णस्तस्य बोधननिमित्तम् । पश्यापूर्वा प्रतिपन्नशूरता कापि सुजनानाम् ॥ २४४ ॥

दद्ठुं देवं सिरि रइयरुइरकरकरमलसंपुडो सहसा । मेयज्जो सज्जो पत्थुयत्थकज्जम्मि संजाओ ॥ २४५ ॥
एत्थंतरम्मि पयडियनवाओ ताओ नवावि वहुयाओ । ललियक्खर-सुहयर-लडहवाणिविन्नत्तिपवणाओ ॥२४६॥
उत्तालगमणरणझणिरनेउरारावमुहलियदिसाओ । जंपंति पहु ! पसायं अम्हाण वि एत्तियं कुणसु ॥ २४७ ॥
तासिं पि हु पडिवन्नं देवेण दयालुणा तयं वयणं । पणइयणपत्थणाभंगभीरुणो हुंति जं गरुया ॥ २४८ ॥
ता तेसिं बारसगं वरिसाण तयं पि दुयमइक्कंतं । जंतं पि हु कालं जं न मुणइ सुहिओ सुहेल्लिवसो ॥ २४९ ॥
तो वयपरिणइवसओ सुरोवरोहाओ भुत्तभोगाणि । चरणखओवसमाओ संजायविसुद्धभावाणि ॥ २५० ॥
गरुईए विभूईए समयं पव्वावियाणि नरवइणा । सिरिवीरजिणेसरपायअंतिए ताणि सव्वाणि ॥ २५१ ॥
अब्भसियदुविहसिक्खाणि विणय-वेणइयकरणनिरयाणि । गुरुकुलवासे विहरंति विहुयरस-मलजिणाणाए ।२५२।
मेयज्जो उण मेयज्जपरिणई वयविसुद्धसुहभावो । निरुवकरुणारसपूरपुन्नजलरासिसारिच्छो ॥ २५३ ॥
विहरंतो संपत्तो कयाइ पुणरवि य रायगिहनयरे । भिक्खट्ठाए पविट्ठो सुवन्नकारस्स गेहम्मि ॥ २५४ ॥
सो उण सुवन्नयारो पइदिणमट्ठोत्तरं जवाण सया । सोवन्नियाण सेणियनरवइणो दिन्नवेयणओ ॥ २५५ ॥
परमं विस्सासपयं भोयणविसए सया वि अपमत्तो । निव्वत्तइ निरुवमवीरनाहपयपूयणनिमित्तं ॥ २५६ ॥
तो सो पुंजीकाउं जवे पविट्ठो गिहे सकज्जेण । वियरसु दइए ! एयस्स भिक्खुणो भिक्खमिइ भणिउं ॥ २५७ ॥
ते उण घाडेरुहगेहकुंचजीवेण भुक्खिएण जवा । गिलिया पेच्छंतस्स वि मुणिणो निरुवमदयानिहिणो ॥ २५८ ॥

दृष्ट्वा देवं शिरसि रचितरुचिरकरकमलसंपूटः सहसा । मेतार्यः सज्जः प्रस्तुतार्थकार्ये सञ्जातः ॥ २४५ ॥
अत्रान्तरे प्रकटितनवास्ता नवापि वधुकाः । ललिताक्षर-सुखकर-रम्यवाणिविज्ञप्तिप्रवणाः ॥ २४६ ॥
उत्तालगमनरणझणन्नूपुरारावमुखरितदिशः । जल्पन्ति प्रभो ! प्रसादमस्माकमप्येतावन्तं कुरु ॥ २४७ ॥
तासामपि हु प्रतिपन्नं देवेन दयालुना तकद्वचनम् । प्रणतिजनप्रार्थनाभङ्गभीरवो भवन्ति यद्गुरुकाः ॥ २४८ ॥
ततस्तेषां द्वादशकं वर्षाणां तकदपि द्रुतमतिक्रान्तम् । यान्तमपि हु कालं यन्न मुणति सुखिकः सुखकेलिवशः ॥ २४९ ॥
ततो वयः(द)परिणतिवशात् सुरोपरोधाद्भुक्तभोगाः । चरणक्षयोपशमात् सञ्जातविशुद्धभावाः ॥ २५० ॥
गुरुक्या विभूत्या समकं प्रव्राजिता नरपतिना । श्री वीरजिनेश्वरपादान्तिके ते सर्वे ॥ २५१ ॥
अभ्यसितद्विविधशिक्षाः विनय-वैनयिककरणनिरताः । गुरुकुलवासे विहरन्ति विधुतरजोमलजिनाज्ञया ॥ २५२ ॥
मेतार्यः पुन मेदार्यपरिणति र्व्रतविशुद्धशुभभावः । निरुपमकरुणारसपूरपूर्णजलराशिसदृशः ॥ २५३ ॥
विहरन् सम्प्राप्तः कदाचित् पुनरपि च राजगृहनगरे । भिक्षार्थाय प्रविष्टो सुवर्णकारस्य गृहे ॥ २५४ ॥
स पुनः सुवर्णकारः प्रतिदिनमष्टोत्तर शतं यवानां सदा । सौवर्णिकानां श्रेणिकनरपतिना दत्तवेतनकः ॥ २५५ ॥
परमं विश्वासपदं भोजनविषये सदाप्यप्रमत्तः । निवर्तयति निरुपमवीरनाथपदपूजननिमित्तम् ॥ २५६ ॥
ततः स पुञ्जीकृत्य यवान् प्रविष्टो गृहे स्वकार्येण । वितर दयिते ! एतस्मै भिक्षवे भिक्षामिति भणित्वा ॥ २५७ ॥
ते पुनः स्वर्णकारगृहक्रौंचजीवेन बुभुक्षितेन यवाः । गलिताः पश्यतोऽपि मुने र्निरुपमदयानिधेः ॥ २५८ ॥

तो नीहरिओ वत्थाणि परिहिउं किर जवे समप्पेमि । नरवइणो जिणपुरओ सत्थियपूयानिमित्तमिमो ॥ २५९ ॥

अहिगरणीए उवरिम्मि पुंजिए नियइ न हु जवे जाव । सुन्नमणो ता जोयइ इओ तओ संभमवसेण ॥ २६० ॥

तो पुट्ठो मुणिवसभो भयवं ! तं मोत्तुमेगमवरस्स । संपइ न संभवो कहसु ता जवे पयडियपसाओ ॥ २६१ ॥

जेणऽच्चणियावेला अइजाइ निवो जवप्पणाभावे । रुट्ठो काही भयवं ! मं नवखंडं अयंडं ति ॥ २६२ ॥

एवमिमो भणिओ वि हु विविहपयारेहिं जाव न हु किं पि । जंपइ ता रुसिऊणं किलिट्ठकम्मेण सो सीसे ॥ २६३ ॥

अइनिबिडं बद्धो तेण अल्लवद्धेण[1] सीसवेढेण । सुक्कंते वद्धे वेयणाए समभिभूओ ॥ २६४ ॥

चिंतइ महाणुभावो कम्मरिवुजयत्थमुज्जमंतस्स । अणुवकयपराणुग्गहकारी तुह जीव ! को वेस ॥ २६५ ॥

रे जीव ! नरयवासम्मि तुह वसंतस्स नयरवालेहिं । छेयण-भेयण-कत्तण-दहणं-ऽकणपमुहवियणाओ ॥ २६६ ॥

अणुभाविज्जंतसरीयस्स तुह केत्तियं इमं दुक्खं ? । इय समभावो तं दुरहियासमहियासए वियणं ॥ २६७ ॥

पुणरवि भणिओ अज्ज वि कहसु सरूवं जवाण तमणज्ज ! ।तह वि हु कुंचदयाए न कहइ सो किं पि भणियंच ॥२६८॥

जो कुंचगावराहे पाणिदया कुंचगं तु नाऽऽइक्खे । जीवियमणपेहं तं मेयज्जरिसिं नमंसामि ॥ २६९ ॥

निप्फेडियाणि दोन्नि वि सीसावेढेण जस्स अच्छीणि । न य संजमाओ चलिओ मेयज्जो मंदरगिरि व्व ॥ २७० ॥

एवं वेयणनियरं अहियासंतस्स तस्स तवनिहिणो । अप्पुव्वकरणपत्तस्स खवगसेढिं पवन्नस्स ॥ २७१ ॥

ततो निःसृतो वस्त्राणि परिधाय किल यवान् समर्पयामि । नरपते र्जिनपुरतः स्वस्तिकपूजानिमित्तमयम् ॥ २५९ ॥

अधिकरण्या उपरि पुञ्जितान् पश्यति नहु यवान् यावत् । शून्यमनास्तावत्पश्यतीतस्ततः सम्भ्रमवशेन ॥ २६० ॥

ततः पृष्टो मुनिवृषभो भगवन् ! त्वां मुक्त्वेकमपरस्य । सम्प्रति न सम्भवः कथय तावद्यवान् प्रकटितप्रसादः ॥ २६१ ॥

येनार्चनिकावेलातियाति नृपो यवापर्णाभावे । रुष्टः करिष्यति भगवन् ! मां नवखण्डमकाण्डमिति ॥ २६२ ॥

एवमयं भणितोऽपि हु विविधप्रकारै र्यावन्न हु किमपि । जल्पति ततो रुष्ट्वा किलष्टकर्मणा स शीर्षे ॥ २६३ ॥

अतिनिबिडं बद्धस्तेनार्द्रवर्ध्रेण शीरोवेष्टनेन । शुष्यति वर्ध्रे वेदनया साधुः समभिभूतः ॥ २६४ ॥

चिन्तयति महानुभावः कर्मरिपुजयार्थमुद्यमतः । अनुपकृतपराणुग्रहकरी तव जीव ! को द्वेष्यः ॥ २६५ ॥

रे जीव ! नरकावासे तव वसतो नरकपालैः । छेदन-भेदन-कर्तन-दहनाङ्कनप्रमुखवेदनाः ॥ २६६ ॥

अनुभावयच्छरीरकस्य तव कियदिदं दुःखम् ? । इति समभावस्तां दुरध्यासामध्यास्यते वेदनाम् ॥ २६७ ॥

पुनरपि भणितो ऽद्यापि कथय स्वरुपं यवानां त्वमनार्य ! । तथापि हु कौंचदयया न कथयति स किमपि भणितं च ॥२६८॥

यः क्रौञ्चकापराधे प्राणिदयायाः क्रौञ्चकं तु नाचख्यौ । जीवितमनपेक्षं तं मेतार्यर्षिं नमामि ॥ २६९ ॥

निष्फेटिते द्वेऽपि शीरोवेष्टनेन यस्याक्षीणि । न च संयमाच्चलितो मेतार्यो मन्दरगिरीव ॥ २७० ॥

एवं वेदनानिकरमध्यासयतस्तस्य तपोनिधेः । अपूर्वकरणप्राप्तस्य क्षपकश्रेणिं प्रपन्नस्य ॥ २७१ ॥

---

१. 'आर्द्रवध्रेण' आर्द्रचर्मणा ।

सासयमणंतमक्खयमणंतरूवं निरावरणमेगं । लोया-ऽलोयपयासं संजायं केवलन्नाणं ॥ २७२ ॥

आउयखयम्मि समकालमेव सेलेसिभावमणुपत्तो । सो किर महाणुभावो अंतगडो केवली जाओ ॥ २७३ ॥

एत्थंतरम्मि चेडीए कट्ठहारो[1] महीए पक्खित्तो । तग्धायधसक्कियमाणसेण ते कुंचजीवेण ॥ २७४ ॥

उग्गिलिया हेमजवा तं दट्ठुं चिंतियं कलाएण । धिद्धी ! असमंजसकारयस्स मह बुद्धिवियलस्स ॥ २७५ ॥

जेणाहं निवजामाउयस्स रिसिणो य घायगो पावो । ता मरियव्वमवस्सं मएऽहुणा रायपासाओ ॥ २७६ ॥

ता पव्वज्जामि अहं सकुडुंबो अन्नहा न मोक्खो मे । इय बुद्धीए जाओ सुवन्नयारो समणरूवो ॥ २७७ ॥

तं वुत्तंतं नाउं जा पेसइ तस्स निग्गहनिमित्तं । सेणियराया पुरिसे ता दिट्ठो समणरूवो सो ॥ २७८ ॥

नीओ य रायपासे जंपइ निव ! होउ धम्मलाभो ते । मइविहवेणं राया वि रंजिओ तस्स तणएणं ॥ २७९ ॥

भणिओ जइ नो सम्मं पालसि तो तुज्झ निग्गहं काहं । सो वि हु भएण पालइ जावज्जीवं पि विहियवयं ॥२८०॥

॥ इति मेतार्याख्यानकं समाप्तम् ॥ १२६ ॥

इदानीं सनत्कुमाराख्यानकमभिधीयते । तद्यथा-

आराम व्व सुदक्खा जम्मि जणा जलहिणो पएसो व्व । परमावरियमहेला कयसुरमहणा विरायंति ॥ १ ॥

निरुवमनियगुणवसओ कुरुजणवयभूसणं भणंतं व । अत्थि वसुहापसिद्धं कुरुजणवयभूसणं नयरं ॥ २ ॥

शाश्वतमनन्तमक्षयमनन्तरुपं निरावरणमेकम् । लोका-ऽलोकप्रकाशं सञ्जातं केवलज्ञानम् ॥ २७२ ॥

आयुः क्षये समकालमेव शैलेशीभावमनुप्राप्तः । स किल महानुभावोऽन्तःकृतकेवली जातः ॥ २७३ ॥

अत्रान्तरे चेट्या काष्टभारो मह्यां प्रक्षिप्तः । तद्घातधक्षुब्धमानसेन ते क्रौञ्चजीवेन ॥ २७४ ॥

उद्गलिता हेमयवास्तद् दृष्ट्वा चिन्तितं कलादेन । धिग्धिगसमञ्जसकारकस्य मम बुद्धिविकलस्य ॥ २७५ ॥

येनाहं नृपजामातृ ऋषेश्च घातकः पापः । ततो मर्तव्यंमवश्यं मयाधुना राजपाशात् ॥ २७६ ॥

ततः प्रव्रजाम्यहं सकुटुम्बोऽन्यथा न मोक्षो मे । इति बुद्ध्या जातः सुवर्णकारः श्रमणरुपः ॥ २७७ ॥

तं वृत्तान्तं ज्ञात्वा यावत्प्रेषति तस्य निग्रहनिमित्तम् । श्रेणिकराजा पुरुषांस्तावद् दृष्टः श्रमणरुपः सः ॥ २७८ ॥

नीतश्च राजपार्श्वे जल्पति नृप ! भवतु धर्मलाभस्ते । मतिविभवेन राजापि रञ्जितस्तस्य सत्केन ॥ २७९ ॥

भणितो यदि न सम्यक् पालयसि तदा तव निग्रहं करिष्यामि । सोऽपिहु भयेन पालयति यावज्जीवमपि विहितव्रतम् ॥ २८० ॥

॥ इति मेतार्याख्यानकं समाप्तम् ॥ १२६ ॥

सनत्कुमाराख्यानकम् ॥ १२७ ॥

आराम इव सुदक्षा यस्मिञ्जना जलधेः प्रदेश इव । परमावृतमहेला कृतसुरमथना विराजन्ते ॥ १ ॥

निरुपमनिजगुणवशात्कुरुजनपदभूषणं भणन्तमिव । अस्ति वसुधाप्रसिद्धं कुरुजनपदभूषणं नगरम् ॥ २ ॥

---

१. काष्ठभारः ।

सहिययमविसयमेयं नामेणं गयउरं समक्खायं । सइ सुहियनायरं पि हु दुहियासयसं[१]जुयजणड्ढं ॥ ३ ॥
जम्मि य वणिणो पामाणिएहिं सह पयडरायमग्गम्मि । अब्भसियसुहवियक्का विसुद्धमाणा ववहरंति ॥ ४ ॥
असईओ सईहिं समं कयसुइसीलव्वया विरायंति । सुहयपरलोयविसयम्मि जत्थ जायाणुरायाओ ॥ ५ ॥
लहुया वि गरुयसरिसा रायसमावन्निया गयवियारा । वड्ढियसिणिद्धबंधवधण-धन्ना जत्थ निवसंति ॥ ६ ॥
जम्मि पुरपरिहसन्निभभुयदंडुद्दंडकलियकरवाले । कालो वि किलाऽऽसंकइ सत्तुसमूहम्मि का गणणा ? ॥ ७ ॥
समरंगणपत्तेणं सुयणुवयारे य जेण गुणनिहिणा । सत्तूणं सुयणाण व दिन्ना कइया वि हु न पिट्ठी ॥ ८ ॥
वीसुं पि हु पसरियगुरुपयावचउरंगचंगगुरुसेणो । नामेण विस्ससेणो तं परिपालइ जहत्थक्खो ॥ ९ ॥
सोहग्गाइगुणेणं अप्पडिहयपुन्नपगरिसत्तणओ । देवीकयसन्नेज्झ सहदेवी पणइणी तस्स ॥ १० ॥
सा अन्नया पसूया चोद्दससुमिणेहिं सूइयं सुहयं । चक्कंकुसंकियपयं सणंकुमारं तुरियचक्किं ॥ ११ ॥
वड्ढंतो य कमेणं पत्तो सो अट्ठवरिसमाणतणू । सव्वजणाणंदयरो सियपक्खे सारयससि व्व ॥ १२ ॥
लेहायरियसमीवे मंतिसुएणं महिंदसीहेण । सहिओ सिणिद्धसुहिणा पढिओ बावत्तरिकलाओ ॥ १३ ॥
संपत्तो य कमेणं तरुणीहरिणीण वागुराकप्पं । तारुन्नसमारंभं मयरद्धयरूवरमणीयं ॥ १४ ॥
अह अन्नया वसंते संपत्ते तुरयवाहियालीए । अवहरिओ सहस च्चिय हएण विवरीयसिक्खेण ॥ १५ ॥
तो कुमरमणुसरंतो पणमिय राया महिंदसीहेण । विणिवारिओ सयं पुण कुमरन्नेसणकए चलिओ ॥ १६ ॥

सहृदयमविषयमेतन्नाम्ना गजपुरं समाख्यातम् । सदा सुखिकनागरमपि हु दु:खिताशयसंयुतजनाढ्यम् ॥ ३ ॥
यस्मिश्च वणिज: प्रामाणिकै: सह प्रकटराजमार्गे । अभ्यसितशुभवितर्का विशुद्धमाना व्यवहरन्ति ॥ ४ ॥
असत्य: सतीभि: समं कृतशुचिशीलव्रता विराजन्ते । सुभगपरलोकविषये यत्र जायानुरागात् ॥ ५ ॥
लघुका अपि गुरुकसदृशा राजसमावर्णिता गजविचारा: । वर्द्धितस्निग्धबंधवधन-धन्या यत्र निवसन्ति ॥ ६ ॥
यस्मिन् पु:परिखासन्निभभुजदण्डोद्दण्डकलितकरवाले । कालोऽपि किलाशङ्कते शत्रुसमूहे का गणना ? ॥ ७ ॥
समराङ्गणप्राप्तेन सुजनोपकारे च येन गुणनिधिना । शत्रूणां सज्जनानां वा दत्ता कदापि हु न पृष्टी ॥ ८ ॥
विश्वगपि हु प्रसरितगुरुप्रतापचतुरङ्गगुरुसैन्य: । नाम्ना विश्वसेनस्तं परिपालयति यथार्थाख्य: ॥ ९ ॥
सौभाग्यादिगुणेनाप्रतिहतपुण्यप्रकर्षत्वात् । देवी कृत सान्निध्या सहदेवी प्रणयिनी तस्य ॥ १० ॥
सान्यदा प्रसूता चतुर्दशस्वप्नै: सूचितं सुभगम् । चक्राङ्कुशाङ्कितपदं सनत्कुमारं तुर्युर्थचक्रिणम् ॥ ११ ॥
वर्धमानश्च क्रमेण प्राप्त: सोऽष्टवर्षमानतनु: । सर्वजनानन्दकर: सितपक्षे शारदशशीव ॥ १२ ॥
लेखाचार्यसमीपे मन्त्रिसुतेन महेन्द्रसिंहेन । सहित: स्निग्धमित्रेण पठितो द्वासप्ततिकला: ॥ १३ ॥
सम्प्राप्तश्च क्रमेण तरुणीहरिणीनां वागुराकल्पम् । तारुण्यसमारम्भं मकरध्वजरूपरमणीयम् ॥ १४ ॥
अथान्यदा वसन्ते सम्प्राप्ते तुरगवाहियालिकया । अपहृत: सहसा चैव हयेन विपरितशिक्षेण ॥ १५ ॥
तत: कुमारमनुसरन् प्रणम्य राजा महेन्द्रसिंहेन । विनिवारित: स्वयं पुन: कुमारान्वेषणकृते चलित: ॥ १६ ॥

---

१. संजय रं. ।

भमिओ रन्ने गिरिकाणणेसु सरिया-सरोवराईसु । मित्तं गवेसयंतो बहुकालं न उण उवलद्धो ॥ १७ ॥

तत्तो निसुणइ सद्दं कारंडव-कुरर-सारसाईणं । जा तयभिमुहो चलिओ ता सुणइ इमं पढिज्जंतं ॥ १८ ॥

जय वीससेणनहयलमयंककुलभवणलग्गणक्खंभ ! । जय[1] तिहुयणनाह ! सणंकुमार ! जय लद्धमाहप्प ! ॥१९॥

हरिसियहियओ नियमित्तनामसवणेण जाव संचलिओ । ता विज्जाहरलच्छीए परिवुडं नियइ नियमित्तं ॥ २० ॥

आणंदनिब्भरंगा परोप्परं जाव तत्थ अच्छंति । पुच्छियकुसलोदंता महिंदसीहेण ता पुट्ठो ॥ २१ ॥

कुमरो तुह मित्त ! कहं जाया एगागिणो वि रायसिरी ? । तो लज्जंतो नियचरियमक्खिउं भणइ बउलमइं ॥२२॥

मह निद्दाए घुम्मंति लोयणा कहसु तं पिए ! नाउं । विज्जाए मह चरियं इमस्स भणिए य सुत्तो सो ॥ २३ ॥

भणिओ महिंदसीहो तीए तं ताव निग्गओ तइया । मित्तन्नेसणकज्जेणेसो पुण मज्झ मणदइओ ॥ २४ ॥

पसरंतजलहिकल्लोलेणं तेणं तरस्सिणा सामी । कामेण व बाणेणं हएण[1] कंतारंय नीओ ॥ २५ ॥

तत्थ वि रमणीयाणं उवरिं वच्छत्थलीण[2] लोलंतो । आयासिओ य सुपवासिओ य मुच्छाविओ य धणं ॥ २६ ॥

तो सत्तच्छयतरुनायगेण जक्खेण जायकरुणेणं । माणससरनीरेणं सिंचिय सत्थीकओ कुमरो ॥ २७ ॥

सत्थेण सुरो भणिओ जत्तो एयं समाणियं नीरं । तम्मि सरे मह ण्हायस्स जइ परं समइ तणुदाहो ॥ २८ ॥

ता तम्मि तुमं मं नेसु सुहय ! जइ सच्चयं मह हिओ सि । इय भणिए सिग्घं चिय सुरेण नीओ सरे तम्मि ॥ २९ ॥

दिट्ठं च तयं कविवन्नणाइयं[3] सरवरं कुमारेण । कयण्हाणो पीयजलो य तम्मि सत्थीहुओ[4] कुमरो ॥ ३० ॥

भ्रान्तोऽरण्ये गिरिकाननेषु सरित्सरोवरादिषु । मित्रं गवेषयन् बहुकालं न पुनरुपलब्धः ॥ १७ ॥

ततो निशृणोति शब्दं कारण्डव-कुरर-सारसादीनाम् । यावत्तदभिमुखश्चलितस्तावत् शृणोतीदं पठयमानम् ॥ १८ ॥

जय विश्वसेननभस्तलमृगाङ्ककुलभवनलग्नस्तम्भ ! । जय त्रिभुवन नाथ ! सनत्कुमार ! जय लब्धमाहात्म्य ! ॥ १९ ॥

हर्षितहृदयो निजमित्रनामश्रवणेन यावत् सञ्चलितः । तावद्विधाधरलक्ष्म्या परिवृत्तं पश्यति निजमित्रम् ॥ २० ॥

आनन्दनिर्भराङ्गौ परस्परं यावत्तत्रासेते । पृष्टकुशलोदन्तौ महेन्द्रसिंहेन तावत् पृष्टः ॥ २१ ॥

कुमारस्तव मित्र ! कथं जातैकाकिनोऽपि राजश्रीः ? । ततो लज्जमानो निजचरित्रमाख्यातुं भणति बकुलमतीम् ॥ २२ ॥

मम निद्रायाः धुर्णतो लोचने कथय त्वं प्रिये ! ज्ञात्वा । विद्यया मम चरित्रमेतस्य भणिते च सुप्तः सः ॥ २३ ॥

भणितो महेन्द्रसिंहस्तया त्वं तावन्निर्गतस्तदा । मित्रान्वेषणकार्येणैष पुन र्मम मनोदयितः ॥ २४ ॥

प्रसरज्जलधिकल्लोलेन तेन तरस्विना स्वामी । कामेनेव बाणेन हयेन कान्तारकं नीतः ॥ २५ ॥

तत्रापि रमणीयानामुपरि वक्षःस्थलानां लोलन् । आयासितश्च सुप्रवासितश्च मूर्च्छितश्चात्यन्तम् ॥ २६ ॥

स सप्तच्छदतरुनायकेन यक्षेण जातकरुणेन । मानससरोनीरेण सिञ्चयित्वा स्वस्थीकृतः कुमारः ॥ २७ ॥

स्वस्थेन सुरो भणितो यत एतत् समानीतं नीरम् । तस्मिन् सरसि मम स्नातस्य यदि परं शाम्यति तनुदाहः ॥ २८ ॥

ततस्तस्मिंस्त्वं मां नय सुभग ! यदि सत्यं मम हितोऽसि । इति भणिते शीघ्रं चैव सुरेण नीतः सरसि तस्मिन् ॥ २९ ॥

दृष्टं च तकत् कविवर्णनातीतं सरोवरं कुमारेण । कृतस्नानः पीतजलश्च तस्मिन् स्वस्थीभूतः कुमारः ॥ ३० ॥

---

१. 'हयेन' अश्वेन । २. त्थलम्मि लो. र. ३. कविवर्णनातीतम् । ४. स्वस्थीभूतः ।

जह पुव्ववइरिणा तम्मि सरवरे जुज्झिओऽसियक्खेण । जक्खेण समं जुज्झेण जह जिओ नियबलेण सुरो ॥ ३१ ॥
जह विज्जाहरराया संजाओ वित्थरेण तं सव्वं । कहियं महिंदसीहस्स सा वि भणिया इमं तेण ॥ ३२ ॥
सुयण ! इमो मह मित्तो सामुद्दियलक्खणेहिं सव्वंगं । समणुगओ किं चोज्जं जं जाओ खेयराहिवई ? ॥ ३३ ॥
इय निसुणिय बउलमई, भणइ महिंदं कुऊहलं मज्झ । ता पुरिसलक्खणं कहसु तेण भणियं सुणसु भद्दे ! ॥ ३४ ॥
वित्थरओ सामुद्दं लक्खपमाणं भणंति मुणिवसभा । संखेवेण सहस्सं सयं व जाव य सिलोगं वा ॥ ३५ ॥
तत्थ संखेवओ कहं सिलोगो ?
गतेर्धन्यतरो वर्णो, वर्णाद् धन्यतर: स्वर: । स्वराद् धन्यतरं सत्त्वं, सर्वं सत्त्वे प्रतिष्ठितम् ॥ ३६ ॥
लक्खिज्जइ जेण सुहं दुक्खं व जियाण दिट्ठमेत्ताण। तं लक्खणं ति निसुणसु निरूवियं नाइसंखेवा ॥ ३७ ॥
रत्तं मउयं निद्धं पायतलं जस्स होइ पुरिसस्स । न य [१]सेयणं न वक्कं सो नाहो होइ पुहईए ॥ ३८ ॥
ससि-सूर-वज्ज-चक्कं-ऽकुसंकियं कमतलं सुहं भणियं । रासह-वराह-जंबुय-विगंकियं दुक्खियाण भवे ॥३९॥
वट्टे पायंगुट्ठे अणुकूला भारिया विणिद्दिट्ठा । अंगुलिपमाणमेत्ते अंगुट्ठे भारिया दुइया ॥ ४० ॥
पहिओ पिहुलंगुट्ठो विणयग्गेणं च पावए विरहं । भग्गेण निच्चदुहिओ इय भणियं लक्खणन्नूहिं ॥ ४१ ॥
दीहा पएसिणी जस्स जायए सो वसम्मि महिलाणं । स च्चिय मडहा कलहप्पियस्स पिय-पुत्तविरहो वा ॥ ४२ ॥
दीहाए मज्झिमाए धण-महिलविणासणं कुणइ पुरिसो । तइयाए पुण विज्जा कणिट्ठिया निंदिया जाण ॥ ४३ ॥

यथा पूर्ववैरिणा तस्मिन् सरोवरे योधितोऽसितयक्षेण । यक्षेन समं युद्धेन यथा जितो निजबलेन सुर: ॥ ३१ ॥
यथा विद्याधरराजा सञ्जातो विस्तरेण तत्सर्वम् । कथितं महेन्द्रसिंहस्य सापि भणितेदं तेन ॥ ३२ ॥
सुतनु ! अयं मम मित्रं सामुद्रिकलक्षणै: सर्वाङ्गम् । समनुगत: किमाश्चर्यं यज्जात: खेचराधिपति: ? ॥ ३३ ॥
इति निश्रृत्य बकुलमती भणति महेन्द्रं कौतूहलं मम । तत: पुरुषलक्षणं कथय तेन भणितं शृणु भद्रे ! ॥ ३४ ॥
विस्तरत: सामुद्रं लक्षप्रमाणं भणन्ति मुनिवृषभा: । संक्षेपेण सहस्रं शतं वा यावच्च श्लोकं वा ॥ ३५ ॥
तत्रसंक्षेपत: कथं श्लोक: ?
लक्ष्यते येन सुखं दु:खं वा जीवानां दृष्टमात्राणाम् । तल्लक्षणमिति निशृणु निरुपितं नातिसंक्षेपात् ॥ ३७ ॥
रक्तं मृदु स्निग्धं पादतलं यस्य भवति पुरुषस्य । न च स्वेदनं न वक्रं स नाथो भवति पृथिव्या: ॥ ३८ ॥
शशि-सूर्य-वज्र-चक्रा-ऽङकुशाङ्कितं क्रमतलं शुभं भणितम् । रासभ-वराह-जम्बुक-मृगाङ्कितं दु:खितानां भवेत् ॥ ३९ ॥
वृत्तेपादङ्गुष्ठेऽनुकूला भार्या विनिर्दिष्टा । अङ्गुलिप्रमाणमात्रेऽङ्गुष्ठे भार्या दु:खिता ॥ ४० ॥
प्रथित: पृथुलाङ्गुष्ठो विनयाग्रेण च प्राप्यते विरहम् । भग्नेन नित्यदु:खित इति भणितं लक्षणज्ञै: ॥ ४१ ॥
दीर्घा प्रदेशिनी यस्य जायते स वशे महिलानाम् । सा चैव लध्वी कलहप्रियस्य प्रिया-पुत्रविरहो वा ॥ ४२ ॥
दीर्घाया मध्यमाया धन-महिलाविनाशनं करोति पुरुष: । तृतीयया पुनर्विद्या कनिष्ठिका निन्दिता जानीहि ॥ ४३ ॥

---

१. 'स्वेदन' प्रस्वेदस्त्रावि ।

उत्तंगनहा धन्ना पिहुलेहिं नरा सुहाइं पावंति । रुक्खेहिं हुंति दुहिया आयरिससमेहिं[1] रायाणो ॥ ४४ ॥
तंबेहिं विहवभोगी पउमेहिं सुही निवो य अरुणेहिं । समणो सिएहिं जायइ दुस्सीलो पुप्फियनहेहिं ॥ ४५ ॥
अइदीहर-खरजंधा वराहजंधा य कायजंधा य । ते हुंति दुक्खभागी अद्धाणं निच्चपडिवन्ना ॥ ४६ ॥
जे हंस-वसह-चक्काय-मोर-गयगमणगामिणो पुरिसा । ते हुंति भोगभागी गईहिं सेसाहिं दुक्खत्ता ॥ ४७ ॥
जाणू जस्स भवे गूढो गुंप्फो वा सुसमाहिओ । सो भवे सुहिओ निच्चं घडजाणू न सुंदरो ॥ ४८ ॥
जइ दाहिणेण वलियं लिंगं तो होइ पुत्तवं पुरिसो । अह वामे तो धूया भोगा पुण उज्जुए हुंति ॥ ४९ ॥
दाहिणपलंबविसणे पुत्तो वामम्मि होइ पुण धूया । हुंति समे सुय-भोगा दीहर-वट्टेसु य इमेसु ॥ ५० ॥
मंसोवचिया पिहुला होइ कडी धन्न-पुत्तलामाय । संकड-हुस्साए पुणो होइ दरिद्दो विएसी वा ॥ ५१ ॥
वड्डयरं भोगकरं हुस्सं वक्कं च होइ विवरीयं । समकुच्छी भोगड्डो उन्नयकुच्छी वि सिरिकलिओ ॥ ५२ ॥
वामावट्टं तुंगं अपसत्थं नाहिमंडलं भणियं । गंभीरदाहिणावत्तसंगयं तं पुण पसत्थं ॥ ५३ ॥
अंसत्थलं विसालं समुन्नयं मंसलं सुरोमजुयं । विसमहियया दरिद्दा सत्थपप्पहया विणस्संति ॥ ५४ ॥
महिसग्गीवो सुहडो कंबुग्गीवो नराहिवो होइ । बहुभक्खी गुरुदुक्खो पुरिसो अइदीह-किसगीवो ॥ ५५ ॥
आजाणुपलंबा अप्परोम पीणा कमेण वट्टा य । होंति पसत्था बाहू अकम्मकढिणं च हत्थयलं ॥ ५६ ॥
सरलाओ कोमलाओ करंगुलीओ सुदीहजीयाणं[2] । सण्हा मेहावीणं कम्मयराणं तु थूलाओ ॥ ५७ ॥

उत्तङ्गनखा धन्याः पृथुलै र्नरा सुखानि प्राप्नुवन्ति । ऋक्षै र्भवन्ति दुःखिता आदर्शसमै राजानः ॥ ४४ ॥
ताम्रै विभवभोगिनः पद्मैः सुखी नृपश्चारुणैः । श्रमणः श्वेतैर्जायते दुःशीलः पुष्पितनखैः ॥ ४५ ॥
अतिदीर्घखरजङ्घा वराहजङ्घाश्च काकजङ्घाश्च । ते भवन्ति दुःखभागिनोऽध्वानं नित्यप्रतिपन्नाः ॥ ४६ ॥
ये हंस-वृषभ-चक्रवाक-मयूर-गजगमनगामिनः पुरुषाः । ते भवन्ति भोगभागिनो गतिभिः शेषाभि र्दुःखार्त्ताः ॥ ४७ ॥
जानू र्यस्य भवेद्गुढो गुल्फो वा सुसमाहितः । स भवेत् सुखिको नित्यं घटजानु र्न सुन्दरः ॥ ४८ ॥
यदि दक्षिणेन वलितं लिङ्गं तदा भवति पुत्रवान् पुरुषः । अथ वामे तदा दुहिता भोगाःपुना ऋजुके भवन्ति ॥ ४९ ॥
दक्षिणप्रलम्बवृषणे पुत्रो वामे भवति पुन र्दुहिता । भवन्ति समे सुत-भोगा दीर्घ-वृत्तयोश्चैतयोः ॥ ५० ॥
मांसोपचिता पृथुला भवति कटी धन्य-पुत्रलाभाय । सङ्कटह्रस्वया पुन र्भवति दारिद्रो विदेशी वा ॥ ५१ ॥
महत्तरं भोगकरं ह्रस्वं वक्रं च भवति विपरितम् । समकुक्षि र्भोगाढ्य उन्नतकुक्षिरपि श्रीकलितः ॥ ५२ ॥
वामावर्तं तुङ्गमप्रशस्तं नाभिमण्डलं भणितम् । गम्भीरदक्षिणावर्तसंगतं तत्पुनः प्रशस्तम् ॥ ५३ ॥
अंसस्थूलं विशालं समुन्नतं मांसलं सुरोमयुतम् । विषमहृदया हरिद्राः शस्त्रप्रहता विनश्यन्ति ॥ ५४ ॥
महिषग्रीवः सुभटः कम्बुग्रीवो नराधिपो भवति । बहुभक्षी गुरुदुःखः पुरुषोऽतिदीर्घ-कृशग्रीवः ॥ ५५ ॥
आजानुप्रलम्बा अल्परोम्णः पीनाः क्रमेण वृत्ताश्च । भवन्ति प्रशस्ता बाह्वोऽकर्मकठिनं च हस्ततलम् ॥ ५६ ॥
सरलाः कोमलाः कराङ्गुल्यः सुदीर्घजीवानाम् । श्लक्ष्णा मेधावीनां कर्मकराणां तु स्थूलाः ॥ ५७ ॥

---

१. 'आदर्शसमैः' दर्पणतुल्यैः ॥ २. जीहाणं रं. !

लहुओट्ठो दुहभागी सुभगो पीणोट्ठओ मुणेयव्वो । भोगी य पलंबोट्ठो विसमोट्ठो भीरुओ भणिओ ॥ ५८ ॥
सुद्धा समा पसत्था घणा सिणिद्धा य सिहरिणो दंता । रत्तं तालुं सुहयं कसिणं नीलं च दुहहेऊ ॥ ५९ ॥
बत्तीसाए नरवई एगत्तीसाइ भोगसुहभागी । तीसाए मज्झिमगुणो दन्ताणमओ परं असुहो ॥ ६० ॥
सारस-हंसाइसरा सुहया वायस-खरस्सरा दुहिया । सरला य सण्हविवरा समुन्नया नासिया धन्ना ॥ ६१ ॥
आययविउला कन्ना धन्नाणं लोमसा चिराऊणं । मूसयकन्ना मेहाविणो य दुहिया ससयकन्ना ॥ ६२ ॥
उत्थल्लदिट्ठिणो थोवजीविणो भोगिणो विउलदिट्ठी । पावाण अहोदिट्ठी सरलं जोएइ उर्जुमई ॥ ६३ ॥
तिरियं नियंति कूरा धन्ना उण उद्धदिट्ठिणओ हुंति । काणाओ वरं अंधो केकयराओ वरं काणो ॥ ६४ ॥
विउलं अद्धिंदुसमं धण्णाण नराण होइ भालयलं । अइविउलं दुहियाणं अइतुच्छं तुच्छजीवीणां ॥ ६५ ॥
वामावत्तो भमरो अपसत्थो सीसवामपासम्मि । सो दाहिणम्मि पासे होइ सुहो दाहिणावत्तो ॥ ६६ ॥
भमराण विवज्जासे भोगा जायंति पच्छिमवयम्मि । छत्तायारं सीसं होइ नरिंदाण अह केसा ॥ ६७ ॥
निद्धा घणा पसत्था मउया आकुंचिया य ते धन्ना । फुडिया मलिणा रुक्खा दारिद्दकरा भवे चिहुरा ॥ ६८ ॥
अपरं च-
तिन्नि य गंभीराइं तिन्नि य विउलाइं हुंति धन्नाइं । हुस्साइं चउर सुहुमाइं पंच पंचेव दीहाइं ॥ ६९ ॥
छच्चुन्नयाइं रत्ताइं सत्त एएसि विवरणं भणिओ । नाभी-सर-सत्ताइं तिन्नि इमाइं गभीराइं ॥ ७० ॥

लध्वौष्ठोदुःखभागी सुभगः पीनौष्ठो मुणितव्यः । भोगी च प्रलम्बौष्ठो विषमौष्ठो भीरुको भणितः ॥ ५८ ॥
शुद्धाः समाः प्रशस्ता घनाः स्निग्धाश्च शिखरिणोदन्ताः । रक्तं तालुं सुभगं कृष्णं नीलं च दुःखहेतुः ॥ ५९ ॥
द्वात्रिंशद्भयो नरपतिरेकत्रिंशद्भयो भोगसुखभागी । त्रिंशद्भयो मध्यमगुणो दन्तानामतः परमशुभः ॥ ६० ॥
सारस-हंसादिस्वराः सुभगा वायस-खरस्वरा दुःखिताः । सरलाश्च श्लक्ष्णविवराः समुन्नतनासिका धन्याः ॥ ६१ ॥
आयतविपुलौ कर्णौ धन्यानां लोमसौ चिरायुषाम् । मूषककर्णा मेघाविनश्च दुःखिताः शशककर्णाः ॥ ६२ ॥
उच्छलद्दृष्टयः स्तोकजीविनो भोगिनो विपुलदृष्टयः । पापानामधोदृष्टिः सरलं पश्यति ऋजुमतिः ॥ ६३ ॥
तिर्यक् पश्यन्ति क्रूरा धन्याः पुनरुर्ध्वदृष्टयो भवन्ति । काणाद्वरमन्धःकेकतराद्वरं काणः ॥ ६४ ॥
विपुलमर्द्धेन्दुसमं धन्यानां नराणां भवति भालतलम् । अतिविपुलं दुःखितानामतितुच्छं तुच्छजीवानाम् ॥ ६५ ॥
वामावर्त्तो भ्रमरोऽप्रशस्तः शीर्षवामपार्श्वे । स दक्षिणे पार्श्वे भवति शुभो दक्षिणावर्तः ॥ ६६ ॥
भ्रमरयो र्विपर्यासे भोगा जायन्ते पञ्चिमवयसि । छत्राकारं शीर्ष भवति नरेन्द्राणामथ केशाः ॥ ६७ ॥
स्निग्धा घनाः प्रशस्ता मृदुका आकुञ्चिताश्च ते धन्याः । स्फुटिता मलिना ऋक्षा दारिद्रकरा भवेयुश्चिकुराः ॥ ६८ ॥
अपरं च–
त्रिणि च गभीराणि त्रिणि च विपुलानि भवन्ति धन्यानि । ह्रस्वानि चत्वारि सूक्ष्माणि पञ्च पञ्चैव दीर्घाणि ॥ ६९ ॥
षट् चोन्नतानि रक्तानि सप्तैतेषां विवरणं भणामि । नाभि-स्वर-सत्त्वानि त्रिणीमानि गम्भीराणि ॥ ७० ॥

वयणं उरं निडालं विउलाइं इमाइं तिन्नि धन्नाणं । लिंगं पिट्ठं कंठो जंधा चत्तारि हुस्साइं ॥ ७१ ॥
केस-दसणं-ऽगुलीपव्व-नह-तया पंच मुणइ सुहमाणि । हणु-नयण-थणंतर-बाहु-नासिया पंच दीहाइं ॥ ७२ ॥
छच्चुन्नयाइं नह-हियय-नासिया-कक्खकंठ-वयणाइं । नयणंत-ओट्ठ-कर-चरण-जीह-नह-तालु रत्ताई ॥ ७३ ॥
पंचहिं जीवंति सयं नउइं भालम्मि चउहिं रेहाहिं । ति-दु-एक्काहिं कमसो सट्ठी चालीस तीसा य ॥ ७४ ॥
इय जा महिंदसीहो तीसे नरलक्खणं कहइ कुसलो । तावुट्ठिओ कुमारो भणिओ य महिंदसीहेण ॥ ७५ ॥
सामि ! तुम विरहदुहिओ ताओ अंबा य चिट्ठइ सदुक्खं । तो गम्मउ नियनयरं इय भणिए गयणमग्गेणं ॥ ७६ ॥
सिग्धं चिय संपत्तो कमेण रज्जेऽहिसिंचिओ पिउणा । जाओ य चक्कवट्टी सुहसाहियभरहछक्खंडो ॥ ७७ ॥
अह सक्केणं रूवम्मि वण्णिए तस्स सुरसहामज्झे । दो देवा तं वयणं असद्दहंता गयपुरम्मि॥ ७८ ॥
माहणरूवं काउं दूरपहागमणकहियतणुखेया । पडिहारवयणवारियमज्झपवेसा पडिक्खंति ॥ ७९ ॥
पज्झयणमुहलवयणा मुद्धट्ठियकविलकेसपब्भारा । वच्छत्थलविलसिरचंदधवलजन्नोवइयरुइरा ॥ ८० ॥
सिंगग्गलग्गदवजलणगरुयजालाकलावपडहच्छा । पवडंतबंभसुत्तिनिम्मलनिज्झरणरमणीया ॥ ८१ ॥
वेयज्झयणमणोहरसउणगणारावमुहलियदियंता । महिहरसद्दायन्नणसमस्सिया सज्झ-विंज्झ व्व ॥ ८२ ॥
रायाणुन्नाए पवेसिया निवं विहियण्हाणनेवच्छं । अणमिसनयणा पेच्छंति रंजिया रायरूवेण ॥ ८३ ॥
रन्ना भणिया नियरूवसंपयागव्वमुव्वहंतेण । भो ! मह रूवं सम्मं पेच्छिय गच्छिहह सट्ठाणं ॥ ८४ ॥

वदनमुरसं निडालं विपुलानीमानि त्रिणि धन्यानाम् । लिङ्गं पृष्टं कण्ठो जङ्घा चत्वारि हृस्वानि ॥ ७१ ॥
केश-दशनांगुलीपर्व-नख-त्वचा पञ्च मुण सूक्ष्माणि । हनु-नयन-स्तनान्तर-बाहु-नासिका पञ्च दीर्घाणि ॥ ७२ ॥
षट् चोन्नतानि नख-हृदय-नासिका-कक्ष-कण्ठ-वदनानि । नयनान्तौष्ठ-कर-चरण-जीव्हा-नख-तालु रक्तानि ॥ ७३ ॥
पञ्चभि जीवन्ति शतं नवति भाले चतुर्भी रेखाभिः । त्रि-द्वयैकाभिः क्रमशः षष्ठि चत्वारिंशत् त्रिंशच्च ॥ ७४ ॥
इतियावत् महेन्द्रसिंहस्तस्या नरलक्षणं कथयति कुशलः । तावदुत्थितः कुमारो भणितश्च महेन्द्रसिंहेन ॥ ७५ ॥
स्वामिन् ! तव विरहदुःखितस्तातोऽम्बा च तिष्ठति सुदुःखम् । ततो गम्यतां निजनगरमिति भणिते गगनमार्गेण ॥ ७६ ॥
शीघ्रं चैव सम्प्राप्तः क्रमेण राज्येऽभिषिञ्चितः पित्रा । जातश्च चक्रवर्ती सुखसाधितभरतषट्खण्डः ॥ ७७ ॥
अथ शक्रेण रुपे वर्णिते तस्य सुरसभामध्ये । द्वौ देवौ तद्वचनमश्रद्धन्तौ गजपुरे ॥ ७८ ॥
माहनरुपं कृत्वा दूरपथागमनकथिततनुखेदौ । प्रतिहारवचनवारितमध्यप्रवेशौ प्रतीक्षेते ॥ ७९ ॥
पर्ययनमुखरवदनौ मुर्द्धस्थितकपिलकेशप्राग्भारौ । वक्षःस्थलविलसच्चन्द्रधवलयज्ञोपवित्तरुचिरौ ॥ ८० ॥
शृङ्गाग्रलग्नदवज्वलनगुरुकज्वालाकलापपटहाच्छौ । प्रपतद्ब्रह्मसूत्रनिर्मलनिर्झरणरमणीयौ ॥ ८१ ॥
वेदाध्ययनमनोहरशकुनगणारावमुखरितदिगन्तौ । महिधरशद्बाकर्णनसमाश्रितौ सह्य-विन्ध्याविव ॥ ८२ ॥
राजानुज्ञया प्रवेशितौ नृपं विहितस्नाननेपथ्यम् । अनिमिषनयनौ पश्यतो रञ्जितौ राजरुपेण ॥ ८३ ॥
राज्ञा भणितौ निजरुपसंपद्गर्वमुद्वहता । भो ! मम रुपं सम्यग्दृष्ट्वा गच्छतां स्वस्थानम् ॥ ८४ ॥

एवं ति भणिय पेच्छंति जावऽलंकारियस्स से रूवं । तो वाहिसंकमे रूवहाणिमवलोइय विसन्ना ॥ ८५ ॥

पयडियरूवा कहिऊण वाहिसंकंतिमइगया सग्गं । राया वि हु नियदेहं दट्ठुं परिभावइ मणम्मि ॥ ८६ ॥

जलजायबुब्बुयाओ वि गयणगयविज्जुविलसियाओ वि । खलमेत्तीओ वि कुसग्गलग्गचलजललवाओ वि ॥८७॥

सरयधणाउ वि संझारायाउ वि खरसमीरणाओ वि । संसारियवत्थूणं धिरत्थुमथिरत्तणमिमाण ॥ ८८ ॥

तम्हा अथिरेण थिरं निच्चमणिच्चेण सुहयमसुहेण । देहेणिमिणा धम्मं किणामि किं बहुवियप्पेण ? ॥ ८९ ॥

इय पसरियसंवेगो तणं व चइऊण चक्कवट्टिसिरिं । विणयंधरगुरुपासे निक्खंतो सो महासत्तो ॥ ९० ॥

निहिणो [1]रयणाणाऽऽभोगिया य अंतेउरं च पलवंतं । चउरंगबलं भमियं पट्ठीए तस्स गुणनिहिणो ॥ ९१ ॥

छम्मासे जाव परं जाओ सिंहावलोयणेणावि । निस्संगसिरोमणिणा अवलोइय ते ण मणयं पि ॥ ९२ ॥

पारणयदिणे छट्ठस्स छेलियातक्कसंजुओ लद्धो । चीणयकूरो भुत्तम्मि तम्मि अप्पत्थसेवणओ ॥ ९३ ॥

आवइपडियं सुयणं व दुज्जणा इव गया बहुं कुविया । ते बाहिउं पयत्ता पयडीहोऊण मुणिनाहं ॥ ९४ ॥

तथाहि-

पढमं मणयं सोक्खं कंडुयमाणस्स तयणु दाहदुहं । मज्जंति नहा जीए सा कंडू से समुप्पन्ना ॥ ९५ ॥

असुहच्छी रणरणओ रोया अन्ने वि सयगुणा जम्मि । आहाररुइरूवो संजाओ से महारोगो ॥ ९६ ॥

उत्तोलिज्जइ चक्खू गलंति नयणाइं संकुडइ दिट्ठी । जम्मि न निद्दालाहो सो जाओ अक्खिरोगो से ॥ ९७ ॥

एवमिति भणित्वा पश्यतो यावदलङ्कृतस्य तस्य रुपम् । तदा व्याधिसङ्क्रमे रुपहानिमवलोक्य विषण्णौ ॥ ८५ ॥

प्रकटितरुपौ कथयित्वा व्याधिसङ्क्रान्तिमतिगतौ स्वर्गम् । राजापि हु निजदेहं दृष्ट्वा परिभावयति मनसि ॥ ८६ ॥

जलजातबुद्बुदा इव गगनगतविद्युद्विलसिता अपि । खलमैत्र्योऽपि कुशाग्रलग्नचलजललवा अपि ॥ ८७ ॥

शरदघना अपि सन्ध्यारागा अपि खरसमीरणा अपि । सांसारिकवस्तूनां धिगस्त्वस्थिरत्वमेतेषाम् ॥ ८८ ॥

तस्मादस्थिरेण स्थिरं नित्यमनित्येन सुभगमशुभेन । देहेनानेन धर्मं क्रीणामि किं बहुविकल्पेन ? ॥ ८९ ॥

इति प्रसृतसंवेगस्तृणमिव त्यक्त्वा चक्रवर्त्तिश्रियम् । विनयंधरगुरुपार्श्वे निष्क्रान्तः स महासत्त्वः ॥ ९० ॥

निधयो रत्नान्याभोगिकाश्चान्तःपुरं च प्रलपन्तम् । चतुरङ्गबलं भ्रान्तं पृष्टे तस्य गुणनिधेः ॥ ९१ ॥

षण्मासान्यावत्परं जातः सिंहावलोकनेनापि । निःसङ्गशिरोमणिनावलोक्य तान्न मनागपि ॥ ९२ ॥

पारणकदिने षष्ठस्याजातक्रसंयुक्तो लब्धः । चीनककूरो भुक्ते तस्मिन्नपथ्यसेवनात् ॥ ९३ ॥

आपत्पतितं सज्जनं वा दुर्जनमिव गता बहु कुपिताः । ते बाधितुं प्रवृत्ताः प्रकटीभूत्या मुनिनाथम् ॥ ९४ ॥

तथाहि —

प्रथमं मनाक् सौख्यं कण्डूयमानस्य तदनु दाहदुःखम् । मज्जन्ति नखा यस्यां सा कण्डूस्तस्य समुत्पन्ना ॥ ९५ ॥

अशुभाक्षी रणरणको रोगा अन्येऽपि शतगुणा यस्मिन् । आहारारुचिरुपः सञ्जातस्तस्यमहारोगः ॥ ९६ ॥

उत्तोल्यते चक्षु र्गलन्ति नयनानि सङ्कोचति दृष्टी । यस्मिन्न निद्रालाभः स जातोऽक्षिरोगस्तस्य ॥ ९७ ॥

---

१. रत्नानि 'आभियोगिकाश्च' किङ्करदेवाश्च ।

अणवरयजठरसंभववायावत्तुब्भवा महापीडा । जम्मि भवे महरिसिणो सो जाओ कुक्खिवाही वि ॥ ९८ ॥

पबलुद्धसमीरनसुच्छलंतगुरुसासभरियहिययपहो । उक्खणियसव्वगत्तो कासो सो तस्स संजाओ ॥ ९९ ॥

सव्वरुयाणं पभवो महागओ जीवसत्तनिम्महणो । अइदुसहो तिव्वजरो संजाओ तस्स तवनिहिणो ॥ १०० ॥

पूरिज्जमाणहियओ दुव्विसहो गमणखलणसंजणओ । कासविसेसो सासो वि तस्स तइया समुप्पन्नो ॥ १०१ ॥

भणियं च-

"कंडू अभत्तसद्धा तिव्वा वियणा य अच्छि-कुच्छीसु । कासं जरं च सासं अहियासे सत्त वाससए ॥ १०२ ॥

एगेगो वि हु एसोऽवरस्स जीवियहरो न संदेहो । सो उण सत्त वि समगं अहियासइ ते महासत्तो ॥ १०३ ॥

वाहिसमूहो सो तारिसो वि परलोयबद्धलक्खम्मि । सज्झाय-झाणवावडमणम्मि असमाणुभावम्मि ॥ १०४ ॥

आबाहं वाबाहं व तम्मि न कुणइ मणागमवि अहवा । आवडिओ वज्जसिलायलम्मि किं कुणउ सत्थगणो ? ॥ १०५ ॥

सम्ममहियासमाणस्स रोयनियरं विसुद्धलेसस्स । जायाओ तस्स दुक्करतवचरणपभावजणियाओ ॥ १०६ ॥

आमोसहि-विप्पोसहि-खेलोसहिपभिइओ अणेगाओ । पत्थुयरोयावहरणकरणसत्थाओ लद्धीओ ॥ १०७ ॥

परमेसो न सयं चिय कुणइ चिगिच्छं, न करावइ अन्नं । निप्पडिकम्मसरीरो परिभावइ एरिसं[१]-जीव ! ॥ १०८ ॥

अणुहवसु सकयमेयं इहइं चिय कज्जकारिणो दंडो । अकयं को वि न पावइ भगीरही नागवहणं व ॥ १०९ ॥

पुणरवि सुरनाहोऽसंखदेवभडकोडिसंकडत्थाणे । उब्भडकिरीड-केऊर-कडय-वरकुंडलाहरणो ॥ ११० ॥

अनवरतजठरसम्भववातावर्तोद्भवा महापीडा । यस्मिन्भवे महर्षिणः स जातः कुक्षिव्याधिरपि ॥ ९८ ॥

प्रबलोर्ध्वसमीरवशोच्छलद्गुरुश्वासभृतहृदयपथः । उत्खनितसर्वगात्रः काशः स तस्य सञ्जातः ॥ ९९ ॥

सर्वरुजां प्रभवो महागदो जीवसत्त्वनिर्मथनः । अतिदुःसहस्तीव्रज्वरःसञ्जातस्तस्य तपोनिधेः ॥ १०० ॥

पूर्यमाणहृदयो दुर्विषहो गमनस्खलनसञ्जातः । काशविशेषःश्वासोऽपि तस्य तदा समुत्पन्नः ॥ १०१ ॥

भणितं च -

कण्ड्वभक्तश्रद्धा तीव्र वेदना चाक्षि-कुक्षिषु । काशं ज्वरं च श्वासमध्यास्यते सप्तवर्षशतान् ॥ १०२ ॥

एकैकोऽपि ह्वेषोऽपरस्य जीवितहरो न सन्देहः । स पुनः सप्तापि समग्रमध्यास्यते तान् महासत्त्वः ॥ १०३ ॥

व्याधिसमूहः स तादृशोऽपि परलोकबद्धलक्षे । स्वाध्याय-ध्यानव्यापृतमनस्यसमानुभावे ॥ १०४ ॥

आबाधां व्याबाधां वा तस्मिन्न करोति मनागमप्यथवा । आपतितो वज्रशीलातले किं करोतु सार्थगणः ? ॥ १०५ ॥

सम्यगध्यास्यमानस्य रोगनिकरं विशुद्धलेश्यस्य । जातास्तस्य दुष्करतपश्चरणप्रभावजनिताः ॥ १०६ ॥

आमौषधि-विप्रौषधि-खेलौषधि प्रभृतयोऽनेकाः । प्रस्तुतरोगापहरणकरणसमर्था लब्धयः ॥ १०७ ॥

परमेष न स्वयं चैव करोति चिकित्सां न कारयत्यन्यम् । निष्प्रतिकर्मशरीरः परिभावयत्येदृशं-जीव ! ॥ १०८ ॥

अनुभव स्वकृतमेतदिह चैव कार्यकरिणो दण्डः । अकृतं कोऽपि न प्राप्नोति भगीरथी नागवधनमिव ॥ १०९ ॥

पुनरपि सुरनाथोऽसंख्यदेवभटकोटिसंकटास्थाने । उद्भटकिरीट-केयूर-कटक-वरकुण्डलाभरणः ॥ ११० ॥

---

१. एरिसं चेव रं. ।

जम्मन्तरनिरुवमगरुयपुन्नपब्भारवससमुब्भूए । अणुभवमाणो पंचप्पयारसुरसंभवे भोए ॥ १११ ॥

पेच्छइ पडिपुन्नं मणुयलोयवित्थारमोहिणा सम्मं । तत्थ वि य वाहिविहुरियसरीरमप्पाण झाणगयं ॥ ११२ ॥

तेएण रविं व सणंकुमाररायरिसिमायरेण तओ । भुवणच्चब्भुयत्तच्चरियरंजिओ भणइ गुरुसद्दं ॥ ११३ ॥

भो भो देवा ! एसो सणंकुमारो निरीहरायसिरी । अच्चंतवाहिविहुरियतणू वि न चिगिच्छमायरइ ॥ ११४ ॥

तं सोऊणं ते चेव पुव्वदेवा दुवे असद्दहणा । विउरुव्विय सव्वं सबरवेज्जरूवं समणुपत्ता ॥ ११५ ॥

रायरिसिं पइ बाहीण नामगाहं भमंति भासंता । खंधावलंबिपुट्टलयदव्वकोत्थलयरूवधरा ॥ ११६ ॥

तत्तो रिसिणा सज्झाय-झाणवाधायकारया एए । इय बुद्धीए भणिया भो ! किमिह निरत्थयं भमह ? ॥ ११७ ॥

तेहुत्तं तुज्झ वयं कुणिमो करियं गयामिभूयस्स । मुणिणा वि हु केरिसयं मह किरियं कुणह ? ते भणिया ॥११८॥

किं दव्ववाहिकिरियं ? उयाहु मे कम्मभावगयकिरियं[१] ? । तेहुत्तं केरिसया दव्वे भावम्मि वा किरिया ? ॥११९॥

मुणिणा भणियं दुन्नि वि चउव्विहाओ इमाओ भणियाओ । दव्वकिरियाए इणमो चउव्विहत्तं भणंति बुहा ॥ १२०॥

तद्यथा-

भिषग् द्रव्याण्युपस्थाता, रोगी पादचतुष्टयम् । चिकित्सितस्य निर्दिष्टं, प्रत्येकं च चतुर्गुणम् ॥ १२१ ॥

दक्षो विज्ञातशास्त्रार्थो, दृष्टकर्मा शुचिर्भिषग् । बहुकल्पं बहुगुणं, सम्पन्नं योग्यमौषधम् ॥ १२२ ॥

विनीतो लोभजित् क्षान्तो बुद्धिमान् प्रतिचारकः । रोगी त्वाढ्यो भिषग् वश्यो ज्ञापकः सत्त्ववानिति ॥ १२३ ॥

एयाए दव्ववाही असायकम्मक्खओवसमभावा । दव्वाईए सहकारिकारणे पप्प खयमेइ ॥ १२४ ॥

जन्मान्तरनिरुपमगुरुकपुण्यप्राग्भारवशसमुद्भूतान् । अनुभवन् पञ्चप्रकारसुरसम्भवान् भोगान् ॥ १११ ॥

प्रेक्षते प्रतिपूर्णं मनुष्यलोकविस्तारमवधिना सम्यग् । तत्रापि च व्याधिविधूरितशरीरमात्मानं ध्यानगतम् ॥ ११२ ॥

तेजसापि रविमिव सनत्कुमारराजर्षिमादरेण ततः । भुवनाश्चर्यभूततच्चरित्ररञ्जितो भणति गुरुशद्बम् ॥ ११३ ॥

भो भो देवाः ! एष सनत्कुमारो निरीहराजश्रीः । अत्यन्तव्याधिविधूरिततनुरपि न चिकित्सामाचरति ॥ ११४ ॥

तत् श्रुत्वा तौ चैव पूर्वदेवौ द्वावश्रद्धन्तौ । विकुर्व्यसर्वं शबरवैद्यरुपं समनुप्राप्तौ ॥ ११५ ॥

राजर्षिं प्रति व्याधीनां नामग्राहं भ्रमतो भाषमाणौ । स्कन्धावलम्बिपोट्टलकद्रव्यकोत्थलकरुपधरौ ॥ ११६ ॥

तत्र ऋषिणा स्वाध्याय-ध्यानव्याघातकारकावेतौ । इति बुद्ध्या भणितौ भो ! किमिह निरर्थकं भ्रमतम् ॥ ११७ ॥

ताभ्यामुक्तं तवावां कुर्वः क्रियां गदाभिभूतस्य । मुनिनापि हु कीदृशां मम क्रियां कुरुतं ? तौ भणितौ ॥ ११८ ॥

किं द्रव्यव्याधिक्रियां ? उताहोहु मे कर्मभावगदक्रियाम् ? । ताभ्यामुक्तं कीदृशा द्रव्ये भावे वा क्रिया ? ॥ ११९ ॥

मुनिना भणितं द्वावपि चतुर्विद्या इमा भणिताः । द्रव्यक्रियाया इमं चातुर्विधत्वं भणन्ति बुधाः ॥ १२० ॥

एतस्माद् द्रव्यव्याधिरशातकर्मक्षयोपशमभावात् । द्रव्यादिकान् सहकारिकारणान् प्राप्य क्षयमेति ॥ १२४ ॥

---

१. कर्मभावगदिक्रियाम् ।

नवरमणेगंतभवो एसोऽणच्चंतिओ य नायव्वो । जं दव्वाओ अपहाणभावखवणाओ संजाओ ॥ १२५ ॥
भणियं च-
कायकिरियाए दोसा खविया मंडुक्कचुन्नसरिस त्ति । भावकिरियाए पुण.......................... ॥ १२६ ॥
..................वाहिहेउणोऽसायभावरूवस्स । कम्मस्स खवणओ भावओ य खवणाओ भावखओ ॥ १२७ ॥
एगंतिओ य एसो नेओ अच्चंतिओ य भावखओ । पुणरवि य अखवणाओ विसिट्ठसुहकारणाओ य ॥ १२८ ॥
एयाए पुण वेज्जो सत्थत्थविसारओ सुई सोमो । किरियाकलावकुसलो सत्तहिओ सुहगुरू नेओ ॥ १२९ ॥
दव्वाणि नाण-दंसण-चरणाणि रसायणकप्पाणि । तइओसहसरिसाणि य परिणामसुहाणि नेयाणि ॥१३०॥
पडिचारगा उ इह धम्मबंधुणो मोक्खकंखिणो मुणिणो । खंता दंता मुत्ता जिइंदिया विणयसंपन्ना ॥ १३१ ॥
रोगी पत्थुयसाहू गुरुआणाकारगो महासत्तो । इहलोयनिप्पिवासो सिद्धिवहूबद्धरागो य ॥ १३२ ॥
एआए भावकिरियाए वट्टमाणा पवज्जियपमाया । परमारोग्गं पावंति सिवसुहं पहयदुहजाला ॥ १३३ ॥
ता भो महाणुभावा ! एयाए मज्झ दव्वकिरियाए । उवरिं न पक्खवाओ किमेत्थ भणिएण बहुएण ? ॥ १३४ ॥
जइ पुण होज्जऽहिलासो एईए दव्ववाहिदलणीए । ता अलमिमीए पेच्छह सामत्थं मज्झ लद्धीए ॥ १३५ ॥
इय वोत्तूणं तेसिं समक्खमह नियवयणकुहराओ । घेत्तुं निट्ठुहणं वामतज्जणी मद्दिया दूरं ॥ १३६ ॥
पेच्छंति सड्ढसोलसवण्णियकणगोवमं तयं सव्वं । विम्हहयमणे ते भणइ सबरवेज्जे य रायरिसी ॥ १३७ ॥

नवरमनेकान्तभव एषोऽनात्यन्तिकश्च ज्ञातव्यः । यद् द्रव्यादप्रधानभावक्षपणात् सञ्जातः ॥ १२५ ॥
भणितं च—
कायक्रियया दोषाः क्षपिता मण्डुकचूर्णसदृशा इति । भावक्रियया पुनः .... ॥ १२६ ॥
.... व्याधिहेतवोऽशातभावरुपस्य । कर्मणः क्षपणाद्भावाच्च क्षपणाद्भावक्षयः ॥ १२७ ॥
एकान्तिकश्चैष ज्ञेयोऽत्यन्तिकश्च भावक्षयः । पुनरपि चाक्षपणाद्विशिष्टसुखकारणाच्च ॥ १२८ ॥
एतस्याः पुन वैद्यः शास्त्रार्थविशारदः शुचिः सौम्यः । क्रियाकलापकुशलः सत्त्वहितः सुगुरु र्ज्ञेयः ॥ १२९ ॥
द्रव्याणि ज्ञान-दर्शन-चरणानि रसायणकल्पानि । तृतीयौषधसदृशानि च परिणामसुखानि ज्ञेयानि ॥ १३० ॥
प्रतिचारकास्त्विह धर्मबन्धवो मोक्षकाङ्क्षिणो मुनयः । क्षान्ताः दान्ता मुक्ता जितेन्द्रिया विनयसम्पन्नाः ॥ १३१ ॥
रोगी प्रस्तुतसाधु गुर्वाज्ञाकारको महासत्त्वः । इहलोकनिष्पिपासः सिद्धिवधुबद्धरागश्च ॥ १३२ ॥
एतस्यां भावक्रियायां वर्तमानाः प्रवर्जितप्रमादाः । परमारोग्यं प्राप्नुवन्ति शिवसुखं प्रहतदुःखज्वालाः ॥ १३३ ॥
ततो भो महानुभावौ ! एतस्या मम द्रव्यक्रियायाः । उपरि न पक्षपातः किमत्र भणितेन बहुना ? ॥ १३४ ॥
यदि पुन र्भवेदभिलाषोऽनया द्रव्यव्याधिदलन्या । तावदलमनया पश्यतं सामार्थ्यं मम लब्ध्याः ॥ १३५ ॥
इत्युक्त्वा तयोः समक्षमथ निजकवदनकुहरात् । गृहीत्वा निष्ठिवनं वामतर्जनी मर्दिता दूरम् ॥ १३६ ॥
पश्यतः सार्धषोडशवर्णिककनकोपमां तकत्सर्वम् । विस्मितमनसौ तौ भणतिः शबरवैद्यौ च राजर्षिः ॥ १३७ ॥

भो भो ! जह एयं निययमंगुलिं काउमहमिह समत्थो । तह सव्वं पि सरीरं काउं मह अत्थि तवसत्ती ॥ १३८ ॥

किंतु इय लद्धिउवजीवणम्मि जायम्मि भावकिरियाए । होइ अपत्थासेवणरूवो दोसो जओ भणियं ॥ १३९ ॥

जह वाहिओ उ किरियं पवज्जिउं सेवई अपत्थं तु । अपवन्नगाओ अहियं सिग्धं च स पावइ विणासं ॥ १४० ॥

एमेव भावकिरियं पवज्जिउं कम्मबाहिखयहेउं । पच्छा अपत्थसेवी अहियं कम्मं समज्जिणइ ॥ १४१ ॥

अवरं च-

कारणपडिसेवा वि हु सावज्जा निच्छएण करणिज्जा । बहुसो वियारइत्ता अवारणिज्जेसु कज्जेसु ॥ १४२ ॥

जइ वि हु समणुन्नाया तह वि हु दोसो न वज्जणे दिट्ठो । दढधम्मया हु एवं न य भिक्खनिसेवनिद्दयया ॥ १४३ ॥

ता भो ! न भावकिरियामालिन्नकरिं अहं करावेमि । तुब्भेहिं दव्वकिरियं पज्जत्तमइप्पसंगेण ॥ १४४ ॥

चिंतियमिमेहिं सच्चं पयंपई सव्वहेव सुरनाहो । ठाणे गुणाणुराओ गरुयाणं मच्छरो को ने ? ॥ १४५ ॥

संहरियविज्जवेसा साहावियरूवसुंदरावयवा । मणिरयणघडियभूसणकलावपहभासुरसरीरा॥ १४६ ॥

ते विजय-वेजयंता देवा सिररइयकरकमलकोसा । रायरिसिं सुहभावा उवट्ठिया तं पसाएउं ॥ १४७ ॥

गयणाभोयं पिय पयइवित्थयं निम्मलं निरुवलेवं । तारपहानिन्नासिसतमपसरा सूर-ससिणो व्व ॥ १४८ ॥

धन्नो सि तुमं कयलक्खणओ सि मुणिनाह ! सुकयपुन्नो सि । तुज्झ सुलद्धं जम्मणजीवियजणियं सुहं च फलं ॥ १४९ ॥

जं सक्को देविंदो सुरराया [1] तं सलाहइ गुणन्नू । सुरकोडीप[2]रियरिओ सोहम्माए सुरसभाए ॥ १५० ॥

भो भो ! यथेतां निजकमङ्गुलिंकर्तुमहमिह समर्थः । तथा सर्वमपि शरीरं कर्तुं ममास्ति तपःशक्तिः ॥ १३८ ॥

किन्त्वेवं लब्ध्युपजीवने जाते भावक्रियायाम् । भवत्यपथ्यासेवनरुपो दोषो यतो भणितम् ॥ १३९ ॥

यथा व्याधितस्तु क्रियां प्रपद्य सेवतेऽपथ्यं तु । अप्रपन्नकादधिकं शीघ्रं च प्राप्नोति विनाशम् ॥ १४० ॥

एवमेव भावक्रियां प्रपद्य कर्मव्याधिक्षयहेतुम् । पश्चादपथ्यसेव्यधिकं कर्म समर्जयति ॥ १४१ ॥

अपरं च–

कारणप्रतिसेवापि हु सावद्या निश्चयेन करणीया । बहुशो विचार्यावारणीयेषु कार्येषु ॥ १४२ ॥

यद्यपि हु समनुज्ञाता तथापि हु दोषो न वर्जने दृष्टः । दृढधर्मका ह्वेवं न च भिक्षानिसेवनिर्दयया ॥ १४३ ॥

ततो भो ! न भावक्रियामालिन्यकरीमहं कारयामि । युष्मद्भ्यां द्रव्यक्रियां पर्याप्तमतिप्रसंगेन ॥ १४४ ॥

चिन्तितमिमाभ्यां सत्यं प्रजल्पति सर्वथैव सुरनाथः । स्थाने गुणानुरागो गुरुकाणां मत्सरः को ने ? ॥ १४५ ॥

संहृतवैद्यवेशौ स्वाभाविकरुपसुन्दरावयवौ । मणिरत्नघटितभूषणकलापप्रभाभासुरशरीरौ ॥ १४६ ॥

तौ विजय-वैजयन्तौ देवौ शिरोरचितकरकमलकोशौ । राजर्षिणं शुभभावादुपस्थितौ तं प्रसाद्य ॥ १४७ ॥

गगनाभोगमिव प्रकृतिविस्तृतं निर्मलं निरुपलेपम् । ताराप्रभानिर्णाशिततमःप्रसरौ सूर्य-शशिनाविव ॥ १४८ ॥

धन्योऽसि त्वं कृतलक्षणोऽसि मुनिनाथ! सुकृतपुण्योऽसि । तव सुलब्धं जन्मजीवितजनितं सुखं च फलम् ॥ १४९ ॥

यत् शक्रो देवेन्द्रः सुरराजा त्वां श्लाधते गुणज्ञः । सुरकोटिपरिवृत्तः सौधर्मायां सुरसभायाम् ॥ १५० ॥

---

१. त्वां श्लाघते गुणज्ञः । २. परिकरितः – परिवृतः ।

तं च असद्दहमाणा समागया तुह परिक्खणनिमित्तं । जं भे झाणविधाओ विहिओ तं खमह अम्हाण ॥ १५१ ॥

इय मुणिसणंकुमारं खमाविउं लद्धिसंपयाभवणं । आणंदनिब्भरंगा कुसलमणा थुणिउमाढत्ता ॥ १५२ ॥

जय चत्तकुमार ! सणंकुमार ! वररूवनिज्जिय कुमार ! । सक्कपसंसिय ! भयवं ! तुज्झ नमो होउ मुणिनाह ! ॥१५३॥

जय तणसममन्नियचक्कवट्टिछक्खंडवसुहविच्छड्डु ! । अंगीकयतवसंजम ! तुज्झ नमो होउ मुणिनाह ! ॥ १५४ ॥

जय अंतरंगरिउवग्गसेन्नमाहप्पदलणदुल्ललिय ! । पत्तमहामुणिवन्नण ! तुज्झ नमो होउ मुणिनाह ! ॥ १५५ ॥

जय विविहवाहिसमवायजणियवियणाऽविसन्नमणपसर ! । अविचलसत्तमहानिहि ! तुज्झ नमो होउ मुणिनाह ! ।१५६।

जय अववायविवज्जियदुक्करउस्सग्गपक्खसेवणओ । पालियपंचमहव्वय ! तुज्झ नमो होउ मुणिनाह ! ॥ १५७ ॥

जय अम्हवयणवज्जरियवाहिसंकंतिमेत्तसवणाओ । अवगयतत्त ! महामइ ! तुज्झ नमो होउ मुणिनाह ! ॥ १५८ ॥

जय दुव्वहअट्ठारससीलंगसहस्सभरसमुव्वहणे । धोरेयधवलसमगुण ! तुज्झ नमो होउ मुणिनाह ! ॥ १५९ ॥

जय विविहमहातवलद्धिसिंधुसमवायपायनइनाह ! । संहरियमणोविक्किय ! तुज्झ नमो होउ मुणिनाह ! ॥ १६० ॥

इय थुणिय मुणियतव्वयमाहप्पकहापवंचणसयण्हा । सुमरंता तग्गुणनियरमालयं सं वइंसु[१] सुरा ॥ १६१ ॥

साहू वि नियमाउयपज्जंतं जाणिऊण सुहलेसो। संवेगभावियप्पा गीयत्थगुरूण पासम्मि ॥ १६२ ॥

वियडित्तु[२] नाण-दंसण-चरित्त-तव-वीरियाण विसयम्मि । अइयारजायमुच्चारिऊण सम्मं गुरुरुवयाणि ॥१६३॥

तं चाश्रद्धन्तौ समागतौ तव परीक्षणनिमित्तम् । यन्मे ध्यानविधातो विहितस्तत् क्षमध्वमावाम् ॥ १५१ ॥

इति मुनिसनत्कुमारं क्षमयित्वा लब्धिसंपद्भवनम् । आनन्दनिर्भराङ्गौ कुशलमनसौ स्तोतुमारब्धौ ॥ १५२ ॥

जय त्यक्तकुमार ! सनत्कुमार ! वररुपनिर्जितकुमार ! । शक्रप्रशंसित ! भगवन् ! तुभ्यं नमो भवतु मुनिनाथ ! ॥ १५३ ॥

जय तृणसममतचक्रवर्तिषट्खण्डसुखविभव ! । अङ्गीकृततपःसंयम ! तुभ्यं नमो भवतु मुनिनाथ ! ॥ १५४ ॥

जयान्तरङ्गारिपुवर्गसैन्यमाहात्म्यदलनदुर्ललित ! । प्राप्तमहामुनिवर्णन ! तुभ्यं नमो भवतु मुनिनाथ ! ॥ १५५ ॥

जय विविधव्याधिसमवायजनितवेदनाऽविषण्णमनःप्रसर ! । अविचलसत्त्वमहानिधे ! तुभ्यं नमो भवतु मुनिनाथ ! ॥१५६॥

जयापवादविवर्जितदुष्करोत्सर्गपक्षसेवनात् । पालितपञ्चमहाव्रत ! तुभ्यं नमो भवतु मुनिनाथ ! ॥ १५७ ॥

जयास्मद्वदनकथितव्याधिसंक्रान्तिमात्रश्रवणाद् । अवगततत्त्व ! महामते ! तुभ्यं नमो भवतु मुनिनाथ ! ॥ १५८ ॥

जय दुर्वहाष्टादशशीलाङ्गसहस्रभारसमुद्वहने । धौरेयधवलसमगुण ! तुभ्यं नमो भवतु मुनिनाथ ! ॥ १५९ ॥

जय विविधमहातपोलब्धिसिन्धुसमवायप्रायनदीनाथ ! । संहृतमनोविक्रिय ! तुभ्यं नमो भवतु मुनिनाथ ! ॥ १६० ॥

इति स्तुत्वा मुणिततद्व्रतमाहात्म्यकथाप्रपञ्चनसकर्णौ । स्मरन्तौ तद्गुणनिकरमालयं स्वमव्रजतां सुरौ ॥ १६१ ॥

साधुरपि निजमायुःपर्यन्तं ज्ञात्वा शुभलेश्यः । संवेगभावितात्मा गीतार्थगुरुणां पार्श्वे ॥ १६२ ॥

विकटयित्वा ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तपो वीर्याणां विषये । अतिचारजातमुच्चार्य सम्यग्गुरुव्रतानि ॥ १६३ ॥

---

१. वयंसु रं. । २. प्रकटयित्वा ।

खामेऊणं सव्वे चउगइसंसारवत्तिणो सत्ते । सुमरंतो अणवरयं हियए पंचण्ह नवकारं ॥ १६४ ॥

पडिवज्जिऊण रागाइचरडलुंटिजज्जमाणमग्गाणं । सरणम्मि साहुभूए सरणं चउरोऽरहंताई ॥ १६५ ॥

पच्चक्खिऊण पयओ चउव्विहाहारजायमवि सव्वं । आराहणापडायं घेत्तुमउण्णाणमइदुलहं ॥ १६६ ॥

कालं काऊण महासणंकुमारंगओ समाहीए । नियनामगं व कप्पं परिच्चयंतो वि तं चित्तं ॥ १६७ ॥

॥ सनत्कुमाराख्यानंक समाप्तम् ॥ १२७ ॥

जह सकयकम्मकज्जं पासजिणाईहि सम्ममहिसोढं । अवरेहि वि दुक्खमिमं तह सहियव्वं सुहत्थीहिं ॥ १ ॥

प्रस्ताव एष तव जीव ! पुनः कुतस्त्यो, भूयोऽपि मूढ ! ? मनसीति विभावयन्तः ।

यद् यत् समापतति कर्मवशादशर्म, तत् तत् समस्तमपि धीरधियः सहन्ते ॥ २ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकर्मणिकोशे विवेकिजनस्वकृत कर्मोदयोपनतदु:खाधिसहनो नाम एकचत्वारिंशोऽधिकार: समाप्त इति ॥ ४१ ॥

• • •

क्षामयित्वा सर्वाश्चतुर्गतिसंसारवर्तिनः सत्त्वान् । स्मरन्ननवरतं हृदये पञ्चानां नमस्कारम् ॥ १६४ ॥

प्रतिपद्य रागादिचरटलूट्यमानमार्गाणाम् । शरणे साधुभूतान् शरणं चत्वारान्नर्हन्तादीन् ॥ १६५ ॥

प्रत्याख्याय प्रयतश्चतुर्विधाहारजातमपि सर्वम् । आराधनापताकां ग्रहितुमपुण्यानामतिदुर्लभम् ॥ १६६ ॥

कालं कृत्वा महासनत्कुमारं गतः समाधिना । निजनामकं वा कल्पं परित्यजन्नपि तच्चित्रम् ॥ १६७ ॥

॥ सनत्कुमाराख्यानकं समाप्तम् ॥ १२७ ॥

यथा स्वकृतकर्मकार्यं पार्श्वजिनादिभिः सम्यगभिसोढम् ।
अपरैरपि दु:खमिदं तथा सोढव्यं सुखार्थिभिः ॥ १ ॥

• • •

[शास्त्रोपसंहारः]

इदानीं शास्त्रकारः शास्त्रवक्तव्यवतामुपसंहरन् शास्त्रगतपठनादिफलं च दिदर्शयिषुरिदमाह-

अक्खाणयमणिकोसं, एयं जो पढइ कुणइ जहजोगं ।
देविंद-साहुमहियं, अइरा सो लहइ अपवग्गं ॥ ५३ ॥

कृतिरियं सैद्धान्तिकशिरोमणिश्रीमन्नेमिचन्द्रसूरेरिति ॥

व्याख्या-'आख्यानकमणिकोशं' व्यावर्णिताभिधेयम् 'एतं' पूर्वोक्तस्वरूपं "जो पढइ" 'यः' पुण्यवान् 'पठति' व्यक्तं कण्ठे धारयति 'करोति' विधत्ते 'यथायोगम्' औचित्याराधनेन 'देवेन्द्र-साधुमहितं' सुरपति-मुनिपूजितम्, अपवर्गविशेषणमिदम्, 'अचिरात्' शीघ्रमेव 'सः' जीवः 'लभते' प्राप्नोति 'अपवर्गं' मोक्षमिति गाथाक्षरार्थः ॥ भावार्थस्तु अत्रापि गाथायां देवेन्द्रेति साध्ववस्थायां निजनामविशेषणमध्ये विरचितमिति ।

वृत्तिं विधाय यदिमां महतीं मयाऽऽप्तं, पुण्यं पवित्रितजगत्त्रयचित्तवृत्ति ।
तेनाशु भव्यनिवहो लभतां भवाब्धौ, सद्यानपात्रमिव बन्धुरबोधिबीजम् ॥ १ ॥

॥ आख्यानकमणिकोशवृत्तिः समाप्ता ॥

श्रीवीरनिर्वाणादद्वेसप्तषष्ठितमे सविंशतिशते (२०६७) आषाढकृष्णद्वितीयायां शुक्रनामाशुभवासरे आगमोद्धारक इति विशेषणान्विता श्रीमदानन्दसागर सूरि भट्टारकानां साम्राज्ये विशुद्ध तप-जपादिबद्धलक्ष्याणां श्रीमन्त्रवरत्नसागरसूरीश्वराणां शिष्यरत्नश्री वैराग्यरत्नसागरगणिवराणां शिष्यलवेन सागराङ्कितेन मुनिना पार्श्वरत्नेतिनामधेयेन पाली (राज.) नगरे पुज्यपादानां समस्त सूरि भट्टारकानामागौतमगणधरेणारम्भितानां परमकृपा प्रसादेनाल्पमतिसत्वेऽपि एतस्य महाकायग्रन्थस्य प्राकृतपद्य कथानक निबद्धस्य संस्कृत छायेमा सकल संघहिताय, स्व-परोपकृतये च कृत । मतिदोषमुद्रणदोषाणां यत्किञ्चि दस्मिन् प्राप्यते तत् शोध्यन्तु धीवराः ॥ शुभं भवतु श्रीसंघस्य ॥

यावच्चिरमेष ग्रन्थो विराजति श्री जिनशासने
तावच्चिरेणेमा सरला संस्कृतछाया नन्दतु ।

॥ शुभंभवतुश्रीसंघस्य ॥

● ● ●

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

ज्ञानादिरत्नवसतिर्जनमान्यलक्ष्मीजन्माग्रभूमिरभितो बहुसत्त्वसेव्यः ।
निर्धौतकर्ममलनिर्मलधर्मनीरः, क्षोणीभृदाश्रितगरिष्ठगभीरमध्यः ॥ १ ॥

अच्युतप्रवणावासो, मर्यादाऽनतिवर्तकः । अस्ति स्वच्छो बृहद्गच्छः, श्रीमान् नाथ इवाम्भसाम् ॥ २ ॥

इति नीरधितुल्यगुणे, दयासुधापास्तजन्म-रुग्-मरणे । कचिदतिशायिनि समये, शिष्टाः ! निशमयत यज्जातम् ॥ ३ ॥

मुनिविबुध(वि) धृतजिनमतमन्दरमथिमथ्यमानतन्मध्यात् । स्फूर्जन्महाप्रभावः, प्रादुरभूद् रम्यरत्नचयः ॥ ४ ॥

तथा हि-

श्रीदेवसूरिः सुमनःसमृद्धः, समुल्लसत्सत्फलपत्रशाखः । कुतोऽप्यथो आविरभूदमुष्मात्, सुरावगीतोपचिपारिजातः ॥ ५ ॥

अनेकविकृतिक्रियाकुटिलकर्मरूपामया-
ऽपहारकरणक्षमः श्रुतिविचारदक्षः शुचिः ।
प्रवृद्धकरुणामृतरसमुदपादि धन्वन्तरिः,
श्रियां पदमनागसा**मजितसूरिरर्यः**[1] सताम् ॥ ६ ॥

रुचिरचरणयोगाद् दुर्धरैरावतोऽभूदनुपममदवारिप्रोल्लसत्कीर्तिघण्टः ।
प्रकटितसकलाङ्गो मोहसैन्याप्रधृष्यो, विबुधपतिनिषेव्यः श्रीम**दानन्दसूरिः** ॥ ७ ॥

समुन्नत्याधारः स्वरगतलसल्लक्षणधरः, श्रुतिश्रेयांसिदधदपरचिह्नानि नितराम् ।
विनिर्यत्सद्धेतौ सुविषममहावादिसमरे, स्फुरत्तेजोद्दप्यत्तरलनयनोऽश्वश्चनिरगात् ॥ ८ ॥

श्रीनेमिचन्द्रसूरिर्यः कर्ता प्रस्तुतप्रकरणस्य । सर्वज्ञागमपरमार्थवेदिनामग्रणीः कृतिनाम् ॥ ९ ॥

अन्यां च सुखावगमां, यः कृतवानुत्तराध्ययनवृत्तिम् । लघुवीरचरितमथ रत्नचूडचरितं च चतुरमतिः ॥ १० ॥

शश्वत्पण्डितमण्डली कुमुदिनीकान्ताप्रमोदावहः,
सर्वज्ञागमदेशनामृतकरैर्निर्वापयन् मेदिनीम् ।
भास्वत्सन्मुनितारकेषु नियतं सन्नायकत्वं दधत्,
स श्रीमानुदियाय यो निजकुलव्योमाङ्गणालङ्कृतिः ॥ ११ ॥

सूरिः श्रीजिनचन्द्रश्चन्द्रो निःशेषजनमनोदयितः । सौम्यत्व-कलावित्त्वप्रभृतिगुणानां स्वकुलभवनम् ॥ १२ ॥

तच्छिष्यः प्रथमपदे, श्रीपदवाना**ऽऽम्रदेवसूरि**रभूत् । अपरोऽपि तत्कनिष्ठः, श्रीमान् **श्रीचन्द्रसूरि**रभूत् ॥ १३ ॥

इतश्च-

यो मेदपाटाध्युषितोऽपि धीमान्, दयाधनो धार्मिकमध्यवर्ती ।
सत्साधुताधर्मकृताभिलाषः, सुश्रावकत्वं परिपाति सम्यक् ॥ १४ ॥

---

१. 'अर्यः' पूज्यः ॥

मारावल्या अल्लकश्रेष्ठिवर्यो, मुक्त्वा स्वीयं धाम हेतोः कुतश्चित् ।
आयातोऽसावर्बुदाधःप्रदेशे, तत्राप्यासीत् स्वैर्गुणैः सुप्रसिद्धः ॥ १५ ॥

किञ्च-

कासहृदधाम्नि निजं, धर्म्यं धाम प्रवर्तितं येन । पोषधशाला सच्छ्रावकादिधर्मार्थमत्यर्थम् ॥ १६ ॥

आजन्मापि जिनेश्वरस्य सदने बिम्बे जिनाभ्यर्चने,
तीर्थानामभिवन्दने जिनमतव्यालेखनेऽलङ्कृतौ ।
श्रीमत्सूरि-महत्तरापद-जिनप्रवाजनादौ शुभं,
धर्मार्थं व्ययतो धनं सफलतां यस्याऽगमद् धीमतः ॥ १७ ॥

स **सिद्धनागः**.............सुलब्धजन्मा, सदाकृतिर्धर्मविशुद्धकर्मा । पुत्रोऽभवत् तस्य जनप्रसिद्धः, पुण्यानुभावाच्च सदा समृद्धः ॥१८॥

तस्मादपि दौस्थित्यात्, कुतोऽपि **धवलक्कके** समायातः । आस्ते स **सिद्ध**नामा, तत्रापि जने गुणैः प्रथितः ॥ १९ ॥

अन्यच्च येन कारितमतिरम्यं भव्यजनमनोहारि । **सीमन्धरजिनबिम्बं** रमणीये **मोढचैत्यगृहे** ॥ २० ॥

त्यागी भोगी देव-गुर्वादिभक्तो, जैने धर्मे प्रेमरागानुरक्तः । वार्द्धक्येऽभूदेक **उद्योतनाह्वः**, पुत्रस्तस्य त्यक्तदुष्टद्विजिह्वः ॥ २१ ॥

श्रीनेमिचन्द्रसूरेर्वाक्यात् तदनु स्वशिष्यभणनाच्च । **उद्योतनस**च्छ्रावकविशेषसद्भक्तिवचनाच्च ॥ २२ ॥

तत्रैव **बृहद्गच्छे** रत्नाकरसन्निभे प्रसूतेन । प्राकृतमणिकल्पेन, श्रुत-गुरुबहुमानसहितेन ॥ २३ ॥

श्रीपदसङ्गतनाम्ना, श्रीम**ज्जिनचन्द्रसूरि**शिष्येण । रचिता**ऽऽम्रदेवमुनिपेन** वृत्तिरेषा स्वबोधेन ॥ २४ ॥

व्याख्याप्रज्ञप्ताविव, लब्धवरायामिहापि सद्वृत्तौ । श्रुतिसुखदवर्णरुचिरा, विचित्रगम-भङ्गरमणीया ॥ २५ ॥

सुव्यक्तमेकचत्वारिंशदनूना भवेयुरधिकाराः । तत्र सतानी च विचारश्रुता अग्रयवृत्ताश्च (?) ॥ २६ ॥

सत्स्वपि नानारूपेषु पूर्वकविभिर्विशिष्टमतिविभवैः । रचितेषु शास्त्रविवरणकथाप्रबन्धेषु सरसेषु ॥ २७ ॥

कीदृगिदं मत्काव्यं ? तदपि ग्राह्यं कृतप्रचुरकरुणैः । मयि वल्लभमाध्यस्थ्ये, माध्यस्थ्यगुणान्वितैः सद्भिः ॥ २८ ॥

छन्दोलक्षणविकलं, समयोत्तीर्णं च यत् किमपि लिखितम् । तच्छोध्यं विद्वद्भिः कृताञ्जलिः प्रार्थये भवतः ॥ २९ ॥

अन्यच्च **नेमिचन्द्रा गुणाकराः पार्श्वदेव**नामानः । एते त्रयोऽपि गणयो विपश्चितो मुख्यनिजशिष्याः ॥ ३० ॥

साहाय्यं कृतवन्तो मम लेखन-शोधनादिकृत्येषु । आधानोद्धरणे च प्रमादविकलाः कलाकुशलाः ॥ ३१ ॥

नवत्या युक्तेषु प्रथितयशसो विक्रमनृपा-
च्छतेषु क्रान्तेषु **त्रिनयनसमानेषु** (११९०) शरदाम् ।
अजय्ये सौराज्ये जयति **जयसिंह**स्य नृपते-,
रियं स्थानीयेऽगाद् **धवलकपुरे** सिद्धिपदवीम् ॥ ३२ ॥

श्रेष्ठि**यशोनाग**स्याऽऽरब्धा वसतावस्थितैः सद्भिः । वसतां सम्यगवसिता वसतावच्छुप्तसत्कायाम् ॥ ३३ ॥

भुवनानीव चतुर्दश धातुर्मम रम्यवर्ण-पद[1]भाञ्जि । अक्षरगणनाद् ग्रन्थो जातोऽनुष्टुपसहस्राणि ॥ ३४ ॥

मानसगर्भे स्थित्वा, लक्षणयुगयं सपादनवमासैः । **आख्यानकमणिकोशः**, सुत इव समपाचि सद्वृत्तिः ॥ ३५ ॥

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च, यावन्मेरुर्महीतलम् । स्वर्गा-ऽपवर्गवत् तावन्नन्द्यादेषाऽपि मत्कृतिः ॥ ३६ ॥ ग्रन्थाग्रम् १४००० ॥

॥ इति श्रीमदाम्रमदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशवृत्ति (प्रशस्तिः) समाप्तेति ॥

शिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः । दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ १ ॥

● ● ●

---

१. भाजि-प्रतौ ।

प्रथम परिशिष्टम्

आख्यानकमणिकोश-तट्टीकान्तर्गतानां विशेषनाम्नामकारादिक्रमेणानुक्रमः

(★ एतादृक्फुल्लिकाङ्कितानि विशेषनामानि मूलग्रन्थगतानि ज्ञेयानि)

नाम	किम् ?
	अ
अइमुत्तय	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
अउज्झा	(नगरी)
★अक्खाणयमणिकोस	(प्रस्तुतग्रन्थः)
अगमंदिर	(पर्वतः)
अग्गिकुमार	(देवजातिः)
अग्गिजाला	(ब्राह्मणपत्नी)
अग्गिभीरु	(रथः)
अग्गिभूइ	(ब्राह्मणपुत्रः)
अच्चुय	(देवलोकः)
अच्छुप्त	(श्रेष्ठी-टीकाप्रशस्तौ)
अजितसूरि	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः, टीकाप्रशस्तौ)
अजिय	(तीर्थकरः)
अजियजस	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
अजियसेण	(राजपुत्रः)
अज्जखउड	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
★ "	"
अज्जसुहत्थी	"
अट्टण	(मल्लः)
अट्टारसचक्कवेह	(आभूषणम्-हारः)
अट्ठावय	(पर्वतः)
अणंगसरा	(राजपुत्री)
अणंगसेणा	(गणिका)
अणंत	(तीर्थकरः)
अणाहिट्ठि	(देवः)

नाम	किम् ?
अणिमंजिया	(नगरी)
अणोलिया	(राजपुत्री)
अद्दय	(देशः)
"	(नगरम्)
"	(राजा)
★अद्दयकुमार	(राजपुत्रो निग्रन्थ-मुनिश्च)
अद्दय + कुमार	"
अद्दय कुमर	"
अद्दया	(राज्ञी)
अनिलवेअ	(विद्याधरपुत्रः)
निलवेअ	"
अपइट्ठाण	(नरकः)
अपराजिता	(राज्ञी)
★अभय	(राजपुत्रोऽमात्यश्च)
अभय+कुमार	"
अभया	(राज्ञी)
अभिनंदण	(तीर्थकरः)
अमरदत्त	(श्रेणिकपालित-राजपुत्रः)
अमियगइ	(विद्याधरः)
अमियतेय	(निग्रन्थ-आचार्यः)
अम्मड-अम्बड	(परिव्राजकः)
अयल	(श्रेष्ठी सार्थवाहः)
"	(सुभटः)
अयलपुर	(नगरम्)
अर	(तीर्थकरः)

नाम	किम् ?
★ अरहन्नय	(निर्ग्रन्थ मुनिः)
अरहन्नक-य	"
अरिह०	"
अर्हन्नक	"
अरिट्ठनेमि	(तीर्थकरः)
अरिदमण	(राजा)
अरिमद्दण	"
अरिहद्दासी	(श्रेष्ठीपत्नी)
अरिहन्न	(वणिक्)
अरिहमित्त	"
अरुणाभ	(विमानम्)
अर्बुद	(पर्वतः, टीकाप्रशस्तौ)
अल्लक	(श्रेष्ठी, ")
अवराइया	(श्रेष्ठीपत्नी)
अवंतिणी	(राजपुत्री)
अवंतिवद्धण	(राजा)
अवंती	(देशः)
"	(नगरी)
असियक्ख	(यक्षः)
असोग	(मालाकारः)
असोगचंद	(राजा)
असोगचंद	(राजपुत्रो राजा च)
कोणिअ	"
कूणिअ	"
असोगवणिया	(वाटिका)
असोयसिरी	(राजा)

नाम	किम्?
अस्सावहारा	(विद्या)
अंगा	(देशः)
अंगामंदिर	(पर्वतः)
अंजण	"
अंधगवन्हि	(राजा)
आ	
★ आइच्च	(कुटुम्बी)
आख्यानकमणिकोश	(प्रस्तुतग्रन्थः)
आइच्चसम्म	(ब्राह्मणः)
आगासरेवई	(देवता)
आनन्दसूरि	(निर्गन्थ-आचार्यः, टीकाप्रशस्तौ)
आम्रदेवसूरि	(निर्गन्थ-आचार्यः, प्रस्तुतग्रन्थटीकाकारः)
आयामुही	(नगरी)
आर्द्रकुमार	(राजपुत्रो, निर्गन्थ-मुनिः)
आर्यखपुट	(निर्गन्थ-स्थविरः)
आवस्सगविवरण	(जैनागमः)
आवस्सय	"
आससेण	(राजा)
इ	
इलादेवी	(देवी)
इलापुत्त	(श्रेष्ठीपुत्रः)
★ "	"
इलापुत्र	"
इलावद्धण	(नगरम्)
इंदमह	(उत्सवः)
ई	
ईशान	(देवलोकः)
ईसर	(श्रेष्ठी)
ईसाण	(देवलोकः)
उ	
उग्गसेण	(राजा)
उज्जयणी	(नगरी)

नाम	किम्?
उर्ज्जित	(पर्वतः)
उज्जेणी	(नगरी)
उत्तरज्झयण	(जैनागमः)
उत्तराध्ययनवृत्ति	(" टीकाप्रशस्तौ)
उत्तरापह	(देशः)
उदयण	(राजा)
उदाइ	(राजपुत्रः)
उद्योतन	(श्रेष्ठी, टीकाप्रशस्तौ)
उपकोशा	(गणिका)
★ उवकोसा	"
उविंद	(कृष्ण-वासुदेवः)
उसभ	(तीर्थकरः)
उसहदत्त	(श्रेष्ठी)
उसीरावत्त	(नगरम्)
उसुयार	"
"	(राजा)
ऋ	
ऋषिदत्ता	(तापसपुत्री)
ए	
एलउर	(नगरम्)
क	
कक्क	(राजा)
कटपूतना	(देवी)
कट्ठ	(श्रेष्ठी)
कडय	(राजा)
कढ	(तापसः)
★ कणगकेउ	(राजा, अमात्यपुत्रः)
कणगकेउ-गज्झअ	"
कणगरह	(राजपुत्रः)
कणयद्धय	"
कणयप्पहा	(हस्तिनी)
कणयमाला	(विद्याधरपत्नी)
कणयरह-कणग.	(राजपुत्रः)
कणयाभरण	(राजा)
कण्ह	(कृष्ण-वासुदेवः)

नाम	किम्?
कन्ह	(कृष्ण-वासुदेवः)
कत्तियपुर	(नगरम्)
कनककेतु	(राजा)
कन्नउज	(नगरम्)
कन्ना	(नदी)
कन्हडदेव	(राजपुत्रः)
कप्पय	(अमात्यः)
कमढ	(तापसः)
कमलगुत्त	(श्रेष्ठिपुत्रः)
कमलमेह	(मल्लः)
कमलसेण	(राजा)
कमलामेला	(राजपुत्री)
कमलावई	(राज्ञी)
कम्बल	(बलीवर्दः)
कयउन्न	(श्रेष्ठिपुत्रः)
★ कयउन्नय	"
कयमाल	(यक्षः)
करकंडु	(मातङ्गपालितराजपुत्रः)
★ "	"
करेणुदत्त	(राजा)
कुर्मार	(ग्रामः)
कर्षक	(सन्निवेशः)
कलावई-°वंती	(राजपुत्री, राज्ञी)
कलिंग	(देश)
कलिंगसेणा	(गणिका)
कल्याणमाल	(राजा)
कवड्डिजक्ख-कवडि०	(यक्षः)
कविल	(पुरोहितः)
कविला	(ब्राह्मणपत्नी)
"	(पुरोहितपत्नी)
कंचणपुर	(नगरम्)
कंचिया	(नगरी)
कंची	"
कंडरीय	(राजपुत्रो, भग्नव्रतमुनिश्च)

नाम	किम् ?
कंपिल्ल+पुर	(नगरम्)
★कंबल	(बलीवर्दः)
काणा	(नाविकपुत्री)
कामएव-देव	(श्रेष्ठी)
★कामदेव	"
कामपडाया	(गणिका)
कामपाल	(श्रेष्ठिपुत्रः)
कामरइ	(गणिका)
कामलया	(राजपुत्री)
कायन्दी	(नगरी)
कायंबरी	(गुहा)
काल	(राजपुत्रः)
कालसंवर	(विद्याधरः)
कालसूयरिअ-°सोयरिअ	(श्वपाकः)
कालिदास	(कविः)
कावेरी	(नदी)
"	(नगरी)
कासहद	(ग्रामः, टीकाप्रशस्तौ)
कासी	(देशः)
कित्तिधम्म	(राजा)
कुज्जअ	(राजपुत्रः)
कुडंगेसर	(देवः)
कुणाल	(राजपुत्रः)
कुत्थुभ	(मणिः)
कुव्वर	(राजपुत्रः)
कुमारनंदी	(श्रेष्ठी)
कुमुइणी	(राजपुत्री)
कुरु	(देशः)
कुरुचंद	(राजपुत्रो राजा च)
कुलचन्द्र	(निर्ग्रन्थ-केवली)
★कुलाणंद	(राजपुत्रो राजा च)
कुलानंद	"
कुसट्टा	(देशः)
कुसुमपुर	(नगरम्)
कुसुमसेहर	(राजा)

नाम	किम् ?
"	(राजपुत्रः)
कुंकण	(देशः)
कुंडवलय	(नगरम्)
कुंडिणा	(नगरी)
कुंडिणिपुरी	"
कुंती	(राज्ञी)
कुंथु	(तीर्थकरः)
कुंद	(दासः)
*कूलवाल	(भग्नव्रतमुनिः)
कूलवाल+अ, क, य	"
कृतपुण्य	(श्रेष्ठिपुत्रः)
केढव	(राजपुत्रः)
केयइ	(देशः)
केसरा	(श्रेष्ठिपुत्री)
केसव	(कृष्ण-वासुदेवः)
केसी	(निर्ग्रन्थ-गणधरः)
कोणिय-कं	(राजपुत्रो राजा च)
कूणिअ	"
असोगचंद	"
*कोणिय	"
कोत्थुह	(मणिः)
कोमुईदिवस-°ईमह °ईमहूसव	(उत्सव)
कोमोइया	(भेरी)
कोशा	(गणिका)
कोसल	(देशः)
कोसला	(नगरी)
कोसलपुरी	"
कोसंब	(वनम्)
कोसंबी	(नगरी)
कोसा	(गणिका)
क्षेमपुरी	(नगरी)
*खमग	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
खमगरिसि	"

नाम	किम् ?
खर	(राक्षसवंशीयः)
खरक	(वणिक्)
खिइपइट्ठिय	(नगरम्)
खीरडिंडीर	(देवः)
खीरडिंडीरा	(देवी)
खेमंकर	(कुटुम्बी)
	ग
गउरमुंड	(विद्याधरः)
गउरी	(देवी)
गज+सुकुमार	(राजपुत्रो निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
गद्दह	(राजपुत्रो राजा च)
गन्धप्रिय	(राजपुत्रः)
*गय	(राजपुत्रो निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
गय	(श्रेष्ठी)
गयउर	(नगरम्)
गयवाहण	(राजपुत्रः)
गयसुकुमाल	(राजपुत्रो निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
गंगदत्त	(राजा)
"	(श्रेष्ठीपुत्रः)
गंगदत्ता	(दासी)
गंगरुद्दा	"
गंगसेणा	(राजपुत्री)
गंगा	(राज्ञी)
"	(नदी)
गंगाइच्च	(कुटुम्बी)
मायाइच्च	"
गंगाउर	(नगरम्)
गंगउर	"
गंधप्पिय	(राजपुत्रः)
गंधवई	(नदी)
गंधव्वदत्ता	(राजपुत्री)
गंधव्वसेणा	"
गंधार	(देशः)

नाम	किम् ?
गिरिनयर	(नगरम्)
गुडसत्थ	''
गुणचंद	(श्रेष्ठीपुत्रः)
''	(राजपुत्रः)
गुणमइ-ती	(श्रेष्ठीपुत्री)
*गुणमइया	''
गुणवती	''
गुणसिल+अ	(चैत्यम्)
गुणाकर	(निर्ग्रन्थ-गणी, टीकाप्रशस्तौ)
गोभद्द	(श्रेष्ठी)
गोयमसामी	(निर्ग्रन्थ-गणधरः)
गोरी	(विद्या)
''	(मातङ्गपत्नी)
गोविंद	(कृष्ण-वासदेवः)
गोशालक	(आजीवकसम्प्रदायप्रणेता)
गोसाल+य	''
गौतम	(निर्ग्रन्थ-गणधरः)
	घ
घोरसिव	(कापालिकः)
	च
चउरमइ	(अमात्यः)
''	(राजपुत्रमित्रम्)
चक्कयर	(ब्राह्मणः)
*''	''
चक्रचर	''
चण्डचूड	(कुलपुत्रकः)
चण्डरुद्र	(निर्गन्थ-आचार्यः)
चन्दनार्या	(निर्ग्रन्थनी)
चन्द्रावतंसक	(राजा)
चमरहारिणी	(गणिका)
चवला	(दासी)
चंडचूड	(कुलपुत्रकः)
*''	''
चंडपज्जोअ-य	(राजा)

नाम	किम् ?
पज्जोय	
चंडरुद्द	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
*''	''
चंडरुद्द	(दासः)
चंडवडिंसय	(राजा)
*चंडहड	(कर्षकः)
चडहड-भड	''
चंडावडिंस	(राजा)
चंडिया	(देवी)
चंडी	''
दुग्गा	''
चंदगुत्त	(राजा)
*चंदणज्जा	(निग्रन्थिनी)
चंदणज्जा	(राजपुत्री, निर्ग्रन्थिनी-प्रवर्तिनी
°णकुमारी-	
°णबाला	''
चंदणा	''
चंदजस	(राजपुत्रो राजा च)
चंजदसा	(राज्ञी)
चंदप्पभा	(मदिरा)
चंदप्पह	(तीर्थकरः)
चंदमई	(राजपुत्री)
चंदसेण	(राजा)
चंदाभा	(राज्ञी)
चंदावयंस+अ	(राजा)
चंपयमाला	(राज्ञी)
चंपइमाला	''
चंपा	(नगरी)
चामुंड	(देवी)
चारुदत्त	(श्रेष्ठिपुत्रः)
*''	''
चित्त	(मातङ्गपुत्रो निग्रन्थ-मुनिश्चि)
*''	''
चित्त	(अमात्यः)

नाम	किम् ?
चित्ततेअ-चेत्त०	(विद्याधरपुत्रः)
*चित्तपिय	(यक्षः)
चित्तपिय	''
सुरपिय	''
चित्तरह	(विद्याधरः)
चित्र	(मातङ्गपुत्रो निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
चित्रगुप्त	(निर्गन्थ-मुनिः)
चित्रप्रिय	(यक्षः)
चिला	(दासी)
चिलाइपुत्त	(दासीपुत्रः)
*''	''
चिलातीपुत्र	''
चुलणी	(ब्राह्मणपत्नी)
*''	''
चुलणी	(राज्ञी)
चेडय	(राजा)
चेल्लणा	(राज्ञी)
	छ
छम्माणी	(ग्रामः)
	ज
जउणदीव	(द्वीपः)
जक्ख	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
जक्खसिरी	(ब्राह्मणपत्नी)
जक्खिणी	(निर्ग्रन्थिनी)
जणद्दण	(कृष्ण-वासुदेवः)
जनक	(राजा)
जन्नदत्त	(वणिक्)
जन्नदिन्न	(ब्राह्मणः)
जन्नवक्क	(परिव्राजकः)
जन्नवाड	(राजगृहपाटक)
जन्हकुमार	(राजपुत्रः)
जम्बु	(श्रेष्ठिपुत्रो निर्ग्रन्थ-स्थविरश्च)
जयवद्धण	(नगरम्)

नाम	किम् ?
जयवारण	(हस्ती)
जयसिरी	(श्रेष्ठिपुत्री)
जयसिंह	(गूर्जरेश्वरः, टीकाप्रशस्तौ)
जयसेण	(राजपुत्रः)
जयसेणा	(राज्ञी)
जयंतदेव	(श्रेष्ठिपुत्रः)
जयंती-°तिया	(नगरी)
जया	(राज्ञी)
जराकुमार	(राजपुत्र)
जलणप्पह	(देवः)
जव	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
*"	"
जवउर-पुर	(नगरम्)
जवणदीव	(द्वीपः)
जसभद्द	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
जसवई	(राज्ञी)
जसा	(पुरोहितपत्नी)
जंबवई	(विद्याधरपुत्री, राज्ञी)
जंबवंत	(विद्याधरः)
जंबु	(श्रेष्ठिपुत्रो निर्ग्रन्थ-स्थविरश्च)
*"	"
जंबुणाम	"
जंबुद्दीव	(द्वीपः)
जंबू	(देवी)
जानकी	(राजपुत्री, राज्ञी)
जालंधर	(पर्वतः)
जाला	(राज्ञी)
जिणदत्त-यत्त	(श्रेष्ठी)
जिणदास	"
जिणदासी	(श्रेष्ठीपत्नी)
जिणसेण	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
जिणाणंद	(" - स्थविरः)

नाम	किम् ?
जिनचन्द्र	(" आचार्यः, टीकाप्रशस्तौ)
जियसत्तु	(राजा)
जियारि	"
जीवहरण	(ग्रामः)
जुगबाहु (राजपुत्रः)	
जुगाइदेव	(तीर्थंकरः)
ट	
टक्क	(ब्राह्मणजातिः)
टंकण	(देशः)
ड	
डमरसिंह	(राजा)
ढ	
ढण्ढणकुमार	(राजपुत्रः)
ढंढणकुमर	"
*"	"
ण	
णंद-नंद	(राजा)
णोड्डुजाइ	(वन्यजातिः)
त	
तक्खसिला	(नगरी)
तापस	(श्रेष्ठी)
तामलित्ती	(नगरी)
तारापीड	(राजा)
तारावीढ	"
तावस	(श्रेष्ठी)
*"	"
तिलअ	(उद्यानम्)
तिलयपुर	(नगरम्)
तिलयसुन्दरी	(राजपुत्री, राज्ञी)
तिविक्कम	(राजकुमार)
विण्हुकुमार	(निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
तिसला	(राज्ञी)
तिहुयणतिलया	"

नाम	किम् ?
तिहुयणाणंद	(राजा)
तिंदुग-य	(यक्षः)
तुंबवण	(सन्निवेशः)
तेयलि	(नगरी)
तेयलिसुअ-तेतलि.	(अमात्यः)
त्रिगुप्त	(निग्रन्थ-मुनिः)
त्रिभुवनतिलका	(राज्ञी)
थ	
थाणु	(वणिक्)
थावर	(दासः)
थूलभद्द	(अमात्यपुत्रो, निर्ग्रन्थ-स्थविरश्च)
द	
दढधम्म	(राजपुत्रः)
दण्डक	(अरण्यम्)
दत्त	(श्रेष्ठिपुत्रः)
दत्तक-य	(श्रेष्ठी)
ददर	(सुभटः)
दुद्दुरवडिंसय	(विमानम्)
दद्दुरंक	(देवजातिः)
दधिवाहन	(राजा)
दमघोस	(सुभटः)
दवदंती	(राजपुत्री, राज्ञी)
*"	"
दसउर	(नगरम्)
दसवेयालिय	(जैनागमः)
दहवयण	(राक्षसवंशीयराजा-रावणः)
दहिवन्न	(राजा)
दहिवाहण	"
दंतवक्क	(नगरम्)
"	(राजा)
दामन्नअ-ग	(श्रेष्ठिपुत्रः)
दामन्नक	"
*"	"

नाम	किम्?
दामन्नक	(कुलपुत्रकः)
दिवायर	(ब्राह्मणः)
दीणार	(नाणकम्)
दिपकशिख	(राजपुत्रः)
दीवयसिंह	"
*"	"
दीवायण	(ऋषिः)
दीवूसव	(उत्सवः)
दीह	(राजा)
दीहपट्ठ	(अमात्यः)
दुक्खंतरिसि	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
दुग्गचंड	(परावर्तितचौरनाम)
दुग्गय	(कुम्भकारः)
दुग्गा	(देवी)
चंडी	"
दुज्जोहण	(राजा)
दुप्पसह	"
दुम्मुह	(दासः)
दुल्लहएवी	(निर्ग्रन्थिनी)
दुवय	(राजा)
दूषण	(राक्षसवंशीयः)
देइणी	(राजपुत्री)
देवई	(राज्ञी)
देवगुत्त	(राजा)
देवजस	(श्रेष्ठिपुत्री)
देवदत्त	(श्रेष्ठी)
देवदत्ता	(गणिका)
देवनंदि	(देशः)
देवरिसि	(निग्रन्थ-मुनिः)
देवसाल	(नगरम्)
देवसिरी	(श्रेष्ठीपत्नी)
देवसूरि	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः, टीकाप्रशस्तौ)
देवसेण	(राजा)
देवाणंद	(श्रेष्ठी)
*देविंद	(निर्ग्रन्थ-मुनिः, प्रस्तुतमूलग्रन्थकारः)
देहिल	(वणिक्)
दोण	(दासः)
*"	"
दोण	(राजा)
दोणमेह	"
दोवई	(राजपुत्री)
द्रोण	(दासः)
"	(राजा)
द्वारकावती	(नगरी)
घ	
*घण	(सार्थवाहः)
धण	(श्रेष्ठी)
धण+अ	(सार्थवाहः)
धणअ-यं	(श्रेष्ठिपुत्रः)
धणदत्त-यत्त	"
धणदेव	(सार्थवाहः)
धणपाल	(श्रेष्ठी)
धणवइ	(श्रेष्ठिपुत्रः)
धणवई	(श्रेष्ठिपत्नी)
धणसार	(श्रेष्ठिपुत्रः)
"	(श्रेष्ठी)
धणसिरी	(श्रेष्ठिपत्नी)
धणसेण	(राजा)
धणावह	(श्रेष्ठी)
धणीसर	(श्रेष्ठिपुत्रः)
धणु	(अमात्यः)
धणेसर	(श्रेष्ठिपुत्रः)
धन	(सार्थवाहः)
धनदत्त	(श्रेष्ठिपुत्रः)
धन्न+अ	"
धन्नअ	(आभीरपुत्रः)
धन्नउर	(ग्रामः)
धन्नपूरअ	(श्रेष्ठिपुत्रः)
धन्नय	(आभीरपुत्रः)
धन्ना	(कुलपुत्रपत्नी)
धन्यक	(आभीरपुत्रः)
धम्म	(तीर्थकरः)
धम्मघोस	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
धम्मनंदण	"
धम्मरुइ	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
"	(श्रेष्ठिपुत्रः)
धम्मसिरी	(निर्ग्रन्थिनी)
धम्मिलाभ	(आभीरः)
धयरट्ठ	(राजा)
धरणितिलअ	(नगरम्)
धरणिंद	(इन्द्र)
धर्मरुचि	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
धवलक्कक	(नगरम्, टीकाप्रशस्तौ)
धवलकपुर	"
धायइसंड	(द्वीपः)
धारिणी	(राज्ञी)
धुंधुमार	(राजपुत्रः)
धूमकेउ	(यक्षः)
धूमकेउ	(देवः)
धूमसिंह	(विद्याधरः)
न	
नउलवणी	(श्रेष्ठी)
*"	"
नन्द	"
नन्दिवर्धन	(राजपुत्रः)
नमि	(राजपुत्रो राजा, निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
*"	"
नमि	(तीर्थकरः)
नमुई	(अमात्यः)
नम्मया	(नदी)
नयचक्क	(जैन-दर्शनशास्त्रम्)
नयसार	(श्रेष्ठी)

नाम	किम् ?
नरदत्त	''
नरविक्कम	(राजपुत्रः)
*''	''
नरविक्रम	''
नरसिह	(राजा)
नराअ-द०	''
सोदास	
*नराय	''
नल	(राजपुत्रो राजा च)
''	(सुभटः)
नलगिरि	(हस्ती)
नवपुष्पक	(मालाकारः)
नवफुल्लअ	''
*नवफुल्लय	''
नहसेण	(राजपुत्रः)
*नंद	(श्रेष्ठी)
*,	(नाविकः)
*,	(मणिकारः)
नंद	(अमाल्यः)
''	(श्रेष्ठी)
''	(राजा)
''	(नाविकः)
नंद	(मणिकारः)
नंदण	(नगरम्)
''	(श्रेष्ठिपुत्र)
णंदणवण	(उद्यानम्)
नंदा	(वापी)
नंदिवद्धण	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
नंदिसेण	''
*''	''
नंदिसेण	(राजपुत्रः)
नंदीसर	(द्वीपः)
नाग	(श्रेष्ठी)
नागकुमार	(देवः)
नागदत्त	(राजपुत्रः)

नाम	किम् ?
नागश्री	(ब्राह्मणपत्नी)
नागसिरी	''
*''	''
नाणगब्भ	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
''	(अमात्यः)
नारअ-०द०-य	(निर्गन्थ-मुनिः)
नारायण	(कृष्ण-वासुदेवः)
निउण	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
निक्करुण	(सारथिः)
निग्घिणसम्म	(ब्राह्मणः)
सुद्धड	''
निम्ममत्त	(तीर्थकरः)
निलवेअ	(विद्याधरपुत्रः)
अनिलवेग	''
निव्वुइ	(देवी)
निसढ	(राजपत्रः)
''	(सुभटः)
निसीह	(जैनागमः)
नूपुरपण्डिता	(श्रेष्ठिपुत्री)
नेपाल	(देशः)
नेमि+चंद,	(तीर्थकरः)
+नाह	
नेमिचन्द्र	(निर्ग्रन्थ-गणी, टीकाप्रशस्तौ)
नेमिचन्द्रसूरि	(निग्रन्थ-आचार्यः, प्रस्तुतमूलग्रन्थकारः)

प

नाम	किम् ?
पइट्ठाण	(नगरम्)
पउम	(राजपुत्रो राजा-रामचन्द्रः)
*''	''
पउम	(देशः)
पउमकेसर	(राजपुत्रः)
पउमगुम्म	(विमानम्)
पउमनाह	(राजा)
''	(तीर्थकरः)

नाम	किम् ?
पउमप्पह	''
पउमरह	(राजा)
पउमसर	(सरः)
पउमसेहर	(राजपुत्रः)
पउमावई	(नगरी)
''	(राजपुत्री)
''	(राज्ञी)
पउमिणी	(मालाकारपत्नी)
पउमुत्तर	(नगरम्)
''	(राजा)
''	(राजपुत्रः)
*''	(राजा)
पएसि	''
पङ्कजमुख	(श्रेष्ठिपुत्रः)
पङ्कजास्य	''
पच्चंतपुर	(नगरम्)
पज्जुन्न	(राजपुत्रः)
पज्जोय	(राजा)
पत्तदेवया	(देवी)
पद्म	(राजपुत्रो राजा-रामचन्द्रः)
पद्मोत्तर	(राजपुत्रो राजा)
पन्नत्ती	(विद्या)
पभव+सूरि	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
परासर	(ऋषिः)
पल्हाअ-यं	(राजा)
पसेणइ+य	''
पसन्नचंद	(राजा, निग्रन्थ-मुनिः)
*''	''
पहाकर	(ब्राह्मणः)
*''	''
पहाकर	(पुरोहितपुत्रः)
पहास	(तीर्थम्)

नाम	किम् ?
पहाससूरि	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
पंचनंदी	(श्रेष्ठी)
पंचाल	(देशः)
पंडिया	(धात्री)
पंडु	(राजा)
पंडुमहुरा	(नगरी)
पंडुसेण	(राजपुत्रः)
पाडलय	(मालाकारः)
पाडलिपुत्त	(नगरम्)
पारासर	(ब्राह्मणः)
पार्श्व	(तीर्थकरः)
पार्श्वदेव	(निर्गन्थ-गणी, टीकाप्रशस्तौ)
*पास	(तीर्थकरः)
पास+कुमार, जिण, नाह	''
पिप्पलाअ	(ऋषिपुत्रः)
पियदंसण	(राजा)
पियदंसणा	(राज्ञी)
पियमइ	(राजकुमारी)
पियंकर	(श्रेष्ठिपुत्रमित्रम्)
पियंकरा	(दासी)
पियंगु	(ग्रामः)
पियंगुलया	(दासी)
पिहु	(सुभटः)
पुक्खल	(राजपुत्रः)
पुन्नकलस	''
पुन्नभद्द	(श्रेष्ठिपुत्रः)
पुन्नवसु	(दासः)
पुप्फचूल	(सङ्गीतकारः)
''	(राजा)
पुप्फदंत	(सुभटः)
पुप्फदंती	(राज्ञी)
पुरिसोत्तम	(कृष्ण-वासुदेवः)

नाम	किम् ?
पुव्वविदेह	(क्षेत्रम्)
पुष्पक	(विमानम्)
पुंडरिगिणी	(नगरी)
पुंडरीय	(राजपुत्रो निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
पोट्टिला	(अमात्यपत्नी)
पोतनपुर	(नगरम्)
पोयण+पुर	''
प्रदेशि	(राजा)
प्रद्युम्न	(राजपुत्रः)
प्रभवसूरि	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
प्रभाकर	(ब्राह्मणः)
प्रसन्नचन्द्र	(राजा,निर्ग्रन्थ-मुनिः)
फ	
फलहियमल्ल	(मल्लः)
ब	
*बउल	(मालाकारः)
बउल-कुल	''
बउलदत्त	(ब्राह्मणः)
बउलमई	(राज्ञी)
बल+देव,भद्द	(राजपुत्रः कृष्ण-वासुदेवभ्राता)
बलकुट्ट	(मातङ्गः)
बहली	(देशः)
बंधुदत्त	(श्रेष्ठिपुत्रः)
*''	''
बंधुमई	(कुटुम्बिपत्नी)
''	(श्रेष्ठीपुत्री)
बंभ	(राजा)
बंभदत्त	(चक्रवर्ती)
बंभदीवया	(तापसशाखा,
बंभदीविया	निग्रन्थशाखा च)
बंभलोअ-कं, गं, यं	(देवलोकः)

नाम	किम् ?
बंभसंति	(यक्षः)
बंभी	(निर्ग्रन्थिनी)
बारवई	(नगरी)
बालचन्द	(राजपुत्रः)
बाहुबली	''
विन्नायड-	(नगरम्)
बेन्नां	(नदी)
बिभीषण	(राक्षसवंशीयः)
बिंदुसार	(राजा)
बुद्धदास	(श्रेष्ठिपुत्रः श्रेष्ठी च)
बुद्धाणंद	(बौद्धश्रमणः)
बुद्धदास	
बुद्धिसार	(अमात्यः)
बृहद्गच्छ	(निर्ग्रन्थगच्छः टीकाप्रशस्तौ)
भ	
भइरवाणंद	(कापालिकाः)
भगवई	(जैनागमः)
भद्द	(श्रेष्ठी)
भद्दजस	(निर्ग्रन्थ-गणधरः)
भद्दबाहु	(पुरोहितपुत्रो निग्रन्थ-स्थविरश्च)
भद्दवई	(हस्तिनी)
भद्रवती	''
भद्दा	(सार्थवाहपत्नी)
*''	''
भद्दा	(श्रेष्ठिपत्नी)
''	(राजपुत्री)
भद्दिलपुर	(नगरम्)
भद्दुलअ	(राजपुत्रः)
भद्रा	(सार्थवाहपत्नी)
भरत	(नटपुत्रः)
''	(राजपुत्रः, रामचन्द्रभ्राता)
''	(चक्रवर्ती)
*भरह	''

नाम	किम्?
भरह+नाह, वइ,	"
हेस, हेसर	
भरह	(नटपुत्रः)
*"	"
भरह	(क्षेत्रम्)
भरुयच्छ	(नगरम्)
भवनपति	(देवजातिः)
भवंतकर	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
भंडीरवणचेइय	(चैत्यम्)
भाणु	(श्रेष्ठी)
"	(अमात्यः)
"	(राजपुत्रः)
भाणुसिरी	(श्रेष्ठिपत्नी)
भारभूइ	(कापालिकः)
भारह	(क्षेत्रम्)
भावट्टिका-ष्या	(श्रेष्ठिपुत्री)
बालवंडिया	
भिगु	(पुरोहितः)
*"	"
भिगु	(ब्राह्मणः)
भिंमसार	(राजपुत्रः श्रेणि-कापरनामा)
भीम	(सुभटः)
भीमरह	(राजा)
भुवनश्री	(राज्ञी)
भूतलानन्द	(नगरम्)
भूयदिन्न	(मातङ्गः)
भूयसिरी	(ब्राह्मणपत्नी)
भृगु	(पुरोहितः)
भेसई	(राजा)
म	
मइरा	(श्रेष्ठीपुत्री)
मइसायर	(राजपुत्रमित्रम्)
"	(अमात्यः)
मक्षिकामल्ल	(मल्लः)

नाम	किम्?
मगहा	(देशः)
मगहापुर	(नगरम्)
*मच्छमल्ल	(मल्लः)
मच्छियमल्ल	"
मज्झदेस	(देशः)
मणअ-गं,यं	(ब्राह्मणपुत्रो निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
मणिचूड	(राजा, निर्ग्रन्थ-मुनिः)
मणिप्पह	(राजपुत्रः)
मणिरह	(राजा)
मणोरमा	(राज्ञी)
मणोरह	(श्रेष्ठिपुत्रः)
मणोहर	(राजपुत्रः)
मत्तकोइल	(उद्यानम्)
मत्तियावया-वइ	(नगरी)
मत्स्यमल्ल	(मल्लः)
मधु	(राजपुत्रो राजा च)
*मनोरमा	(श्रेष्ठिपत्नी)
मनोरमा	(कर्षकपत्नी)
"	(श्रेष्ठिपत्नी)
°मणो.	"
मनोरथ	(कर्षकपुत्रः)
मम्मण	(राजा)
मयणतेरसी	(उत्सवः)
मयणरेहा	(राज्ञी)
"	(राजपुत्री)
मयणसेणा	"
"	(राज्ञी)
मयमल्ल	(निर्ग्रन्थ-आचार्योः)
मयरद्धअ	(राजा)
*मल्ल	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
मल्ल+वाइ,वादी	"
+सूरि	
मल्लि	(तीर्थकरः)
महब्बल	(राजा)

नाम	किम्?
महसेण	(सुभटः)
"	(राजा)
महाकाल	(देवः)
"	(कापालिकः)
महापउम	(चक्रवर्ती)
महाविदेह	(क्षेत्रम्)
महावीर	(तीर्थकरः)
महासणंकुमार	(देवलोकः)
महिमा	(श्रेष्ठिपत्नी)
महिला	(नगरी)
मिहिला	"
महिंदविक्कम	(विद्याधरराजा)
महिंदसीह	(अमात्यपुत्रः)
महु	(राजपुत्रो राजा च)
*"	"
महुमहण	(कृष्ण-वासुदेवः)
महुरा	(नगरी)
मंगलउर	(नगरम्)
मंगला	(राज्ञी)
मंजरी	(दासपत्नी)
मंजुलावई	(नगरी)
मागह	(तीर्थम्)
मागहिया	(गणिका)
माणिभद्द	(श्रेष्ठिपुत्रः)
"	(श्रेष्ठी)
माथुर	(वणिक्)
मायाइच्च	(कुटुम्बी)
गंगाइच्च	
मायादित्य	"
मारावल्ली	(ग्रामः, टीकाप्रशस्तौ)
मालव	(देशः)
मालवमंडल	"
माहव	(ब्राह्मणः)
माहिंद	(देवलोकः)
माहुर	(वणिक्)

नाम	किम् ?
*''	''
मिगावई	(राज्ञी)
*''	''
मित्तवई	(श्रेष्ठिपुत्री)
मित्ताणंद	(श्रेष्ठिपुत्रः)
*''	''
मित्राणन्द	''
मुणिचंद	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
''	(श्रेष्ठिपुत्रः)
''	(राजपुत्रः, निर्ग्रन्थ-मुनिः)
मुणिसुव्वअ-यं	(तीर्थंकरः)
मुसियार	(श्रेष्ठी)
मूलदेव(राजपुत्रः)	
*''	''
मूला	(श्रेष्ठिपत्नी)
मृगावती-°पत्ती	(राज्ञी)
मेघ+कुमार	(राजपुत्रः)
मेतार्य	(मातङ्गपुत्रो राजा, निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
मेदपाट	(देशः, टीकाप्रशस्तौ)
मेयज्ज	(माताङ्गपुत्रो राजा, निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
*''	''
मेरु	(पर्वतः)
मेरुप्पह	(हस्ती)
मेरुप्रभ	(श्रेष्ठी)
* मेह	(राजपुत्रः)
मेह+कुमार	(राजपुत्रः)
मेहकुंड	(नगरम्)
मोढचैत्यगृह	(चैत्यम्, टीकाप्रशस्तौ)
मोरियवंस	(राजवंशः)
	य
यव (निर्ग्रन्थ-मुनिः)	
यशोनाग	(श्रेष्ठी, टीकाप्रशस्तौ)
युगादिजिन	(तीर्थंकरः)

नाम	किम् ?
	र
रइकेलि	(विटः)
रइविलासा	(गणिका)
रइसायर	(श्रेष्ठी)
रइसुंदरी	(राज्ञी)
रत्नचूडचरित	(जैनशास्त्रम्, टीकाप्रशस्तौ)
रत्नपुर	(नगरम्)
रयणउर-पुर	(नगरम्)
रयणचूड	(राजपुत्रो राजा च)
रयणचूड(कहा)	(जैनशास्त्रम्)
रयणदीव	(द्वीपः)
रयणप्पहा	(नरकः)
रयणमंजरी	(राजपुत्री)
रयणमाला	(राज्ञी)
रयणरह	(राजा)
रयणसार	(राजा)
रयणसार	(श्रेष्ठी)
रयणसेहर	(राजा)
रयणावह	(नगरम्)
*रविकंता	(राज्ञी)
रविकंता	(राज्ञी)
सूरियकंता	(राज्ञी)
रविकान्ता	(राज्ञी)
सूर्यकान्ता	(राज्ञी)
रहनेउर	(नगरम्)
रहमद्दण	(नगरम्)
रहमित्त	(ब्राह्मणः)
रहावत्त	(पर्वतः)
राजपुर	(नगरम्)
राजहंस	(राजपुत्रः)
राम	(राजपुत्रः, कृष्णवासुदेवभ्राता)
*''	''
राम+एव, चन्द्र, देव	(राजा, दशरथपुत्रः)

नाम	किम् ?
रायगिह	(नगरम्)
रायनंदणअ	(उद्यानम्)
रायमई	(राजपुत्री)
रायहंस	(राजपुत्रः)
*''	''
रावण	(राक्षसवंशीयराजा)
दशमुख	
राह	(निग्रन्थ-आचार्यः)
रिउवन्न	(राजा)
रिट्ठउर	(नगरम्)
रिट्ठनेमि	(तीर्थकरः)
रिसह+देव, सामि, नाह, -हँस, हेसर	''
रिसिदत्ता	(तापसपुत्री)
*''	''
रुक्मिणी	(राजपुत्री,राज्ञी)
रुद्ददत्त	(वणिक्)
रुप्पिणी	(राजपुत्री,राज्ञी)
*''	''
रुप्पी	(राजकुमारः, राजा)
रेणुया	(आभीरपत्नी)
रेवय	(पर्वतः)
रेवय+ग	(उद्यानम्)
रेवा	(नदी)
रोह+अ,क	(नटपुत्रः)
रोहण	(पर्वतः)
रोहिण+अ	(चौरः)
*रोहिणअ	''
रोहिणी	(श्रेष्ठपत्नी)
*''	''
रोहिणी	(चौरपत्नी)
''	(राज्ञी)
रोहेडय	(नगरम्)
रौहिणेयक	(चौरः)

नाम	किम्?
	ल
लक्खण	(राजपुत्रः)
लच्छिहर	
लक्षण	"
लक्ष्मण	
लच्छिग्गाम	(ग्रामः)
लच्छिमई	(ब्राह्मणपत्नी)
लच्छी	(देवी)
"	(राज्ञी)
लच्छीतिलय	(नगरम्)
ललिताङ्ग	(श्रेष्ठिपुत्रः)
*ललियंग	"
ललियंगअ	"
ललियंगय	(देवः)
लंका	(नगरी)
लाड	(देशः)
लीलावई	(राजपुत्री)
लोभनंदि-लोह	(श्रेष्ठी)
लोहक्खुर	(चौरः)
*लोहजंघ	(लेखाचार्यः)
लोहनंदि	(श्रेष्ठी)
"	(परिव्राजकः)
	व
*वइर	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
वइरजंघ	(राजा)
वइरसामि	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
वक्कलचीरी	(राजपुत्रः)
वच्छा	(देशः)
वज्जंगय	(राजपुत्रः)
वज्रकर्ण	(राजा)
वज्रजङ्घ	"
वडउर	(नगरम्)
वड्डुकर	(यक्षः)
वद्दलि	(ऋषिः)
वद्धणपुर	(नगरम्)
वद्धमाण	"
वद्धमाण+सामि	(तीर्थकरः)
वनमाला	(राज्ञी)
वम्मा	(राज्ञी)
वरदत्त	(श्रेष्ठी)
"	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
वरदाम	(तीर्थम्)
वरधणु	(अमात्यपुत्रः)
वराडग	(देशः)
वराहग्गीव	(राजपुत्रः)
वराहमिहिर	(पुरोहितः)
वलहि	(नगरी)
वल्लहराय	(राजा)
वसंतउर-पुर	(नगरम्)
वसंततिलया	(गणिका)
वसंतदेव	(श्रेष्ठिपुत्रः)
वसंतपुर	(ग्रामः)
वसंतसेणा	(गणिका)
"	(श्रेष्ठिपत्नी)
वसुदत्त	(श्रेष्ठिपुत्रः)
वसुदेव	(राजपुत्रो राजा च)
वसुनन्दा	(श्रेष्ठिपत्नी)
वसुमई	(राजपुत्री)
वसुमित्ता	(ब्राह्मणपुत्री)
वाउभूइ	(ब्राह्मणपुत्रः)
वाडिपुरी	(नगरी)
वाणारसी	"
वालुयपहा	(नरकः)
वासवदत्ता	(राजपुत्री)
वासुदेव	(कृष्ण-वासुदेवः)
वासुपुज्ज	(तीर्थकरः)
वासुलदेवी	(राज्ञी)
विऊसभूसण	(राजपुत्रमित्रम्)
विउसाणंद	(लेखाचार्यः)
विउसाणंदण	(राजपुत्रमित्रम्)
विक्कमसेण	(राजा)
विक्कमाइच्च	"
विचित्र	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
विजय	(पर्वतः)
"	(विमानम्)
"	(राजा)
"	(देवः)
विजयधम्म	(राजा)
विजयसिरी	(श्रेष्ठिपुत्री)
विजयसेण	(विद्याधरपुत्रः)
विजयसेहर	(राजपुत्रः)
विज्जुमाली	(ऐन्द्रजालिकः)
विणयंधर	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
विण्हु	(कृष्ण-वासुदेवः)
*"	(राजपुत्रो निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
विण्हु + कुमार	"
तिविक्कम	
विण्हुदत्त	(वणिक्)
विदेह	(क्षेत्रम्)
विदेहा	(देशः)
विद्धवाई	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
विन्हुमित्त	(पुरोहितः)
विब्भमवई	(राजपुत्री)
विमल	(तीर्थकरः)
विमलवाहण	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
वियब्भ	(देशः)
विरिंचि	(देवः)
हिरन्नगब्भ	
विलासवई	(राजपुत्री)
विल्लूरपुर	(नगरम्)
विशल्या	(राजपुत्री)
विष्णु+कुमार	(राजपुत्रो निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
विसल्ला	(राजपुत्री)
*"	"
विसा	(श्रेष्ठिपुत्री)
विसेसय	(ग्रामः)
विस्सभूइ	(तापसः)
विस्ससेण	(राजा)

नाम	किम्?
वीससेण	
विहल्ल	(राजपुत्रः)
विंझ	(पर्वतः)
*वीर	(तीर्थकरः)
वीर	"
वीरचरित्र	(जैनशास्त्रम्, टीका-प्रशस्तौ)
वीरनाह	(तीर्थकरः)
*वीरमई	(राज्ञी)
वीरमई-०ती	"
वीरय	(शालापतिः)
वीरसेण	(राजा)
वीरंगय	(राजपुत्रः)
वृषभ	(श्रेष्ठी)
वृषभजिन	(तीर्थकरः)
वृषभध्वज	(राजपुत्रः)
वेईसर	(ब्राह्मणपुत्रः)
वेगवई	(नदी)
वेजयंत	(देवः)
वेन्ना	(नदी)
वेभार	(पर्वतः)
वेय	(ब्राह्मणपुत्रः)
वेयगब्भ	"
वेयड्ढ	(पर्वतः)
वेयब्भ	(नगरम्)
वेयमित्त	(ब्राह्मणपुत्रः)
वेयरूव	"
वेयसाम	"
वेयसार	"
वेसमण	(श्रेष्ठी)
वेसाली	(नगरी)
वैर + स्वामी	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
व्याख्याप्रज्ञप्ति	(जैनागमः, टीकाप्रशस्तौ)
श	
शङ्ख	(राजा)

नाम	किम्?
शतानिक	"
शम्बकुमार	(राक्षसवंशीयः)
सम्बकुमार	
शय्यम्भव	(ब्राह्मणो निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
शालिग्राम	(ग्रामः)
शालिभद्र	(श्रेष्ठिपुत्रः)
शौरि	(राजा)
श्रीकान्त	(श्रेष्ठिपुत्रः)
श्रीचन्द्रसूरि	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः, टीकाप्रशस्तौ)
श्रेणिक	(राजा)
स	
*सउरी	(राजा)
*सगर	(चक्रवर्ती)
सगर	"
सयर	
सच्च	(निर्ग्रन्थ-मुनिः)
सच्चभामा } सच्चा	(राज्ञी)
सच्चवाई	(यक्षः)
सच्चसिरी	(कुटुम्बपत्नी)
सणंकुमार	(चक्रवर्ती)
*"	"
सनत्कुमार	"
सप्तच्छद	(राजा)
सम्बल	(बलीवर्दः)
*"	"
समरकेउ	(राजपुत्रः)
समंतभद्द	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
"	(" मुनिः)
समाहिगुत्त	" "
*समिय	(" स्थविरः)
समियज्ज } समित	" "
समुद्दविजय	(राजा)
समुद्ददत्त	(श्रेष्ठी)

नाम	किम्?
सम्प्रति	(राजा)
सम्भूत	(मातङ्गपुत्रो, निर्ग्रन्थ-मुनिः)
सम्मेयसेल	(पर्वतः)
सयडाल	(अमात्यः)
सयपाग	(तैलम्)
सयाणिय-णीय	(राजा)
सरयसिरी	(राजपुत्री)
सरस्वती	(देवी)
सरस्सई	(अमात्यपत्नी)
सव्वट्ठ+सिद्ध	(देवलोकः)
सव्वत्थ	(श्रेष्ठी)
ससिसेहर	(राजा)
सहदेवी	(राज्ञी)
संख	(श्रेष्ठी)
"	(राजा)
"	"
संख + उर	(नगरम्)
संखपाल-वाल	(यक्षः)
संगमअ-यं	(कुलपुत्रः)
संगमय	(देवः)
संगय	(राजपुत्रः)
संगरपुर	(नगरम्)
संगा	(श्रेष्ठिपत्नी)
संति + नाह	(तीर्थकरः)
संदणपुर	(नगरम्)
संपइ	(राजा)
*"	"
संपया	(श्रेष्ठिपत्नी)
संपुलअ	(कञ्चुकी)
संब	(राजपुत्रः)
संभव	(तीर्थकरः)
संभूइ	(मातंगपुत्रो निर्ग्रन्थ-मुनिश्च)
*संभूत	"
संभूय	"
संभूयविजय	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)

नाम	किम् ?
साकेअ-यं	(नगरम्)
सागर + अ	(श्रेष्ठी)
सागरचंद	(राजपुत्रः)
*"	"
सागरचंद्र	"
*सागरदत्त	(श्रेष्ठी)
सागरदत्त-सायर०	"
सामाइअ	(कुटुम्बी)
सामि	(वर्धमानस्वामी तीर्थकरः)
सायर	(अमात्यपुत्रः)
सार्वभूति	(निर्ग्रन्थ-आचार्यः)
सालिग्गाम	(ग्रामः)
सालिभद्द	(श्रेष्ठिपुत्रः)
सावत्थी	(नगरी)
*सावित्ती	"
"	(पुरोहितपत्नी)
"	(देवी)
सावित्री	(ब्राह्मणपत्नी)
सित्तुंजय	(पर्वतः)
*सिद्ध	(निर्ग्रन्थ-स्थविरः)
सिद्ध	(नैमित्तिकः)
सिद्धउत्त	(लेखाचार्यः)
सिद्धत्थ	(राजा)
"	(सारथिः)
सिद्धनाग	(श्रेष्ठी, टीकाप्रशस्तौ)
सिद्धपुत्त	(नैमित्तिकः)
सिद्धसेण	(ब्राह्मणो निर्ग्रन्थ-स्थविरश्च)
सिद्धसेनदिवाकर	"
सिद्धार्थ	(राजा)
"	(वणिक्)
सिप्पनई-°सरी सिप्पा	(नदी)
सियजस	(राजा)
सिरिउर	(नगरम्)
सिरिकंठ	(देशः)

नाम	किम् ?
सिरिकंठ हर	(देवः)
सिरिचंद	(राजपुत्रः)
सिरिदेवी	(देवी)
"	(श्रेष्ठीपुत्री)
"	(राज्ञी)
सिरिधम्म	(राजपुत्रः)
"	(राजा)
सिरिपव्वय	(पर्वतः)
सिरिमई	(श्रेष्ठिपुत्री)
सिरिमंगल	(देशः)
सिलागाम	(ग्रामः)
सिव	(वणिक्पुत्रः)
सिवएवी-देवी	(राज्ञी)
सिवादेवी	"
सिवचंदा	(विद्याधरपत्नी)
सिवभद्द	(वणिक्पुत्रः)
सिवमंदिर	(नगरम्)
सिवा+देवी	(राज्ञी)
सिसुपाल	(राजा)
सिंधु+देवी	(देवी)
सिंहकेसरअ-य	(मोदकः)
सिंहजस	(राजपुत्रः)
सिंहल+दीव	(द्वीपः)
*सीया	(राज्ञी)
सीया-ता	"
सीमंधर+सामि	(तीर्थकरः)
सीयल	"
सीलमई	(राजपुत्री)
सीह	(सुभटः)
सीहक	(कर्षकः)
सीहगिरि	(राजा)
सीहबल	"
सीहरह	(सेनानीः)
"	(राजपुत्रः)
सीहविक्कम	"

नाम	किम् ?
सुकुमारिका-लिका	(राज्ञी)
सुकुमालिया	"
*"	"
सुक्क	(देवलोकः)
सुग्रीव	(वानरवंशीयः)
सुजसा	(राज्ञी)
सुज्जहास	(खड्गः)
सुतारा	(राज्ञी)
सुत्थिय	(निग्रन्थ-आचार्यः)
सुदर्शन	(श्रेष्ठी)
*सुंदसण	"
"	(श्रेष्ठिपुत्रः)
"	(श्रेष्ठी)
"	(नगरम्)
सुदंसणा	(राज्ञी)
सुद्धड निग्घिणसम्म	(ब्राह्मणः)
सुधण	(श्रेष्ठिपुत्रः)
सुधणु	(श्रेष्ठी)
सुधम्म-हम्म	(निर्ग्रन्थ-गणधरः)
सुनंदा	(श्रेष्ठीपुत्री, राज्ञी)
सुन्दर	(कर्षकः)
सुपाससामि	(तीर्थकरः)
सुप्पणहा	(राक्षसवंशीया)
सुप्रभा	(निर्ग्रन्थिनी)
सुबुद्धि	(अमात्यः)
सुभग	(दासः)
*सुभद्दा	(श्रेष्ठिपत्नी)
सुभद्दा	"
"	"
"	(राज्ञी)
"	(प्ररिव्राजिका)
सुभद्रा	(श्रेष्ठिपत्नी)
सुमइ	(अमात्यः)
"	(तीर्थकरः)
सुमंगल	(राजपुत्रः)

नाम	किम् ?
सुमिण	(यक्षः)
सुमुह	(दासः)
सुमेरुप्पह	(हस्ती)
सुरट्ठ	(देशः)
सुरपिय	(यक्षः)
सुरपिय	"
चित्तपिय	"
सुरवरतरंगिणी	(नदी–गङ्गा)
सुरिंद	(श्रेष्ठी)
*सुलसा	(रथिकपत्नी)
सुलसा	"
"	(परिव्राजिका)
"	(श्रेष्ठिपत्नी)
सुवन्नजालेसर	(देवः)
सुविहि	(तीर्थकरः)
सुवेग	(सुभटः)
"	(दूतः)
सुव्वअ–यं	(निग्रन्थ–आचार्यः)
सुव्वया	(निर्ग्रन्थिनी)
सुसीमा	(नगरी)
सुसेण	(सेनानीः)
सुसेणा	(राजपुत्री)
सुहत्थल	(ग्रामः)
सुहम्म }	(देवलोकः)
सोहम्म }	"
सुन्दरपाणि	(राजा)
सुन्दरी	(निर्ग्रन्थिनी)
"	(अन्तःपुरमहत्तरा)
"	(राज्ञी)
सुंब	(राजकुमारः)
सुंसमा	(श्रेष्ठिपुत्री)
सूमिका	(कर्षकपुत्रवधूः)
सुरदेव	(स्थपतिः)
सूरियकंत	(राजपुत्रः)
सूरियकंता	(राज्ञी)

नाम	किम् ?
रविकंता	(राज्ञी)
सूरियाभ	(देवः)
"	(विमानम्)
सूर्यकान्ता	(राज्ञी)
रविकान्ता	"
सेज्जंभव	(ब्राह्मणो निर्ग्रन्थ–स्थविरश्च)
*"	"
सेडुवक	(ब्राह्मणः)
सेणग–यं	(अमात्यपुत्रः तापसश्च)
*सेणिय	(राजा)
सेणिय	"
सेदुअ	(ब्राह्मणः)
*"	"
सेदुव + क	"
सेयणय	(हस्ती)
सेयविया	(नगरी)
सेयंस	(तीर्थकरः)
सोदास	(विद्याधरः)
सोदास	(राजा)
नराअ–दं	"
सोपारय	(नगरम्)
सोम	(ब्राह्मणः)
सोमचंद	(राजा)
सोमदत्त	(ब्राह्मणः)
सोमदेव	"
सोमप्पह	"
*"	"
सोमप्रभ	"
सोमभूइ	"
सोमसम्म	"
सोमा	(पुरोहितपत्नी)
सोरट्ठ	(देशः)
सोरियपुर	(नगरम्)

नाम	किम् ?
सोहम्म	(देवलोकः)
सुहम्म	
सौधर्म	"
ह	
हत्थिकयप्पुर	(नगरम्)
हत्थिणउर–°णाउर–°पुर	"
हत्थितावसासम	(आश्रमः)
हनूमत्	(वानरवंशीयः)
हरि	(कृष्ण–वासुदेवः)
*"	"
हरिकेशि–केश	(मातङ्गपुत्रो निर्ग्रन्थ–मुनिश्च)
हरिकेसबल	"
हरिकेसा	(मातङ्गजातिः)
*हरिकेसि	(मातङ्गपुत्रो, निर्ग्रन्थ–मुनिश्च)
हरिवंश	(जैनशास्त्रम्)
"	(राजवंशः)
हरिसउर	(नगरम्)
हरिसीह	(श्रेष्ठिपुत्रमित्रम्)
हरिसेण	(राजा)
हलहर	(राजपुत्रो बलदेवः)
हलि	"
हलाउह	
हल्ल	(राजपुत्रः)
हंस	(द्वीपः)
हारप्पहा	(सार्थवाहपुत्री)
हिमवंत	(पर्वतः)
हिरन्नरोम	(तापसः)
हिरिमंत	(पर्वतः)
हुयवहजाल	(नगरम्)
हुंडिय	(राजा–गुप्तनलराजा)
हेमकूड	(धातुवादी)
हेमरह	(राजा)
हेमवअ	(क्षेत्रम्)

●●●

द्वितियं परिशिष्टम्

आख्यानकमणिकोश-तट्टीकान्तर्गतिवशेषनाम्नां विभागशोनुक्रमः

(परिशिष्टेऽस्मिन् प्रथमपरिशिष्टगतविशेषनाम्नां तत्परिकल्पिता विभागा अधस्तादुल्लिखिता इति तत्तद्विभागदिदृक्षुभिस्तत्तदाङ्काङ्कितो विभागोऽवोलकनीयः)

१ अन्तःपुरमहत्तरा
२ अमात्यास्तत्परिवारश्च
३ आजीवकमत प्रणेता
४ आभूषणम्
५ आभीरस्तत्परिवारश्च
६ आश्रमः
७ इन्द्रः
८ उत्सवाः
९ ऐन्द्रजालिकः
१० कविः
११ कञ्चुकी
१२ कुम्भकारः
१३ कुलपुत्र-कर्षक-कुटुम्बिनस्तत्परिवारश्च
१४ कृष्णवासुदेवनामानि
१५ क्षेत्राणि
१६ खड्गम्
१७ गणिकाः
१८ गुहा
१९ चक्रवर्तिनः
२० चैत्यानि
२१ चौरस्तत्पत्नी-पुत्रौ च
२२ तापसर्षिपुत्री-पुत्रौ
२३ तापसशाखा
२४ तीर्थानि
२५ तीर्थकराः
२६ तलम्
२७ दास-दास्यः
२८ दूतः
२९ देवजातयः
३० देव-देव्यः
३१ देवलोकाः
३२ देशाः
३३ द्वीपाः
३४ धातुवादी
३५ धात्री
३६ नगर-नगरी-ग्राम-सन्निवेशाः
३७ नटपुत्रः
३८ नदी-वापी-सरांसि
३९ नरकाः
४० नाणकम्
४१ नाविक-नाविक-पत्न्यौ
४२ निर्ग्रन्थगच्छः
४३ निर्ग्रन्थ-निर्गन्थिन्यः
४४ निर्ग्रन्थशाखा
४५ नैमित्तिकौ
४६ परिव्राजक-तापसर्षि-श्रमण-कापालिकाः
४७ पर्वताः
४८ पुरोहित-ब्राह्मणा-स्तत्परिवारश्च
४९ बलीवर्दौ
५० ब्राह्मणजातिः
५१ भग्नव्रतमुनी
५२ भेरी
५३ मणिः
५४ मणिकारः
५५ मदिरा
५६ मल्लाः
५७ मातङ्गजातिः
५८ मातङ्गजातीया निर्ग्रन्थाः
५९ मातङ्गजातीयो राजा
६० मातङ्गपालित-राजपुत्रः
६१ मातङ्गास्तत्पत्नी-पुत्राः
६२ मालाकार मात्माकारपत्नी च
६३ मोदकः
६४ यक्षाः

६५ रथः
६६ रथिकपत्नी
६७ राक्षसवंशीयाः
६८ राजगृहपाटकः
६९ राजवंशौ
७० राजानो राज्ञ्यो राजपुत्र्यो राजपुत्रास्तन्मित्राणि च
७१ लेखाचार्याः (उपाध्यायाः)
७२ वना-ऽरण्यो-द्यान-वाटिकाः
७३ वन्यजातिः
७४ वानरवंशीयौ
७५ विटः
७६ विद्याः
७७ विद्याधरास्तत्परिवारश्च
७८ विमानानि
७९ शालापतिः
८० शास्त्राणि (ग्रन्थाः)
८१ श्रेष्ठि-सार्थवाह-वणिजस्तत्परिवारश्च
८२ श्वपाकः
८३ सङ्गीतकारः
८४ सारथी
८५ सुभटाः
८६ सेनान्यौ
८७ स्थपतिः
८८ हस्ति-हस्तिन्यः

(१) अन्तःपुरमहत्तरा

सुंदरी

(२) अमात्यास्तत्परिवारश्च

अभय+कुमार	धणु
कणगकेउ	नमुई
कप्पय	नंद
चउरमइ	नाणगब्भ
चित्त	पोट्टिला
थूलभद्द	बुद्धिसार
दीहपट्ठ	भाणु
मइसायर	सायर
मर्हिदसीह	सुबुद्धि
वरधणु	सुमइ
सयडाल	सेणग-यं
सरस्सई	

(३) आजीवकमतप्रणेता

गोशालक	गोसाल + य

(४) आभूषणम् (हारः)

अट्ठारचक्कवेह

(५) आभीरस्तत्परिवारश्च

धन्नअ- कं, यं	रेणुया
धम्मिलाभ	

(६) आश्रमः

हत्थितावसासम

(७) इन्द्रः

धरणिंद

(८) उत्सवाः

इंदमह	दीवूसव
कोमुईदिवस-°ईमह	मयणतेरसी
°ईमहूसव	

(९) ऐन्द्रजालिकः

विज्जुमाली

(१०) कविः

कालिदास

(११) कञ्चुकी

संपुलअ

(१२) कुम्भकारः

दुग्गय

(१३) कुलपुत्र-कर्षक-कुटुम्बिनस्तत्परिवारश्च

आइच्च	मनोरथ
खेमंकर	मायाइच्च
गंगाइच्च	मायादित्य
चण्डचूड	सच्चसिरी
चंडहड-भंड	संगमअ-यं
दामन्नक	सामाइय
धन्ना	सीहक
बंधुमई	सुंदर
मनोरमा	सूमिका

(१४) कृष्णवासुदेवनामानि

उविंद	नारायण
कण्ह	पुरिसोत्तम
कन्ह	महुमहण
केसव	वासुदेव
गोविंद	विण्हु
जणद्दण	हरि

(१५) क्षेत्राणि

पुव्वविदेह	महाविदेह
भरह	विदेह
भारह	हेमवअ

(१६) खड्गम्

सुज्जहास

(१७) गणिकाः

अणंगसेणा	कोसा
उपकोशा	चमरहारिणी
उवकोसा	देवदत्ता
कलिंगसेणा	मागहिया
कामपडाया	रइविलासा
कामरइ	वसंततिलया

कोशा	वसंतसेणा

(१८) गुहा

कायंबरी

(१९) चक्रवर्तिनः

बंभदत्त	महापउम
भरत	सगर
भरह + नाह, वइ	सणंकुमार
- हेस, हेंसर	सनत्कुमार

(२०) चैत्यानि

गुणसिल+अ	मोढचैत्यगृह
भंडीरवणचेइय	

(२१) चौरस्तत्पत्नी-पुत्रौ च

दुग्गचंड	रौहिणेयक
रोहिण+अ	लोहक्खुर

(२२) तापसर्षिपुत्री-पुत्रौ

ऋषिदत्ता	रिसिदत्ता
पिप्पलाअ	

(२३) तापसशाखा

बंभदीवया-दीविया

(२४) तीर्थानि

पहास	वरदाम
मागह	

(२५) तीर्थकराः

अजिय	उसभ
अणंत	कुंथु
अभिनंदण	चंदप्पह
अर	जुगाइदेव
अरिट्ठनेमि	धम्म
नमि	वद्धमाण+सामि
निम्मम	वासुपुज्ज
नेमि+चंद, नाह	वीर+नाह
पउमनाह	वृषभजिन
पउमप्पह	संति+नाह
पार्श्व	संभव
पास	सामि
मल्लि	सीमंधर+सामि
महावीर	सुपाससामि
मुणिसुव्वअ-यं	सुमइ
युगादिजिन	सुविहि
रिट्ठनेमि	सेयंस

(२६) तैलम्

सयपाग

(२७) दास-दास्यः

कुंद	दुम्मुह
गंगदत्ता	दोण
गंगरुद्दा	द्रोण
चवला	पियंकरा
चंडरुद्द	पियंगुलया
चिला	पुन्नवसु
चिलाइपुत्त	मंजरी
चिलातीपुत्र	सुभग
थावर	

(२८) दूतः

सुवेग

(२९) देवजातयः

अग्गिकुमार	भवनपति
दद्दुरंक	

(३०) देव-देव्यः

अणाहिट्ठि	चंडिया
आगासरेवई	चंडी
इलादेवी	चामुंडा
कटपूतना	जलणप्पह
कुंडगेसर	जंबू
खीरडिंडीर	दुग्गा
खीरडिंडीरा	धूमकेउ
गउरी	नागकुमार
निव्वुई	सरस्वती
पत्तदेवया	संगमय
महाकाल	सावित्ती
लच्छी	सिरिकंठ
ललियंगय	हर
विजय	सिरिदेवी
विरिंचि	सिंधु+देवी
हिरन्नगब्भ	सुवन्नजालेसर
वेजयंत	सूरियाभ

(३१) देवलोकाः

अच्चुय	सव्वट्ठ+सिद्ध
ईशान	सुक्क
ईसाण	सुहम्म
बंभलोअ	सोहम्म
महासणंकुमार	सौधर्म
माहिंद	

(३२) देशाः

अदय	पंचाल
अवंती	बहली
अंगा	मगहा
उत्तरापह	मज्झदेस
कलिंग	मालव
कासी	मेदपाट
कुरु	लाड
कुसट्टा	वच्छा
कुंकण	वराडग
केयइ	विदेहा
कोसल	वियब्भ
गंधक	सिरिकंठ
टंकण	सिरिमंगल
देवनदि	सुरट्ठ
नेपाल	सोरट्ठ
पउम	

(३३) द्वीपाः

जउणदीव	नंदीसर
जवणदीव	रयणदीव
जंबुद्दीय	सिंहल+दीव
धायइसंड	हंस

(३४) धातुवादी

हेमकूड

(३५) धात्री

पंडिया

(३६) नगर-नगरी-ग्राम-सन्निवेशाः

अउज्झ	चंपा
अणिमंजिया	छम्माणी
अद्दय	जयवद्धण
अयलपुर	जयंती-तिया
अवंती	जबउर-पुर
आयामुही	जीवहरण
इलावद्धण	तक्खसिल
उज्जयणी	तामलित्ती
उज्जेणी	तिलयपुर
उसीरावत्त	तुंबवण
उसुयार	तेयलि
एलउर	दसउर
कत्तियपुर	दंतवक्क
कन्नउज	देवसाल
कुर्मार	द्वारकावती
कर्षक	धन्नउर
कंचणपुर	धरणितिलअ
कंचिया	धवलक्कक
कंची	धवलकपुर
कंपिल्लपुर	नंदण
कायंदी	पइट्ठाण
कावेरी	पउमावई
कासहृद	पउमुत्तर
कुसुमपुर	पच्चंतपुर
कुंडवलय	पंडुमहुरा
कुंडिणा	पाडलिपुत्त
कुंडिणिपुरी	पियंगु
कोसलपुरी	पुंडरिगिणी
कोसला	पोतनपुर
कोसंबी	पोयण+पुर
क्षेमपुरी	बारवई
खिइपइट्ठिय	बिन्नायड-बेन्नां
गयउर	भद्दिलपुर
गंगउर	भरुयच्छ
गंगाउर	भूतलानन्द

गिरिनयर	मगहापुर
गुडसत्थ	मत्तियावया-°वइ
महिला	वाणारसी
महुरा	विझूरपुर
मंगलउर	विसेसय
मंजुलावई	वेयब्भ
मारावल्ली	वेसाली
मिहिला	शालिग्राम
मेहकुंड	संख+उर
रत्नपुर	संगरपुर
रयणावह	संदणपुर
रहनेउर	साकेअ-°यं
रहमद्दण	सालिग्गाम
राजपुर	सावत्थी
रायगिह	सिरिउर
रिट्ठउर	सिलागाम
रोहेडय	सिवमंदिर
लच्छिग्गाम	सुंदसण
लच्छीतिलय	सुसीमा
लंका	सेयविया
वडउर	सोपारय
वद्धणपुर	सोरियपुर
वद्धमाण	
वलहि	हत्थिकप्पपुर
वसंतउर-पुर	हत्थिणाउर-णउर
वसंतपुर	हरिसउर
वाडिपुरी	हुयवहजाल

(३७) नटपुत्रः

भरत	रोह+अ, क
भरह	

(३८) नदी-वापी सरांसि

कन्ना	रेवा
कावेरी	वेगवई
गंगा	वेन्ना
गंधवई	सिप्पनई-सरी
नम्मया	सिप्पा
नंदा	सुरवरतंगिणी
पउमसर	

(३९) नरकाः

अपइट्ठाण	वालुयप्पहा
रयणप्पहा	

(४०) नाणकम्

दीणार

(४१) नाविक-नाविकपत्न्यौ

काणा	नंद

(४२) निर्ग्रन्थगच्छः

बृहद्गच्छ

(४३) निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिन्यः

अइमुत्तय	जसभद्द
अजितसूरि	जंबु+णाम
अजियजस	जिणसेण
अज्जखउड	जिणाणंद
अज्जसुहत्थी	जिनचन्द्र
अद्दयकुमार	तिविक्कम
अमियतेय	त्रिगुप्त
अरहन्नक-यं	थूलभद्द
अर्हन्नक	दक्खंतरिसि
आनन्दसूरि	दुल्लहएवी
आम्रदेवसूरि	देवरिसि
आर्यखपुट	देवसूरि
कुलचन्द्र	देविंद
केसी	धम्मघोस
खमग+रिसि	धम्मनंदण
गजसु+कुमार	धम्मरुइ
गय+सुकुमाल	धम्मसिरी
गुणाकर	धर्मरुचि
गोयमसामि	नमि
गौतम	नंदिवद्धण
चण्डरुद्र	नंदिसेण
चन्दनार्या	नाणगब्भ
चंडरुद्द	नारअ-दं,यं
चंदणज्जा	निउण

°णंकुमारी नेमिचन्द्र
°णंबाला नेमिचन्द्रसूरि
चंदणा पभवसूरि
चित्रगुप्त पसन्नचंद
जक्ख पहाससूरि
जक्खिणी पार्श्वदेव
जम्बु पुंडरिय
जव प्रभवसूरि
प्रसन्नचन्द्र विष्णु+कुमार
बंभी वैर+स्वामि
भद्दजस शय्यम्मव
भद्दबाहु श्रीचन्द्रसूरि
भवंतकर सच्च
मणअ-गं, यं समंतभद्द
मणिचूड समाहिगुत्त
मयमल्ल समियज्ज
मल्ल+वाई,वादी समित
मुणिचंद संभूयविजय
यव सार्वभूति
राह सिद्ध+सेण
वइरसामि सुत्थिय
वरदत्त सुधम्मं-हंम्म
विचित्र सुप्रभा
विणयंधर सुव्वअं-यं
विण्हुकुमार सुव्वया
विद्धवाई सुंदरी
विमलवाहण सेज्जंभव

(४४) निर्ग्रन्थशाखा

बंभदीवया-दीविया

(४५) नैमित्तिकौ

सिद्ध सिद्धपुत्त

(४६) परिव्राजक-तापसर्षि-श्रमण-कापालिकाः

अम्मड भइरवाणंद
अम्बड भारभूइ
कढ महाकाल
कमढ बद्दलि
घोरसिव विस्समूइ
जन्नवक्क सुभद्दा
दीवायण सुलसा
परासर सेणग-यं
बुद्धदास हिरन्नरोम
बुद्धाणंद

(४७) पर्वताः

अगमंदिर अंगामंदिर
अट्ठावय अंजण
अर्बुद उर्जित
जालंधर वेयड्ढ
मेरु सम्मेयसेल
रहावत्त सित्तुंजय
रेवय सिरिपव्वय
विजय हिमवंत
वेभार हिरिमंत

(४८) पुरोहित-ब्राह्मणास्तत्परिवारश्च

अग्गिजाला वसुमित्ता
अग्गिभूइ वाउभूइ
आगच्चसम्म विन्हुमित्त
कविल वेईसर
कविला वेय
चक्कयर वेयगब्भ
चक्कचर वेयमित्त
चुलणी वेयरूव
जक्खसिरी वेयसाम
जन्नदिन्न वेयसार
जसा शय्यम्भव
दिवायर सावित्ती
नागश्री सावित्री
नागसिरी सिद्धसेण
निग्घिणसम्म सुद्धड
पहाकर सेज्जंभव
पारासर सेडुवक
प्रभाकर सेडुअ
बदलदत्त सेडुव+क
भद्दबाहु सोम
भिगु सोमदत्त
भूयसिरी सोमदेव
भृगु सोमप्पह
मणअ-गं सोमप्रभ
माहव सोमभूइ
रहमित्त सोमसम्म
लच्छिमई सामा
वराहमिहिर

(४९) बलीवर्दौ

कम्बल सबल

(५०) ब्राह्मणजातिः

टक्क

(५१) भग्नव्रतमुनी

कंडरीय कूलवाल+अ

(५२) भेरी

कोमोइय

(५३) मणिः

कुत्थुभ कोत्थुह

(५४) मणिकारः

नन्द

(५५) मदिरा

चंदप्पभा

(५६) मल्लाः

अट्टण मच्छमल्ल
कमलमेह मच्छियमल्ल
फलहियमल्ल मत्स्यमल्ल
मक्षिकामल्ल

(५७) मातङ्गजातः

हरिकेसा

(५८) मातङ्गजातीया निर्ग्रन्थाः

चित्त संभूइ
चित्र संभूत-यं
मेतार्य हरिकेशि-केश
मेयज्ज हिरकेसबल

संभूत	हरिकेसि

(५९) मातङ्गजातीयो राजा

मेतार्य	मेयज्ज

(६०) मातङ्गपालितराजपुत्रः

करकंडु

(६१) मातङ्गास्तत्पत्नी-पुत्राः

गोरी	मेयज्ज
चित्त	सम्भूत
चित्र	हरिकेशि-केश
बलकुड	हरिकेसबल
भूयदिन्न	हरिकेसि
मेतार्य	

(६२) मालाकारा मालाकारपत्नी च

असोग	पउमिणी
नवपुष्पक	पाडलय
नवफुल्लअ-यं	बउल-कुल

(६३) मोदकः

सिंहकेसरअ-यं

(६४) यक्षाः

असियक्ख	बंमसंति
कयमाल	वङ्कर
कवड्डिजक्ख-कवडि	सच्चवाई
चित्तपिय	संखपाल-वाल
चित्रप्रिय	सुमिण
तिंदुग-य	सुरपिय
धूमकेतु	

(६५) रथः

अग्गिभीरु

(६६) रथिकपत्नी

सुलसा

(६७) राक्षसवंशीयाः

खर	रावण-दशमुख
दहवयण	शम्बकुमार
दूषण	सुप्पणहा
बिभीषण	

(६८) राजगृहापटकः

जन्नवाड

(६९) राजवंशौ

मोरियवंस	हरिवंस

(७०) राजानो राज्ञ्यो राजपुत्र्यो राजपुत्रास्तन्मित्राणि च

अजिय	अद्दयकुमार
अणंगसरा	अद्दया
अणोलिया	अपराजिता
अद्दय	अभय+कुमार
अभया	कुलाणंद
अमरदत्त	कुलानंद
अरिदमण	कुसुमसेहर
अरिमद्दण	कुंती
अवंतिणी	केढव
अवंतिवद्धण	कोणिअ-क, कूणिअ
असोगचंद	असोगचंद
कूणिअ-कोणिअ	गज+सुकुमार
असोयसिरि	गद्दह
अंधगवन्हि	गन्धप्रिय
आर्द्रककुमार	गयवाहण
आससेण	गयसुकुमाल
उग्गसेण	गंगदत्त
उदयण	गंगसेणा
उदाइ	गंधप्पिय
उसुयार	गंधव्वदत्ता
कक्क	गंधव्वसेणा
कडय	गुणचंद
कणगकेउ	चउरमइ
कणगज्झअ	चन्द्रावंतसक
कणगरह	चंडपज्जोअ-यं, पज्जोय
कणयद्धय	चंडवर्डिसय
कणयरह	चंडावर्डिस
कणयाभरण	चंदगुत्त
कनककेतु	चंदणकुमारी-'णंबाला
कन्हडदेव	चंदणा
कमलसेण	चंदजस
कमलामेला	चंदजसा
कमलावई	चंदमई
करेणुदत्त	चंदसेण

कलावई	चंदाभा
कल्याणमाल	चंदावयंस+अ
कंडरीय	चंपइमाला
कामलया	चंपयमाला
काल	चलणी
कित्तिधम्म	चेडय
कुज्जअ	चेल्लणा
कुणाल	जनक
कुब्बर	जन्हकुमार
कुमुइणी	जयसिंह
कुरुचंद	जयसेण
जयसेणा	धणसेण
जया	धयरट्ठ
जराकुमार	धारिणी
जसवई	धुन्धुमार
जंबवई	नन्दिवर्धन
जानकी	नमि
जाला	नरविक्कम
जियसत्तु	नरविक्रम
जुगबाहु	नरसीह
डमरसिंह	नराअ-दं,यं
ढण्ढणकुमार	नहसेण
णंद	नंद
तारापीड	नंदिसेण
तारावीढ	नागदत्त
तिलयसुंदरी	नारायण
तिविक्कम	निसढ
तिसला	पउम
तिहुयणतिलया	पउमकेसर
तिहुयणाणंद	पउमनाह
त्रिभुवनतिलका	पउमरह
दढधम्म	पउमसेहर
दधिवाहन	पउमावई
दवदंती	पउमुत्तर
दहिवाहण	पज्जुन्न
दंतवक्क	पज्जोय
दीपकशिख	पद्म

दीवयसिंह
दीह
दुज्जोहण
दुप्पसह
दुवय
देइणी
देवई
देवगुत्त
देवसेण
दोण
दोणमेह
दोवई
द्रोण
पुरिसोत्तम
पुंडरीय
प्रदेशि
प्रद्युम्न
प्रसन्नचंद्र
बउलमई
बल+देव, भद्द
बंभ
बालचंद
बाहुबली
बिंदुसार
भद्दा
भद्दुलअ
भरत
भाणु
भिंमसार
भीमरह
भुवनश्री
भेसई

मइसागर
मणिचूड
मणिप्पह
मणिरह
मणोरमा

पद्मोत्तर
पल्हाअ-यं
पसेणइ+य
पसन्नचंद
पंडु
पंडुसेण
पियदंसण
पियदंसणा
पियमई
पुक्खल
पुन्नकलस
पुप्फचूल
पुप्फदंती
रयणचूड
रयणमंजरी
रयणमाला
रयणरह
रयणसार
रयणसेहर
रविकंता
रविकान्ता
राजहंस
राम (कृष्णभ्राता)
राम+एव, चन्द्र, देव
(दाशरथी)
रायमई
रायहंस
रिउवन्न
रिक्मिणी
रुप्पिणी
रुप्पी
रोहिणी
लक्खण
लच्छिहर
लक्षण
लक्ष्मण
लच्छी
लीलावई

मणोहर
मधु
मम्मण
मयणरेहा
मयणसेणा
मयरद्धअ
महब्बल
महसेण
महु
मंगला
मिगावई
मुणिचंद
मूलदेव
मृगावती-पती
मेघ+कुमार
मेह+कुमार
रइसुंदरी
विजयसेहर
विण्हु+कुमार
विब्भमवई
विलासवई
विशल्या
विष्णु+कुमार
विसल्ल
विस्ससेण
वीससेण
विहल्ल
वीरमई-र्ती
वीरसेण
वीरंगय
वृषभध्वज
शङ्ख
शतानिक
शौरि
श्रेणिक
सउरी
सच्चभामा
सच्चा

वक्कलचीरी
वज्रकर्ण
वज्रजङ्घ
वनमाला
वम्मा
वराहग्गीव
वल्लहराय
वसुदेव
वसुमई
वासवदत्ता
वासुलदेव
विउसभूसण
विउसाणंदण
विक्कमसेण
विक्कमाइच्च
विजय
विजयधम्म
सिरिचंद
सिरिदेवी
सिरिधम्म
सिवएवी-देवी
सिवा+देवी
सिसुपाल
सिंहजस
सीया-तां
सीलमई
सीहगिरि
सीहबल
सीहरह
सीहविक्कम
सुकुमारिका-लिका
सुकुमालिया
सुजसा
सुतारा
सुदंसणा
सुनंदा
सुभद्दा
सुमंगल

सप्तच्छद
समरकेउ
समुद्दविजय
सम्प्रति
सयाणिय-णीय
सरयसिरी
ससिसेहर
सहदेवी
संख
संगय
संपइ
संब
सागरचन्द्र
सागरचंद
सिद्धत्थ
सिद्धार्थ
सियजस

सुसेणा
सुंदरपाणि
सुंदरी
सुंब
सूरियकंत
सूरियकंता
सूर्यकान्ता
सेणिय
सोदास
सोमचंद
हरिसेण
हलहर
हली
हलाउह
हल्ल
हुंडिय
हेमरह

(७१) लेखाचार्याः (उपाध्यायाः)

लोहजंध
सिद्धउत्त
विउसाणंद

(७२) वना-ऽरण्योद्यान-वाटिकाः

असोगवणिया
नंदण+वण
कोसंब
मत्तकोइल
तिलअ
रायनंदणअ
दण्डक
रेवय+ग

(७३) वन्यजातिः

णोड्डुजाइ

(७४) वानरवंशीयौ

सुग्रीव

(७५) विटः

रइकेलि

(७६) विद्याः

अस्सावहारा
पन्नत्ती
गोरी

(७७) विद्याधरास्तत्परिवारश्च

अनिलवेअ
जंबवंत
अमियगइ
धूमसिंह
कणयमाला
निलवेअ

कालसंवर
महिंदविक्कम
गउरमुंड
विजयसेण
चित्ततेअ-चेत्त°
सिवचंदा
चित्तरह
सुकुमालिया
जंबवई
सोदास

(७८) विमानानि

अरुणाभ
पुष्पक
दद्दुरवडिंसय
विजय
पउमगुम्म
सूरियाभ

(७९) शालापतिः

वीरय

(८०) शास्त्राणि (ग्रन्थाः)

अक्खाणयमणिकोस
उत्तरज्झयण
आख्यानकमणिकोश
उत्तराध्ययनवृत्ति
आवस्सगविवरण
दसवेयालिय
आवस्सय
नयचक्क
निसीह
वीरचरित
भगवई
व्याख्याप्रज्ञप्ति
रत्नचूडचरित
हरिवंस
रयणचूड(कहा)

(८१) श्रेष्ठि-सार्थवाह-वणिजस्तत्परिवारश्च

अच्छुप्त
जिणदासी
अयल
तापस
अरिहद्दासी
तावस
अरिहन्न
थाणु
अरिहमित्त
दत्त
अल्लक
दत्तक-यं
अवराइया
दामन्नअ-कं, गं
इलापुत्त-इलापुत्र
देवजसा
ईसर
देवदत्त
उद्योतन
देवसिरी
उसहदत्त
देवाणंद
कट्ठ
देहिल
कमलगुत्त
धण
कयउन्न+य
धणअ-यं
कामएव-देव
धणदत्त-यत्त
कामपाल
धणपाल
कुमारनंदी
धणवइ
कृतपुण्य
धणवई
केसरा
धणसार
खरक
धणसिरी
गय
धणावह
गंगदत्त
धणीसर
गुणचंद
धणेसर
गुणमइ-र्ती
धन
गुणमइया
धनंदत्त
गुणवती
धन्न+अ
गोभद्द
धम्मरुइ
चारुदत्त
नउलवणी
जन्नदत्त
नन्द
जम्बु
नयसार
जयसिरी
नयदत्त
जयंतदेव
नंद
जंबु+णाम
नंदण
जिणदत्त-यंत्त
नाग
जिणदास
नूपुरपण्डिता
पङ्कजमुख
वसंतसेणा
पङ्कजास्य
वसुदत्त
पंचनंदी
वसुनन्दा
पियंकर
विजयसिरी
पुन्नभद्द
विण्हुदत्त
बंधुदत्त
विसा
बंधुमई
वृषभ
बुद्धदास
वेसमण
भद्द
शालिभद्र
भद्दा
श्रीकान्त
भद्रा
समुद्रदत्त
भाणु
सव्वत्थ
भाणुसिरी
संख
भावट्टिका-यां
संगा
बालवंडिया
संपया
मइरा
सागर+अ
मणोरह
सागरदत्त-सायरं
मनोरमा
सालिभद्द
महिमा
सिद्धनाग
माणिभद्द
सिद्धार्थ
माथुर
सिरिदेवा
माहुर
सिरिभई
मित्तवई
सिव
मित्ताणंद
सिवभद्द
मुणिचंद
सुकुमालिया
मुसियार
सुदर्शन
मूला
सुदंसण
मेरुप्रभ
सुधण
यशोनाग
सुधणु
रइसायर
सुनंदा
रयणसार
सुभद्दा
रुद्ददत्त
सुभद्रा
ललिताङ्ग
सुरिंद
ललियंग+अ
सुलसा
लोभनंदि
सुसमा
लोहनंदि
हरिसीह
वरदत्त
हारप्पहा
वसंतदेव

(८२) श्वपाकः

कालसूयरिअ-°सोयरिय

(८३) सङ्गीतकारः

पुप्फचूल

(८४) सारथी

निक्करुण
सिद्धत्थ

(८५) सुभटाः

अयल
दमघोस
ददर
नल
निसढ
महसेण
पिहु
सीह
पुप्फदंत
सुवेग
भीम

(८६) सेनान्यौ

सीहरह
सुसेण

(८७) स्थपतिः

सूरदेव

(८८) हस्ति-हस्तिन्यः

कणयप्पहा
भद्दवती
जयवारण
मेरुप्पह
नलगिरि
सेयणय
भद्दवई

तृतीयं परिशिष्टम्

आख्यानकमणिकोशटीकान्तर्गतसमस्तदेश्यशब्दानां शब्दकोशोपयोगिप्राकृतशब्दानां चाकारादिक्रमेणानुक्रमः

(*एतादृक्फुल्लिकाङ्किता देश्यशब्दा आचार्यहेमचन्द्रीय देशीनाममालायां नोपलभ्यन्ते)

शब्द	पत्र-गाथा
अ	
अइहवा	(अविधवा)
अक्खवडलिय	अक्षपटलिकः
अग्गमहिसी	(अग्रमहिषी)
अछिप्प	अस्पृश्यः
अच्छन्न	आच्छन्नः, व्याप्तः
अजमंत	अजेमत्
अट्टमट्ट(दे.)	अव्यवस्थित, हिं. अंटसंट, अंडबंड
अड्डाय(दे.)	वक्र, गु. आडुं
अणक्ख(दे.)	
अणक्खत्तया	अक्षत्रता
*अणालि-ली दे.	वक्रत्वं
*अणुत्तुण (दे.)	निरभिमानिन्
*अणोलिया (दे.)	हिं. गिल्ली, गु. मोई
अणोलिया	राजपुत्रीनाम
अत्थरिय	आस्तृतः
अन्नंच्चय	अन्यदीय
आवाणग	मद्यपानगोष्ठी
अब्भड (दे.)	पीछे जाकर
अब्भिट्ट (दे.)	(संगत) हिं. सामने आकर भिडा हुआ
अम्मोगइया (दे.)	संमुखं गमनं
अम्हच्चय	अस्मदीय
अयड(दे.)	अवटः
अलीढ	अश्लिष्टः
अल्ल	आर्द्र
*अवक्खा (दे.)	निस्तेजस्त्व
अवरोहण	अन्तःपुर
अवल्ल (दे.)	ગુ. વહાણનું શઢ
*अवसेरी (दे.)	चिन्ता
असंथुअ	अपरिचित
अंधारिंत	अन्धकारयत्
आ	
आदन्न (दे.)	आकुल-व्याकुल
आभिट्ट (दे.)	समभिगत
आरहट्टिय	आरघट्टिक
आलंगिणी	आलिङ्गिनी, शरीर प्रमाणावच्छादनवस्त्रम्
आसंघ (दे.)	श्रद्धा विश्वासः
आसंधिअ (दे.)	विश्वसित
आंबलिअ (अप.)	आवलित
आंबली	चिञ्चा, अम्लिका
ई	
ईड	कीट
उ	
उक्करुडिया (दे.)	गु. उकरडो
उज्जमण(अप.)	उद्यापनः
उट्टिया	अवस्थितिका हिं. अंटी, गु. ओटी
*उडिल्लय (दे.)	माष, हिं. उरद
उड्डु (उत् + डी)	हिं. ऊडना
उड्डु (दे.)	आतिविशेष, गु.ओड
उड्डुगार	उद्गार
उड्डुमर	राज्यस्यान्तःकलह
उड्डुमर (दे.)	प्रबल, उत्कृष्ट
उड्डामर (दे.)	"
*उड्डिय (दे.)	ऊर्ध्वीकृत
उत्तावल (दे.)	त्वरा
उत्तावलअ (दे.)	त्वरितः
*उत्तोलिया (?दे.)	अवतारिता
*उन्नइया(दे.)	उन्नतिका हिं. गिल्ली, गु. मोई
*उन्नई (दे.)	उन्नति,
*उप्फेर (? दे.)	(?)
उब्बिविर (दे.)	खिन्नः

शब्द	पत्र-गाथा
*उम्मिट्ट (दे.)	वहिर्निर्गतम्, गु. उमटेलुं
उयर	मध्य
*उल्लाघ (दे.)	रोगमुक्त
उल्लोय (दे.)	उल्लोच - चांदनी
उव्वत्ति	उद्वर्त्तितः
उव्वेधिअ	उद्वेजित
उंबर(दे.)	कुष्ठरोगप्रकारक
ए	
एलुगा	एलुक
ओ	
ओधसर (दे.)	निर्धमण - गटर
ओयर	अपवरक
ओयरय	''
ओर (अप.)	अर्वाक्, समीप
ओरि (अप.)	''
ओलोवण	अवलोकनक, गवाक्ष
ओवरग	अपवरक
ओसग्ग	उपसर्ग
ओसरसुंभिय	अवसरशुम्भित
ओहडिय	अवहृत
क	
कच्छोट्ट (दे.)	लंगोट
कच्छोट्टय(दे.)	लंगोट
कट्टरकारिया	दृढकारिका
कडतल्ल	(शस्त्रविशेष (?)
कडप्प (दे.)	कटप्र
कणिया	दण्ड, गिल्लीके साथ खेलनेका काष्ठदण्ड
कत्थ	क्वाथ
कद्दमिल	कर्दमवत्
कन्नुस्सार	कर्णोत्सार
कप्परय	कर्परक
कलहयंत	कलहयत्
कल्लूरिय(दे.)	कंदविक - हलवाई
कसकिसिर(दे.)	हिं. जकडा हुआ गु. कसकसेलुं
*कंडारिय (दे.)	कुपित
कुंबिया (दे.)	यष्टि
काओडि	कापोति, गु. कावड
कारट्टअ (दे.)	मृतभोजन, हिं. मृतभोज, गु. कारज
कावाइय(दे.)	हिं. गु. चालाकी
किवाणिया	कुपाणिका
कुडय	कुटः
कुढिय(दे.)	पदप्रतिकृतिज्ञाता गु. पगी
कुल्ल (दे.)	कण्ठ, ग्रीवा, पुतप्रदेशः
कुंडिय(दे.)	खरण्टि, लिप्त
कुंभिया	कुम्भिका, गु. कोठी
कूयार	कूत्कार, हिं. कूका, गु. कूकवो
केकयर	केकर
केरविणी	कैरविणी
कोत्थलय(दे.)	કોથળો - ગુ.
कोसल्ल(दे.)	પ્રાભૃતઃ ભેટણું - ગુ.
कोसल्लिया (दे.)	''
ख	
खट्टिक(दे.)	खाटकी, कसाइ
खट्टिग(दे.)	'' ''
खडहडिय(दे.)	शिथिलित
खड्डा(दे.)	गर्ता
खत्तियण	क्षत्रियजन
खत्थ	खस्थ-आकाशस्थित
खत्थ(दे.)	संतप्त
खलभलिय(दे.)	क्षुब्धः
खलि	खल, हिं. खली, गु. खोल
खल्लि(दे.)	ટાલ - ગુ.
खल्लिहडअ(दे.)	ટાલીયો - ગુ.
*खल्ली(दे.)	रिक्त, हि. गु. खाली
*खसर(दे.)	कर्कश, गु. खरबचडुं
खंपण(दे.)	कलङ्क गु. खांपण फा. खामी
खाडहिला(दे.)	खिसकोली
खिस्स	खिस्
खुज्जा	कुब्जा-दासी
खुट्ट(दे.)	खण्डितः
खुड्डुक्किय(दे.)	शल्यितः
खुड्डुय(दे.)	क्षुल्लक
खुप्पण(दे.)	निमज्जन, गु. खंपवुं
*खोर(दे.)	कलुषित, तुच्छ
खोसल(दे.)	
ग	
गड्डुल(दे.)	कर्दममिश्र
गणित्तिया	गणेत्रिका
गत्तर	गत्वर
गड्ढ (दे.)	गाढ
गलि	गलि
गहवरिअ	ग्रहावृत
गंडधारा(दे.)	शकटवर्त्म
*गंडलअ(दे.)	खण्डक, हिं "टुकडा
गंडोवल	गण्डशैल
गिल्ली(दे.)	
गुड्डुर(दे.)	वस्त्रगृहं તમ્બુ - ગુ.
गुणलयणिया	गुणलयनिका
	हिं.गु. तंबु
गुरुहारा	गुरुभारा, गुर्विणी

शब्द	पत्र-गाथा
*गुलिणी(दे.)	लतागृह
*गोब्बर(दे.)	गोमय, हिं.गोबर
गोहली(दे.)	गोधूमाली
घ	
घाडेरुह(दे.)	ससलानी एक जाति
घुंटअ	घुण्टक
च	
चक्कल (दे.)	कुण्डल, वर्तुलः
चञ्चक्किय	चकचकित
चत्त(दे.)	ચરખો - ગુ.
चरी (?)	आचरण
चहुट्ट(दे.)	संश्लिष्ट
चंग (दे.)	चारु
चंभ (दे.)	
चाउजाय	दृश्यतां-चाउज्जाय-चातुर्जातः
चिपिड	चिपिट
चीरी	पक्षिविशेष, गु. चीबरी
चीवंदण	चैत्यवन्दन
*चुल्हेत्तअ(दे.)	हिं. चुल्हेकी इंट
चुंक	क्षिप्, गु.भोंकवुं
चूरी(दे.)	चूर्णः
छ	
छइल्ल(दे.)	छेकः
छक्कण्ण	षट्कर्ण
छगण	छगण, गोमय, गु.छाण
छन्नाल(दे.)	तिपाइ संन्यासियोंका एक उपकरण
छब्बय(दे.)	छब्बकः
छित्त(दे.)	क्षिप्तः
छित्तरअ(दे.)	सूर्प - સુપડું.
छित्तिर अ(दे.)	सूर्प - સુપડું.

शब्द	पत्र-गाथा
छित्तिर (दे.)	जीर्णसूर्प
छिप्प-छेप	स्पृश
छिप्प	स्पृश्य
छुरमट्ठो(दे.)	क्षुरमुष्टि, हिं.गु. हजाम
छुलुच्छल	छलछलय्
छोहिअ(दे.)	क्षोभितः क्षुब्धः
ज	
जगड(दे.)	कलहः, युद्धः
जग्गह	यद्ग्रह
जणेर(अप)	जनकः, जनयितृ
जद्दर(दे.)	जर्दरः વસ્ત્રવિશેષઃ
जन्नत्ता(दे.)	जन्ययात्रा - જાન - ગુ.
झ	
झगडअ(दे.)	तिरस्कृतः
झलकंत	दीप्त
झलकिर	दीप्र
झलक्किय	दीप्त
झलुक्किय	दग्ध
झल्ल	ग्रह्
झिज्ज	क्षि
झुट्ठ(दे.)	मृषा, असत्य
झुलुक्किय(दे.)	दग्ध, ज्वलित
ट	
टप्पर(दे.)	વસ્તુવિશેષઃ, સૂર્પઃ
टार(दे.)	तुरग, अश्व
*टिल्ल(दे.)	तिलक, हिं. टीका, गु.टीलुं
*टोप्परिया(दे.)	कचोलिका, गु. श्रीफलनी काचली
टोल }	अघटित
टोलपहाण }	गण्डशैल

शब्द	पत्र-गाथा
ड	
डंबरिय	आडम्बरित
डुंब दे०	जातिविशेष
डुंबडअ (दे०)	दृश्यतां-डुंब
डाअ (दे०)	नेत्र
डोडिणी(दे०)	ब्राह्मणी
*डोढिणी(दे०)	दृश्यतां-डोडिणी
ढ	
ढक्क(दे०)	हि. किवाड बंध करनेका बाहरी साधन
ढयर (दे०)	१. पिशाच २. इर्ष्या, द्वेष
ढलिअ (दे०)	शिथिल (ઢીલા-હિ.)
ढंखर अ दे०)	फलपत्रसे रहित वृक्ष
ढंबायरिय	पाषाणाकार, ઢિંબાચાર્ય
ढिंबारिय	पाषाणाकार, ઢિંબાચાર્ય
ढुक्क दे०)	ढौक्
ढुलिअ (दे०)	स्खलित, अवनत, हिं० ढुलाहआ, गु० ढळेलु
ण	
णिस्साणंत	निशाणयत्
णोड्ड	वन्यजाति
त	
तक्कुय (दे०)	तर्कु - चरखा (हि.)
तच्चन्निय	बुद्धधर्मानुयायी
तडिय	भिक्षुविशेष
तरवारि	तरवारि खड्ग
तलियातोरण	तिलकातोरण, गु०तरियातोरण
तल्लोवेल्ली (दे०)	पार्श्वपरिवर्तन
तंबालुय (दे०)	भाजनविशेष
तंबार	वि + नश्

शब्द	पत्र-गाथा
ताविल	तप्त
तिट्ठा	तृष्णा
तिरियंत	तिरयत्
तीरि(दे०)	बाण
थट्ट(दे)	स्तब्ध
थड(दे.)	समूह
थाणग(दे.)	स्थानक
थिमिय(दे.)	स्तिमित
थिल्ली(दे.)	चीरीका
*थोत्थर(दे.)	शोथस्तर
थोभ	क्षोभ
दद्दर(दे.)	दर्दर
दसद्धिया	चपेटा
दंदोली	द्वन्द्वावलि
दीयड	दीपक, श्वापदविशेषः
*दीयड(दे.)	सर्पविशेष
दीयडय	दृतिका
दीवालिया	दीपालिका
दीहपट्ठ	सर्प
दीहपट्ठ	स्वनामख्यात अमात्य
दुइजी	द्वितीया
दुगेज्झ	दुर्ग्राह्य
दुरुलि	दुश्चेष्टा(?
दुवियाय	दुर्विजात, कुजात
देवपह	देवपथ
देवलिया	देवकुलिका
देसि	पान्थ
*देसिकुडी	पान्थशाला
दोघट्ट(दे.)	हस्ती
दोधुव्वमाण	दोधूयमान
दोहंडिय	द्विखण्डित
ध	
धवाडिय	धावितं
धसक्क(दे.)	स्तब्धः, क्षुब्धः, ધ્રાસકો - ગુ.
धसक्किय(दे.)	''
धाडीवाह	समूहबद्धभारवाहक
धारिट्ठ	धार्ष्ट्य
धोत्तरिय	धत्तूरित,मत्त
न	
नउलय	नकुलक, वस्त्रादिमयी नाणकस्थगिका, गु.नउली
नाइत्तग-य(दे.)	सांयत्रिकः
नवल्ल	नव्य
निराय(दे.)	निरादः
निरारिअ(अप.)	नितराम्
निवलय	दृश्यतां- 'नउलय'
निस्सरिर	निःसरणशील
निंदिण (नि+दो),गु. निंदवुं-नेंदवुं	
नीरंगी(दे.)	हिं. घुंघट
प	
पइरिक्क(दे.)	प्रतिरिक्त, निर्जन
पच्छिया(दे.)	दृश्यतां 'पत्थिया'
पड्डुय(दे.)	महिषः
पत्तिल्ल	विश्वसित
पत्थारी(दे.)	निकर, समूह
पत्थिया(दे.)	पश्चात्
परिणावितअ	परिणीत
परिहण(दे.)	परिधान
पयलूहण	पादप्रोञ्छनक
पल्हसिर	स्त्रसनशील
पहिजण	पान्थ
पाउल(दे.)	हट्टनारी- वृन्द (?)
पाणहिया	उपानह्
पारी	सन्धानादियोग्यं मृण्मयं भाजनम्, गु. पार
पाहुडिया	प्राभृतिका
पिउसिया	पितुःस्वसा
पियहर	पितृगृह, गु. पियर
पुट्टलय(दे.)	पोटलिका
पुय	पुतप्रदेश, नितम्ब
प्राहिअ	प्रायः
फ	
फडस(दे.)	खंड, हिं. फाक, गु. फाड-फाडसा
फरल	काण
फारक्क(दे.)	फलकधारी
*फिरिक्का(दे.)	यन्त्री, शकटिका
फुक्का(दे.)	मिथ्या
ब	
बक्कर	परिहास
बप्प(दे.)	पिता
*बलिवंडा(दे.)	बलात्कार
बुक्कावण	मुष्टिप्रक्षेप
बुड्ढ(दे.)	वृद्धः
बुर(दे.)	हिं.बुरादा, काष्ठकावेर
बेट्टिया(दे.)	पुत्री
बोलण(दे.)	ब्रोडन
भ	
भइलअ	स्वनामख्यात राजपुत्र
भद्दलअ	भद्र
*भद्दुलय(दे.)	मूषक
*भरवसग-य(दे.)	हिं.भरोंसा, गु. भरोंसो-विश्वास

शब्द	पत्र-गाथा
भलभलिय	भडभडित-अग्निशद्बे
भलिम(दे.) भद्रत्व, हिं.गु.भलाई	
भवडंत	भ्राम्यत्
भंडण(दे.)	घर्षण
भंडोल्ल	भाण्डकुल, गु. भंडोल
भंभारिय	भम्भारित
भामड	भ्रमणशील, गु. भामटो
भिडंत	युध्यत्
भिडिअ(दे.)	टकराना - हि.
भिसया(दे.)	दृश्यतां-भिसिया
भिसिया(दे.)	भय
भूहरि(दे.)	तिलकविशेष, गु.भूहड
भोयविय	भोजित

म

शब्द	पत्र-गाथा
मऊरबंध	मयूरबन्ध, दृढबन्धविशेष
मडप्फर(दे.)	दर्प, गर्व
मड्डा(दे.)	बलात्कार
मरट्ट(दे.)	गर्व, अहंकार
मलय(दे.)	पर्वत, देशविशेष
महल्ल(दे.)	महत्तरा
महल्ला(दे.)	अन्तःपुरमहत्तर
महल्लिया	अन्तःपुरमहत्तरा
महियारिया	दधिविक्रायिका, गु. महियारी
मंदुल	दद्रु
मुयंगलिया(दे.)	
मोकल(दे.)	दृश्यतां-मोक
मोरबंध	दृश्यतां-मऊरबंध

र

शब्द	पत्र-गाथा
रल्लय	कम्बल
रवन्न(अप.)	रमणीय
रवन्निय(अप.)	रमणीय
*रसोयणी(दे.)	रसवतीकारिका, गु. रसोयण
रंडत्तण	रण्डत्व
राइल्लुभुयग	सर्पजातिः
राडि(दे.)	राटि, पुत्कार
*राढ(दे.)	शुभ्
राढाल(दे.)	अतिविभूषाप्रिय
राहाडि-डी	राटि, हिं. चिल्लाहट, गु. राड
रिच्छ	ऋक्ष, भल्लूक
रिंखंत	रिङ्खत्
रिंछोली(दे.)	पंक्ति
रेसि(अप.)	अव्यय, निमित्त
रोल(दे.)	कलह, कोलाहल
रोलंब(दे.)	भ्रमर
रोहंस	रोहितकवृक्ष
रोहिंस	"
लल्लक(दे.)	भयानक
लल्लि(दे.)	प्रशंसा
लिल्लिक्किअ	लयलयकृत
*लिल्लिरय(दे.)	वल्लचीरी, गु. लीरी, लेरो
लिंडिया	लिण्डिका अजादिविष्ठा
लेज्झ	लेह्य
लेहारिय	लेखाचार्य
लोणिय	नवनीत, म. लोणी

व

शब्द	पत्र-गाथा
वउप्पअ	दृश्यतां-पओप्पअ
वड्ड(दे.)	वड्ड, महान
*वढ(दे.)	मूर्ख
*वरह(दे.)	रज्जु, गु. वरेढुं
वरिया	दृश्यतां-वलवा
वरोहिय	पुरोहित
वलवट्ट	(वल+वर्त् बल+वर्त्) हिं.कुचलना
वल्ल(दे.)	वल्
वसा	हस्तिनी
वाइअ	वातिक, हिं. पागल, गु. वायडो
वाइय	वादिन्, हिं. गु.मदारी
वाडिया	वाटिका
वाणिगिणी	वणिक्पत्नी गु. वाणियाणी, हिं. बनियाइन
वायड्य	वातदतिका
वार	वासर, दिन
वारसिय	द्वाराश्रित, द्वारपाल
वाहियाली	वाहिका, हिं. सवारी
वाहुडिय(दे.)	व्याधुट्य
विगोवअ	निन्दित, विगोपित गु. वगोवायेलुं
विगुत्त	"
विग्गोविय	"
विड्डुर(दे.)	विड्वर
विड्डुरिल्लु(दे.)	आटोपित
वियर(दे.)	वि + चिर्
विंटलिय(दे.)	कामण टुमण करना - हि.
वेलामास	गर्भकाल
वेल्लहल	सुंदर, कोमल

स

शब्द	पत्र-गाथा
सइण्ण	सतृष्ण
सच्चविय	सत्यापित, दृष्ट
सत्थाह	सार्थवाह
सन्नास	प्रव्रज्या, संन्यास

शब्द	पत्र-गाथा
समसीसी(दे.)	सदृश
सल	शल्य (?)
ससरक्ख	सरजस्क, परिव्राजकादि
संथुअ	परिचित
संभिय	सम्भृत
संसिय	स्रस्त
सारा	स्मारणा, हिं. सम्हाल, गु. संभाल
साव(अप.)	सर्व
साहुल(दे.)	वस्त्र, शाखा
सिक्कड(दे.)	
सिक्किर	खण्ड हिं. टुकडा
*सिक्किरि(दे.)	छत्र

शब्द	पत्र-गाथा
*सिलिंका	शलाका
सिहिण(दे.)	स्तनः
सिंदुर(दे.)	रज्जु, हिं. रस्सी
सिंबासिंबि	अतिवेगेन, हिं. चटपट, गु. सबोसब
सीमाल	सीमापाल
सीवाल	सीमापाल
सुहिल्लि(दे.)	सुखकेलिः
सुहेल्लि(दे.)	"
सूम	कृपण, हिं. सूम, गु. सोम
सेडिया(दे.)	सेटिका
सेरह	महिष
सेरही	महिषी

ह

शब्द	पत्र-गाथा
हक्का(दे.)	आह्वान
हड्डु(दे.)	अस्थि, हड्ड
हल्लप्फल(दे.)	संभ्रम
हल्लंत	कम्पमान
हिणहिण	हेष्, हिं. हिन-हिनाना, गु. हणहणवुं
हिल्लूर(दे.)	अन्दोलन
हुरुडुक्खिय(दे.)	डमरुक
हुंक	(हुं + क) हिं. हुंकार करना
हेइ	हेति, प्रहरण
हेडाउड(दे.)	हिण्डनव्यापृत, परिभ्रमणशील व्यापारी
हेर (दे.)	गुप्तचरः
हेवाइय	हेवाकिक

●●●

આચાર્યશ્રી ૐકારસૂરિ જ્ઞાન મંદિર ગ્રંથાવલી

પ્રભુવાણી પ્રસાર સ્થંભ (યોજના-૧,૧૧,૧૧૧)

૧. શ્રી સમસ્ત વાવ પથક શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ-ગુરુમૂર્તિ પ્રતિષ્ઠા-સ્મૃતિ
૨. શેઠશ્રી ચંદુલાલ કકલચંદ પરીખ પરિવાર, વાવ
૩. શ્રી સિદ્ધગિરિ ચાતુર્માસ આરાધના (સં. ૨૦૫૭) દરમ્યાન થયેલ જ્ઞાનખાતાની આવકમાંથી.
હસ્તે : શેઠશ્રી ધુડાલાલ પુનમચંદભાઈ હેક્કડ પરિવાર, ડીસા, બનાસકાંઠા
૪. શ્રી ધર્મોત્તેજક પાઠશાળા, શ્રી ઝીંઝુવાડા જૈન સંઘ, ઝીંઝુવાડા
૫. શ્રી સુઈગામ જૈન સંઘ, સુઈગામ
૬. શ્રી વાંકડિયા વડગામ જૈન સંઘ, વાંકડિયા વડગામ
૭. શ્રી ગરાંબડી જૈન સંઘ, ગરાંબડી
૮. શ્રી રાંદેરરોડ જૈન સંઘ-અડાજણ પાટીયા, રાંદેરરોડ, સુરત
૯. શ્રી ચિંતામણી પાર્શ્વનાથ જૈન સંઘ પાર્લા (ઈસ્ટ), મુંબઈ
૧૦. શ્રી આદિનાથ તપાગચ્છ શ્વેતાંબર મૂ.પૂ.જૈન સંઘ, કતારગામ, સુરત
૧૧. શ્રી કૈલાસનગર જૈન સંઘ, કૈલાસનગર, સુરત
૧૨. શ્રી ઉચોસણ જૈન સંઘ, સમુબા શ્રાવિકા આરાધના ભવન, સુરત જ્ઞાનખાતેથી
૧૩. શ્રી વાવ પથક જૈન શ્વે. મૂ.પૂ. સંઘ, અમદાવાદ
૧૪. શ્રી વાવ જૈન સંઘ, વાવ, બનાસકાંઠા
૧૫. કુ. નેહલબેન કુમુદભાઈ (કટોસણ રોડ)ની દીક્ષા પ્રસંગે થયેલ આવકમાંથી
૧૬. શ્રી આદિનાથ શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, નવસારી
૧૭. શ્રી ભીલડીયાજી પાર્શ્વનાથ જૈન દેરાસર પેઢી, ભીલડીયાજી
૧૮. શ્રી નવજીવન જૈન શ્વે. મૂ.પૂ. સંઘ, મુંબઈ
૧૯. શ્રી જશવંતપુરા જૈન સંઘ - શ્રાવિકા બહેનોના જ્ઞાનદ્રવ્યમાંથી

પ્રભુવાણી પ્રસારક (યોજના-૬૧,૧૧૧)

૧. શ્રી દિપા શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, રાંદેરરોડ, સુરત
૨. શ્રી સીમંધરસ્વામી મહિલા મંડળ, પ્રતિષ્ઠા કોમ્પ્લેક્ષ, સુરત
૩. શ્રી શ્રેણીકપાર્ક જૈન શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક સંઘ, ન્યૂ રાંદેરરોડ, સુરત
૪. શ્રી પુણ્યપાવન જૈન સંઘ, ઈશિતા પાર્ક, સુરત
૫. શ્રી શ્રેયસ્કર આદિનાથ જૈન સંઘ, નીઝામપુરા, વડોદરા
૬. શ્રી અમરોલી જૈન સંઘ - અમરોલી, સુરત

પ્રભુવાણી પ્રસાર અનુમોદક (યોજના - ૩૧,૧૧૧)

૧. શ્રી મોરવાડા જૈન સંઘ, મોરવાડા
૨. શ્રી ઉમરા જૈન સંઘ, સુરત
૩. શ્રી શત્રુંજય ટાવર જૈન સંઘ, સુરત

૪. શ્રી ચૌમુખજી પાર્શ્વનાથ જૈન મંદિર ટ્રસ્ટ
શ્રી જૈન શ્વેતાંબર તપાગચ્છ સંઘ ગઢસિવાના (રાજ.)
૫. શ્રીમતી તારાબેન ગગલદાસ વડેચા-ઉચોસણ
૬. શ્રી સુખસાગર અને મલ્હાર એપાર્ટમેન્ટ સુરતની શ્રાવિકાઓ તરફથી
૭. રવિજ્યોત એપાર્ટમેન્ટ, સુરતની શ્રાવિકાઓ તરફથી
૮. અઠવાલાઈન્સ જૈન સંઘ, પાંડવબંગલો, સુરત શ્રાવિકાઓ તરફથી
૯. શ્રી આદિનાથ તપાગચ્છ શ્વે.મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, કતારગામ, સુરત
૧૦. શ્રીમતી વર્ષાબેન કર્ણાવત, પાલનપુર
૧૧. શ્રી શાંતિનિકેતન સરદારનગર જૈન સંઘ, સુરત
૧૨. શ્રી પાર્શ્વનાથ જૈન સંઘ, ન્યુ રામારોડ, વડોદરા
૧૩. પાંડવ બંગલો (અઠવાલાઈન્સ) સુરતની આરાધક બહેનો તરફથી, સુરત

પ્રભુવાણી પ્રસાર ભક્ત (યોજના - ૧૫,૧૧૧)

૧. શ્રી દેસલપુર (કંઠી) શ્રી પાર્શ્વચંદ્રગચ્છ
૨. શ્રી ધ્રાંગધ્રા શ્રી પાર્શ્વચંદ્રસૂરીશ્વરગચ્છ
૩. શ્રી અઠવાલાઈન્સ જૈન સંઘ, સુરત શ્રાવિકા ઉપાશ્રય

વાવ નગરે પૂજ્ય આચાર્ય ભગવંત ૐકારસૂરિ મહારાજાની ગુરૂ મૂર્તિ પ્રતિષ્ઠા સ્મૃતિ

૧. રૂા.૨,૧૧,૧૧૧ શ્રી વાવ શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ
૨. રૂા.૧,૧૧,૧૧૧ શ્રી વાવ પથક શ્વે. મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, અમદાવાદ
૩. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી સુઈગામ જૈન સંઘ
૪. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી બેણપ જૈન સંઘ
૫. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી ઉચોસણ જૈન સંઘ
૬. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી ભરડવા જૈન સંઘ
૭. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી અસારા જૈન સંઘ
૮. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી ગરાંબડી જૈન સંઘ
૯. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી માડકા જૈન સંઘ
૧૦. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી તીર્થગામ જૈન સંઘ
૧૧. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી કોરડા જૈન સંઘ
૧૨. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી ઢીમા જૈન સંઘ
૧૩. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી માલસણ જૈન સંઘ
૧૪. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી મોરવાડા જૈન સંઘ
૧૫. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી વર્ધમાન શ્વે.મૂ.પૂ.જૈન સંઘ, કતારગામ દરવાજા, સુરત
૧૬. રૂા. ૧૧,૧૧૧ શ્રી વાસરડા જૈન સંઘ, સેવંતીલાલ મ. સંઘવી

●●●

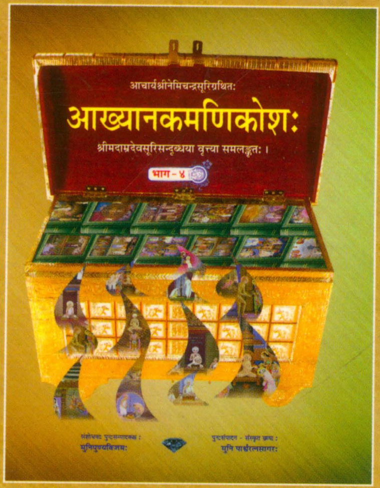

KIRIT GRAPHICS : 079-25330095